॥ श्रीः ॥

व्याख्यान रत्नमाला ।

उपदेशक महोपदेशक बननेके लिये

अपूर्व ग्रन्थ ।

जिसमे

भारतधर्म महामण्डल के जन्मदाता पण्डित दीनदयालुजी शर्म्मा ,महा-
महोपदेशक पण्डित अम्बिकादत्त जी व्यास, साहित्याचार्य
महामहोपदेशक पण्डित श्रीकृष्णशास्त्री, महामहोपदेशक
पण्डित गोविन्दरामजी शास्त्री, विद्यावारिधि पण्डित
ज्वालाप्रसाद जी मिश्र, स्वामी हसस्वरूपजी, म०
मं० प० दुर्गादत्त, प०हरिदत्तजी शास्त्री, तथा
मिसेस् एनीवेसण्ट आदि के अद्भुत
व्याख्यान है ।

जिसको

पडित **बलदेवप्रसाद** मिश्रने बडे परिश्रमसे सग्रह किया.

और

खेमराज श्रीकृष्णदासने

बबई

निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणयन्त्रालयमें

मुद्रितकर प्रकाशित किया ।

सवत् १९७९, शक १८४४

यह पुस्तक खेमराज श्रीकृष्णदासने बम्बई खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटा लेन स्वकीय "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेसमें अपने लिये छापकर यहीं प्रकाशित किया

भूमिका।

समय के प्रभाव से विधार्मियो द्वारा जब सनातनधर्म पर अनेक प्रकारके आक्षेप होने लगे तो उपदेशक महोपदेशको ने बडे परिश्रम के साथ धर्मसभाओ के स्थापन की नीव डाली और महामन्त्री जी तथा दूसरे विद्वानो की रसमयी वक्तृता से भारतवर्ष मे सैकडो धर्म सभा स्थापित हुई, परन्तु महोपदेशकों की संख्या न्यून होने से सर्वत्र उनका गमनागमन नहीं होसकता था और आगे को व्याख्यानदा-ताओं की वृद्धि का उपाय होना भी बहुत उचित था और सहस्रों पाण्डता की इस बात मे लालसा रहती थी कि, कोई ऐसा ग्रन्थ हो जिसके द्वारा हम व्याख्यान शक्ति प्राप्त करसकै, इसमे पतिव्रताधर्म, आध्यात्मिक उन्नति, गोरक्षा, वैश्यधर्म, वर्णव्यवस्था, मृत्यु पश्चात् जीवन, सम्प्रदाय भेद, धैर्य, क्षमा, उपनयन, प्राचीन और अर्वाचीन उन्नति, साकारोपासना, अवतार, मूर्त्तिपूजा, श्राद्ध, पतिव्रतधर्म, तीर्थ, सनातनधर्म की महिमा, भक्ति, वैदिकधर्म की श्रेष्ठता आदिविषय पर अद्भुत व्याख्यान है। यद्यपि इस विषय की एक दो छोटी २ पुस्-स्तके छपी परन्तु वह सर्वथा उपयोगी न हुई इसकारण बहुत से महा-त्माओं के पत्र इस विषय मे मेरे पास आये कि, आप कोई ऐसी सप्र-माण व्याख्यान की पुस्तके निर्माण करे जो उपदेशकी विद्या के सीखने को परमउपयोगी हो मैंने इस बात को विचारकर और सब साधारण का उपकार समझकर बडे बड सुयोग्य महोपदेशक तथा महामन्त्री जी की वक्तृताओ को लिखकर प्रमाण के सहित संग्रह कर प्रकाशित किया है और जो कुछ इसमे लिखा है वह व्याख्यान

सीखनेवालो के बडे काम का है. मुझे आशा है कि इस पुस्तक के अनुशीलन से विज्ञजन अवश्य लाभ उठाकर मेरे परिश्रम को सफल करेगे ।

सज्जनो का अनुगृहीत-

पण्डित बलदेवप्रसाद मिश्र,

दीनदारपुरा-मुरादाबाद.

दुःख के साथ कहना पडता है कि इस ग्रन्थ के समाप्त होते ही पंडित बलदेवप्रसाद जी का सन १९०९ ई० श्रावण शुक्ला सप्तमीको स्वर्गवास होगया था इसी उपलक्ष मे थोडी उन की जीवनी अन्त मे प्रकाशित की है ।

ज्वालाप्रसाद मिश्र.

धर्मसभाओंको सूचना.

बहुतसे महाशय उपदेशक महोपदेशकोंका पता पूछा करतेहैं हम उनके सुबीतेके लिये यहां थोडेसे नाम प्रकाश करतेहैं ।

श्रीमान् प० दीनदयालुजीशर्मा व्या०वाचस्पति मुकाम झज्जर जि० रोहतक
" पं० श्रीकृष्णजीशास्त्री विद्यावाचस्पति महामहो० पटियाला
" प० रघुवरदयालुजी वेदान्तभूषण " कपूरथला
" प० बुलाकीरामशास्त्री विद्यासागर " अजमेर कालिज
" पं० गोविन्दरामशास्त्री विद्यावागीश महोपदेशक बरेली.
" प० दुर्गादत्तपन्तजी कूर्माचलभूषण महो० काशीपुर.
" पं० गणेशदत्तशास्त्री विद्यानिधि महो० कन्नौज
" प० हरनारायणशास्त्री प्रोफेसरहिन्दूकालिज महो० दिल्ली.
" प० भीमसेनजी शास्त्री सम्पादकब्रा०सर्वस्व महो० इटावा
" पं० दामोदरजी शास्त्री महोपदेशक मथुरा.
" प० नन्दकिशोरजी वाणीभूषण. महो० टेढा जि० उन्नाव
" पं० गोकुलचन्दजी महोदपदेशक मुदाफरा जि० मेरठ.
" प० विहारीलालशास्त्री महोपदेशक नगीना
" पं० रलियारामशर्मा ० अमृतसर
" प० कन्हैयालालशर्मा ० शाहजहांपुर.
" प० कन्हैयालालउपाध्याय० मुरादाबाद.
" पं० रामचरणशर्मा ० पीलीभीत.
" प० हीरालालजी मिश्र शेखवाटी भूषण , उज्जैन.

भजनमण्डली तथा भजनोपदेशक ।

प० अनोखेलालजी भजनोपदेशक	तिलहर जि० शाहजहापुर
प० भवानीदत्तजी भजनोपदेशक	चन्दोसी जि० मुरादाबाद
प० रामस्वरूप "	बदायू

इसके सिवाय पीलीभीत चांदपुर धामपुर आदिमें भी भजनमण्डली है ।

सज्जनोका आश्रित—

पण्डित ज्वालाप्रसादमिश्र,

दिनदारपुरा—मुरादाबाद
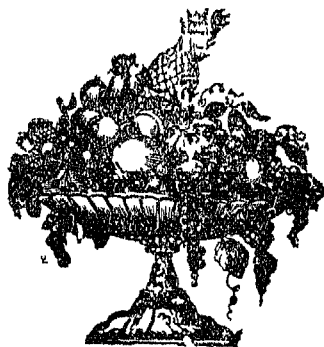
॥ श्रीः ॥

व्याख्यानरत्नमाला की विषय सूची।
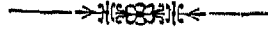
विषय.	पृष्ठ	व्याख्यानदाता.
पतिव्रताधर्म	१	पण्डित दीनदयालुजी शर्मा
आध्यात्मिक उन्नति	७	पण्डित दीनदयालुजी शर्मा
गोरक्षा	१६	पण्डित दीनदयालुजी शर्मा
वैश्यधर्म	२८	पण्डित दीनदयालुजी शर्मा
वर्णव्यवस्था	३२	पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र.
मृत्युपश्चात् जीवन	५०	मिसेस एनीबेसेण्ट अनुवादक प ०बलदेवप्रसाद मिश्र
सम्प्रदाय भेद क्यों ?	६८	प० अम्बिकादत्त व्यास
धैर्य्य	७२	प० अम्बिकादत्त व्यास
क्षमा	७६	पं० अम्बिकादत्त व्यास
उपनयन	७९	पं० अम्बिकादत्त व्यास
प्राचीन और अर्वाचीन उन्नति	८१	स्वर्गीय प० बलदेवप्रसादमिश्र
साकारोपासना	९४	पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र
अवतार	१०९	पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र
मूर्तिपूजा	१२२	पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र
श्राद्ध	१३०	पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र
पातिव्रत धर्म	१३९	पण्डित दुर्गादत्त पन्त
तीर्थ	१४८	पण्डित गोविन्दराम शास्त्री
सनातनधर्म की महिमा	१६०	स्वामी हंसस्वरूपजी

ब्रह्मविद्या से सन्ध्या का सम्बन्ध	१७३	स्वामी हंसस्वरूपजी
रामनाम की महिमा और अवतार	१९८	स्वामी हंसस्वरूपजी
भक्ति	२०४	पण्डित अमोलकराम बी ए.
वैदिकधर्म सर्वश्रेष्ठ क्यों है ?	२१३	महामहो० प०श्रीकृष्णशास्त्री
पुत्र	२२३	पण्डित हरिदत्त शर्मा
विधवाधर्म	२३४	पण्डित हरिदत्त शर्मा
श्रीभगवान्के अवतार और लीलाओंके तत्त्व	२४४	पण्डित ज्वालाप्रसादमिश्र.
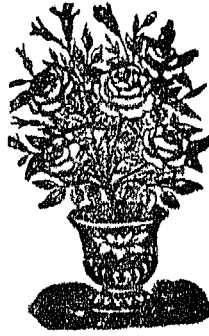
अनुवादक-

स्वर्गीय-पं० बलदेवप्रसाद मिश्र-मुरादाबाद.

॥ श्रीनिकुञ्जविहारिणे नमः ॥

॥ श्रीराधामाधवाभ्यां नमः ॥

व्याख्यानरत्नमाला ।

श्रीमान् पं० दीनदयालुजी महोदयका पतिव्रताधर्म-पर व्याख्यान.

इन दिनो नवशिक्षित पुरुषोंके असदुपदेशसे और स्वयं भी कुछ २ पश्चिमी शिक्षा पाकर स्त्रियो का यह ख्याल होने लगा है कि हिंदू समाजमे स्त्रियों का मान और आदर बिलकुल नहीं है, पुरुष उनको केवल एक सन्तानोत्पादक यंत्र मानते हैं, परन्तु मैं आपसे खुले शब्दों मे कहदेता हूं कि ऐसा कहनेवाले और सुननेवाले दोनों हिंदुओ के शास्त्र से, उनके सिद्धांतो से सर्वथा अपरिचित हैं, यदि आप ध्यान-पूर्वक देखें और विचारें तो आपको निश्चय होजायगा कि, जिन पश्चिम की स्त्रियो की दशा देखकर आपके चित्त में यह विचार उठने

लगा है, उन स्त्रियों का मान और आदर केवल आभासमात्र है और उनकी भी जड में स्वार्थ से बढकर, स्वार्थसे उदारतर कोई उद्देश नहीं है, हिन्दू अपनी स्त्रियों की शैशवावस्था मे दुर्गा मान कर पूजा करते हैं, विवाह के पश्चात् उन्हें लक्ष्मी जानकर पूजते हैं और प्रौढावस्था में साक्षात् उमा पार्वती समझकर उनका पूजन करते है, हिन्दूसमाज म स्त्रियों की सरस्वती, काली, लक्ष्मी इन तीनों स्वरूपमे पूजा होती है, क्या संसार मे कोई ऐसी जाति या समाज है जिसमे स्त्रियो का इतना गौरव, इतना महत्त्व और इतना आदर हो ! फिर हिन्दुओंके आदरमे विशेषता यह है कि वह स्वार्थमूलक नही, किन्तु परम पवित्र, परम शुद्ध और पारमार्थिक है. हिन्दू पुरुष विवाह के समय साक्षात् अग्निदेव की साक्षी मे और सैकडो मनुष्यो के सामने यह प्रण करता है कि जबतक मैं जीता रहूंगा तबतक धर्म, अर्थ, काम इन त्रिविध पुरुषार्थों में तुम्हारी इच्छा का, तुम्हारे हित का कभी उल्लंघन नहीं करूंगा. स्त्रीके लिये भी इसी प्रकार की प्रतिज्ञा करना पडती है. इससे बढकर आदर और सन्मान क्या होसकता है ? इससे पवित्र और शुद्ध प्रेम कहां पाओगे ? जो यूरप-अमेरिका के लोग स्त्रियो की स्वतन्त्रता और आदर की लम्बी चौडी डीगे हांका करते हैं. उनकी यह दशा हम देखते हैं कि-जहां पति पत्नी मे से किसी के स्वार्थ की कुछ भी हानि हुई कि तुरन्त एक दूसरे का परित्याग करने पर उतारू होते है. कहां वह हिन्दू जो अपनी धर्म पत्नी के साथ उमर भर के लिये अपना अटूट सम्बन्ध मानते है और कहां वह पश्चिमी लोग जो जरासी बात मे पति पत्नीका बिछोड कर देते हैं ? सामान्य भगिनियो ! आपही विचार कर देखिये कि स्त्रियो का सच्चा आदर सत्कार सन्मान हिन्दुओं में है या पश्चिमी लोगो में ? आजकल की नई रोशनी के मनुष्यो का प्राचीन विचारो के मनुष्यों पर यह आक्षेप है कि उनकी स्त्रियाँ अशिक्षित होने से पति पत्नी में प्रेम नहीं होता. मेरी आदरणीय भगिनियो! इन नवशिक्षित स्त्री-

पुरुषों के प्रेमकी जो बातें मैंने देखी और सुनी है उनसे मुझे कहना पडता है कि हे नन्दनन्दन मधुसूदन श्रीकृष्णचन्द्र ! तुम ऐसे प्रेमसे हमारी इस हिन्दू जातिकी रक्षा करो!रक्षा करो!!मैंने एक ऐसे नवशिक्षित दम्पती के विवाह की खबर सुनी है जिसमें पतिको अपनी कई हजार रुपये की बीमापालिसी भावी पत्नी को विवाह के समय इसलिये देनी पडी थी कि यदि दैव संयोग से पति का देहान्त होजाय तो पत्नी की चैन मे, उसके सुख मे किसी प्रकार की बाधा न पडने पावे, उस दिन एक पत्र में किसी महाशय का विज्ञापन मैं पढता था उसमे देखा कि आप अपनी २४।२९ वर्ष की कन्या के लिये एक वर चाहते हैं परन्तु वह ऐसा हो कि जो कन्या के नामसे पहले कुछ रुपया बङ्क मे जमा करा सके, ताकि, कन्या की उमरभर के लिये चिन्ता मिटजाय फिर वह पति जिये या मरे, उस से कुछ वास्ता नहीं, सद्भगिनियो ! इस विज्ञापन को पढकर मेरा चित्त इस प्रकार खिन्न हुआ कि रोंगे खडे होगये, नेत्रोंके सामने वह प्राचीन दृश्य खडा होगया जिसमे भगवान् दशरथनन्दन रामचन्द्र माता की आज्ञा से वन मे जाने की तैयारी कररहे हैं और सार्वभौम चक्रवर्त्तिनी महारानी भगवती जानकी अपने समस्त अलंकार उतार कर सम्पूर्ण राजवैभव त्यागकर आवश्यकता न होनेपर भी, सब के मना करने पर भी, अपने पतिदेव की सेवा करने के लिये, उनके दुःख मे शरीक होने के लिये, पतिके साथ वन मे जाने के लिये आग्रहपूर्वक उद्यत हुई हैं, हाय ! भारतवर्ष ! तेरी यह दशा ? समय तेरी बलिहारी है ! कहां जानकीकी पति के लिये प्राण तक न्योछावर करने की सिद्धता और कहां इस समय के स्त्रियो की विवाह से पूर्वही पति के मृत्यु के पश्चात् अपने सुख की चिन्ता ! क्या यही प्रेम है ? क्या इसी का नाम आदर और सन्मान है?मैं आपसे क्या कहूं और कैसे कहूं?हिन्दू शास्त्र मे पत्नी के लिये पति ही शिव,पतिही विष्णु,पतिही तीर्थ,वही क्षेत्र वही म

न्दिर,वहीजप,वही,तप,सब कुछ पतिही है.पति की आज्ञा के बिना कोई धर्मानुष्ठान स्त्री के लिये विहित नहीं है.पति के सहित स्त्री को यज्ञ योग तप धर्मानुष्ठान करने का अधिकार है परन्तु स्वतन्त्रता से पति सेवाही उसके लिये मोक्षदायी है.पतिव्रता माहात्म्य से सैकडों ग्रन्थ भरे पडे हैं, उन सबको सुनाने लगूं तो महीनो की कौन कहे बरसो लग जायेंगे. इस लिये मै आपको एकही ऐसा दृष्टान्त सुनाता हूं कि जिससे पातिव्रता की लोकोत्तर महिमा आपकी समझ मे आजावेगी और आप मै सब कृतार्थ होजायेंगे. कुरुकुलावतंस महाराज धृतराष्ट्र जो जन्मांध थे उनकी प्रातःस्मरणीय पूज्य चरण महारानी गांधारी ने, इस निश्चयसे अपने आंखोपर पट्टी बांध रक्खी थी कि जब पति संसार को देख नहीं सकता तब हम अपने अभागी नेत्रोसे क्या देखे ! इस पति भक्ति के प्रभाव से गांधारी के नेत्रो मे वह तेज,वह शक्ति आगई थी कि, जिसकी तरफ वह आख उठाकर देखती वही अमर होजाता. उसने दुर्योधन की रक्षा के लिये उसे सर्वाङ्ग नग्न होकर अपने सामने आने के लिये कहा और उस दिन अपने आखो की पट्टी निकालकर वह उसके सर्वाङ्ग को देखने वाली थी. यदि यह बात होजाती तो सृष्टि मे दुर्योधन को कभी कोई नही मार सकता. परन्तु भावी प्रबल होती है भगवान् श्रीकृष्ण को यह खबर मालूम होतेही दुर्योधन नङ्गा होकर माता के पास जाता था उसे आप रास्ते मे मिल गये और कहा कि तुम कैसे निर्लज्ज हो ! माता के पास ऐसे नंगे होकर जाते तुम्हे कुछ शरम नहीं आती ! दुर्योधन ने कहा कि माता ने मुझे इसी प्रकार से बुलाया है, परन्तु भगवान् ने कहा कि चाहे तुम और सर्वांग खुला रक्खो परन्तु गुह्यांग, मै एक फूलों की झोली देता हूँ उससे ढांकलो दुर्योधन के चित्त को व्यामोह हुवा वह फूलों की झोली पहनकर गांधारी के पास पहुंचा और कहा माताजी, यह दास हाजिर है-उसने पट्टी खोलकर देखा तो सर्वांग खुला है परन्तु गुह्यांग ढंका हुआ है, देखतेही गांधारी बडी खिन्न हुई और उसने दुर्योधन से

कहा कि हे अभागे पुत्र! तू भगवान् श्रीकृष्ण की माया में फँसगया. तेरा और सब अंग अमर होगा परन्तु जितना अंग ढँका होनेके कारण मै नही देख सकी वहीं पर आघात लगने से तेरी मृत्यु हो जायगी आगे इसी प्रकार हुआ है यह बात भारत जाननेवालो से छिपी नहींहै परन्तु भगवान् ने दुर्योधन को जो इस प्रकार धोखा दिया उसके बदले मे गांधारी ने श्रीकृष्ण को शाप दे डाला कि तेरे वृष्णिवंश का सर्वनाश होगा इस पतिव्रता के शाप को साक्षात् विष्णुके अवतार श्रीकृष्णचन्द्र भी नही टाल सके समस्त वृष्णिकुल नष्ट हो गया, पतिव्रता की क्या महिमा है! जिस पतिव्रत से साक्षात् ईश्वर को भी शाप देने की शक्ति पतिव्रता स्त्री मे आजाती है उसको शिव विष्णु की पूजा से क्या प्रयोजन है? उसके लिये पति पूजाही शिव विष्णुपूजा से बढकर है धन्य पतिव्रता! धन्य गान्धारी! तुम्हारे नाम से ही पापी कृतार्थ हो जायँगे, इन दिनो औरो की देखादेखी हिन्दू स्त्रियो मे भी गाडी मे सवार हो हवा खोरी के लिये जाना, बायसिकल पर चढना, नाटक देखना, तथा उपन्यास पढना इत्यादि बातो का चाव बढता जाता है, इस विषयमे मैं इतनाही कहना चाहताहूं कि ये बाते विलायत मे भलेही सुखदायक या हितकर हो, परन्तु हिन्दुस्थान की जलवायु इन बातो के अनुकूल नही है यहां पर जो रीति, जो मर्यादा हमारे पुरुषा डाल गये हैं उसी का अनुसरण करना श्रेयस्कर है, स्त्रीके लिये बाल्य मे पिता के, युवावस्था मे पति के और वैधव्य मे पुत्र के अधीन रहने का जो नियम धर्मशास्त्र ने कहा है वही हमारे हिन्दू समाज का कल्याण करनेवाला, हमारी प्रतिष्ठा बढानेवाला और हमारे समाज के पावित्र्य की रक्षा करनेवाला है, जिन देशो मे, जिन समाजो मे इस नियम का पालन नही होता उन देशों और समाजो की स्त्रियों की दशा और गृहपरिस्थिति कैसी होती है उसे मै इस सभा मे वर्णन नही करना चाहता, उपसंहारमे मै एक

बात कहूंगा, आजकल की स्त्रियों को रसोई बनाने में बडाभारी कष्ट मालूम होता है जिनको द्रव्य की कुछ अनुकूलता हुई कि झट उन्होंने रसोय्या रखलिया और स्वयं सायकल पर चढना, उपन्यास पढना तथा इसी ढङ्ग के और २ अनुपयोगी व्यवसाय मे अपना समय व्यतीत करने लग गई, मेरी श्रद्धेय भगिनियो ! यह बात सनातनधर्म मर्यादा के विरुद्ध है, आपसे अधिक क्या कहूँ साक्षात् द्रौपदी और जानकी जो सार्वभौम राजाओ की रानियें थीं, वेभी अपने पति और ब्राह्मणोंकेलिये अपने हाथसे भोजन बनाती थीं उनके आगे आप क्या चीज हैं ? आपका ऐश्वर्य, आपकी दौलत, आपकी नजाकत उनके सामने क्या योग्यता रखती है जब वे स्वयं पाक बनाती थी तब क्या आप अपने पति के लिये रसोई नहीं बना सकतीं ? मेरा विनयपूर्वक आपसे इतनाही कहना है कि आप अधिक नही तो अपने पति और ब्राह्मणोके लिये स्वयं पाक बनाया कीजिये औरों के लिये चाहे भलेही रसोइये पाक बनावे आप कैसाही पाचक रखिये उसके भोजन से पति को वह तृप्ति, वह सन्तोष नहीं होसकता है जो पत्नी के बनाये भोजन से होगा, अन्तमे मैने जो कुछ संक्षेप से अपने विचार आपके सामनें कहे हैं उनका अच्छीतरह स्मरण रखकर यदि उनके अनुसार आप वर्त्ताव करेगी तो आपका इस लोक में तथा परलोक मे कल्याण होगा और हिन्दू समाज की प्राचीन कीर्ति समाचार में संस्थित रहेगी ॥

बम्बई १२।८।१९०४

व्या. वा. पं० दीनदयालुजी महोदयका
आध्यात्मिक उन्नति-
पर व्याख्यान.

तारीख १९ अगस्त सन् १९०४ ई० शुक्रवार को पंडितजी का फ्रामजी कावसजी इन्स्टिटयूट मे 'सर' भालचन्द्र कृष्ण भाटवडेकर 'नाइट' के सभापतित्व मे 'आध्यात्मिक उन्नाति' पर एक अपूर्व प्रभावशाली आर मनोहर व्याखान हुआ, जिसका सारांश हम नीचे देते हैं. पण्डितजी ने कहा कि आज हमारे महामान्य सभापतिजी की आज्ञानुसार मै इस महती सभा मे 'आध्यात्मिक उन्नति' पर बोलने के लिये उद्यत हुआ हूॅ, परन्तु प्यारे सज्जनो ! मै एक बात पहिले आपसे कह छोडता हूॅ कि, आध्यात्मिक विषय निरूपण करने का प्राचीन नियम यह नहीं है, आत्मतत्त्व सुनने का पुराना तरीका कुछ और ही था प्राचीन समय मे जब देवताओ के राजा इन्द्र और असुराधिप विरोचन इन दोनो को अध्यात्म विद्या जानने की इच्छा हुई तब वे दोनो 'समित्पाणि' होकर हाथ में लकडियों का गठ्ठर लिये हुए, ब्रह्माके पास गये और उनसे अध्यात्मविद्याका उपदेश करनेके लिये प्रार्थना की और ब्रह्माके सान्निधानमें कई वर्षोंतक रहकर ब्रह्मविद्याका विधिवत् अध्ययन किया, प्यारे मित्रो ! उसीके मुकाबिलेमे मुझे आज घंटे डेढ घंटेके भीतर अध्यात्म विद्या और साथही उसकी उन्नातिके उपाय आपको सुनाने है, तिसमे भी आज के विषयके दो विभाग है, एक आध्यात्मिक विद्या और दूसरी उसकी उन्नाति। यदि केवल अध्यात्म तत्त्व ही कहे तो व्याख्यानका स्वरूप कुछ और हो जायगा और केवल उन्नातिके विषयमे बोलें तौभी व्याख्यानका ढङ्ग और प्रकारका होगा इसलिये मैं चाहता हूँ कि दोनो पर थोडा थोडा बोलूॅ, सज्जनो ! विषय बडा गहन और

बारीक है, समस्त उपनिषद, ब्रह्मसूत्र,भगवद्गीता योगवासिष्ठ इत्यादि सैकडो बडे बडे ग्रन्थ इसी विद्याका उपदेश कररहे हैं इसका समझनाऔर समझाना दोनों कठिन है, उसके लिये मन एकाग्र होना चाहिये परन्तु मनकी एकाग्रता सहज बात नही है, अर्जुनने गीता में भगवान् श्रीकृष्णसे कहा है" चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् । निग्रहं तस्य मन्येहं वायोरिव सुदुष्करम्"हे कृष्ण!हे मधुसूदन! मन बडा चञ्चल और बलीहै उसका बश करना वायु को बश मे लाने के बराबर दुश्वार है प्यारे दोस्तो! अर्जुन जैसा बीर, अर्जुन जैसा धनुर्धर और अर्जुन जैसा ज्ञानी भी मनको इतना चञ्चल बताता है और उसके लिये भी मन का वश कर लेना इतना कठिन है. परन्तु आजकल के दोही चार अंग्रेजी किताबे पढे हुए बाबूसाहब झट कह उठते हैं कि गंगा,तीर्थ, सन्ध्या-पूजा यह सब क्या वाहियात है। अजी"मन चङ्गा तो कठोती में गङ्गा"भारतवर्ष! तेरे भविष्य मे क्या लिखा हुआ है? अस्तु समय बलवान् है, अब मै आपको थोडेही समय मे और आप सबकी समझ मे आजाय इस प्रकार एक दृष्टान्त को लेकर सक्षेप से आत्म तत्त्व निरूपण करता हूँ।

प्रथम इस सिद्धान्त को समझ रखना चाहिये कि संसार मे कोई कार्य विना प्रकाशके नहीं होसकता,मैं यहां बोल रहा हूँ, आप सुन रहे है अभी यदि यहा का चिराग बुझा दिया जाय तो मेरा व्याख्यान बन्द होगा और आपका सुनना.तब यह प्रश्न उठता है कि वह कौनसा प्रकाश है, वह कौन नूर है जिसके सहारे इस सारे चराचर जगत् का व्यवहार चलता है? इसका उत्तर सबसे पहले यही मिलेगा कि सूर्य के प्रकाश से संसार का व्यवहार चलरहा है. परन्तु सायङ्काल को जब सूर्य का अस्त होता है तब किसके प्रकाश से व्यवहार चलता है? उत्तर मिलेगा—चन्द्र के प्रकाश से,मकान के भीतर चन्द्रमाका प्रकाश नही पहुँचता,, अँधियारी रात्री को चन्द्रका प्रकाश नहीं होता वहां कौनसा प्रकाश है? आपको कहना पडेगा, अग्नि, दीपक, ज्योति क प्रकाश से वहां का काम लिया जाता है, परन्तु अमावास्या की अँधि-

थारी रात्री मे कोई मनुष्य जङ्गल मे से कहीं को जाता हो और बीच मे मार्ग भूल जाय और पास न अग्नि हो, न दीपक हो, न दियासलाई हो प्रकाश का कोई सामान पास न हो ऐसे मौके पर आपको कौन रस्ता दिखा सकताहै ? आपने कहींसे मनुष्य की आवाज सुनी और झट उस तरफ को चलने लगे. यहांपर आपका काम शब्द के प्रकाश से होगया अर्थात् शब्द मे भी प्रकाश है, शरीर पर कही खटमल या मच्छरने काटा और अन्धेरे मे भी आपका स्पर्श के प्रकाश से ठीक काटने की जगहपर हाथ पहुँचा और उसको आपने निकाल कर फेक दिया, कहीं से सुगन्धि आई और आप अन्धेरे में उस दिशा को जानकर उस तरफ जाने लगे, इसप्रकार शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध इन पांचो मात्राओं में प्रकाश है और यह मात्राप्रकाश सूर्य चन्द्रादि के प्रकाशसे भी सूक्ष्मतर और श्रेष्ठ है, इसका विवरण करने लगूँ तो बहुत तूल हो जायगा, जहाँ शब्द स्पर्श वगैरह का भी प्रकाश नहीहोता, वहा कैसे काम चलता है ? सोता हुआ मनुष्य स्वप्न मे अनेक प्रकारकी अद्भुत बाते देखता है, वहांपर न सूर्य का प्रकाश होता है, न चन्द्रमा का, न दीपक का, न शब्दका, न स्पर्श का, फिर वहा किसके प्रकाश मे मनुष्य स्वप्न देखता है ? कहना पडेगा कि वहां मानसिक प्रकाश है और जब सुषुप्ति में मन की क्रिया भी लीन हो जाती है उस दशा का स्मरण मनुष्य को कैसे रहता है ? सबेरे उठकर हम कहते हैं कि अहा ! हा !! कैसी ठण्ढी हवा चलती थी ,कैसे मजे से सोये और कैसा सुख हुआ ? इस सुख का साक्षी कौन है ? किसने देखा, किसके प्रकाश मे देखा ? सबका उत्तर एकही है ,आत्मा साक्षी है, वही द्रष्टा है और वह अपनेही प्रकाश मे देखता है, दूसरे शब्दों मे वह स्वयं प्रकाश है, उसको किसी दूसरे के प्रकाश की अपेक्षा नहीं है, उसी के प्रकाश से संसार प्रकाशित होरहा है भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र गीता मे कहते हैं कि " न

तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः। यत्प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम " न वहां सूर्य का प्रकाश है, न चद्रमाका, न अग्निका वहां प्रकाश है और वही मेरा स्थान है।

इसी बात को मैं एक बडे सरल दृष्टान्त के रूप मे आपके सामने रखताहूँ प्यारे सज्जनो! यह दृष्टान्त मेरा बनाया हुआ नहीं है, वेद-भाष्यकार श्रीविद्यारण्य मुनि ने अपनी बनाई पञ्चदशी मे इसको लिखा है, परन्तु वह ज्योंका त्यो न देकर उसके भाव को जमानेकी रुचि के अनुसार नये वेष मे सजाकर आपके सामने रखता हूँ, क्योंकि दृष्टांत देखने मे तो बडा सरल है परन्तु इसका रहस्य समझने मे बडे २ विद्वान् और बुद्धिमान् मनुष्य भी चक्कर खाजाते है।

आप मेरे साथ कल्पना करलो कि एक राजा के महल मे रात्रि के समय दरबार भरा हुआ है, दीवान, सरदार, सेक्रेटरी और बडे २ अहलकार बैठे हुए है, बडे शान का दीपक जलरहा है और एक नटी या नाचने वाली वेश्या नृत्य गायन कररही है, उसके साजिन्दे सारङ्गी, तबला, सितार, आदि वाद्य बजाने मे कमाल कररहे हैं, नटनी क सुर के साथ सारङ्गी सितार के सुर इसप्रकार से मिलकर चलते है कि मानो तीनों एक रूप होगये है, तबला बजानेवाला भी ऐसी सफाई से बजा रहा है कि जहां सम आई कि झट उसन ताल देदिया, इधर तबले की सम मिली, उधर सारंगी सितारके सुर मिलगये, बस, राजा, दीवान सब आनन्द में मग्न होकर बोल उठे वाहवा! वाहवा!! सुबहान अल्लह! वसल्ले इला!! गाने का आनन्द मिला, सुख होगया, अब थोडी देर के लिये मानलो कि नटी पंचम मे गारही है, सारङ्गी ऋषभ में बजरही है और सितार गान्धार में बजती है, ताल का मेल नहीं है, परिणाम क्या हुआ, राजा की तबीयत बिगडी और उसने कहदिया कि क्या वाहियात गाना होरहा है? हमारी तबीयत बिगडती है, इसे यहांसे दूर करो, बस राजा को दुःख होगया, साज का मिलनाही

सुख है और उनका न मिलनाही दुःख है, यह तो ठीक है, परन्तु यह सुख दुःख कबतक है ? जब तक दीपक जलरहा है तबही तक, ज्योंही दीपक गुल हुआ और प्रकाश जातारहा त्योंही न नटनीका गाना रहेगा न सारङ्गी सितार का बजना रहेगा और न उससे होनेवाला सुख दुःख रहेगा, तात्पर्य क्या निकला कि, राजा के सुख दुःख का कारण, उसका साक्षी दीपक है, परन्तु वह स्वयं बिलकुल असंग है न उसको राजा के सुखसे प्रयोजन है न दुःखसे गरज एक राजाके स्थान मे दूसरा राजा आजाय तौ भी दीपक को कुछ परवाह नहीं है. इसी दृष्टान्त को और थोडा आगे बढादे नटनी का गाना हो चुका, वह चली गई फिर राज काज के विषय मे चर्चा चलपडी राजा ने दीवान से तथा और २ मंत्रियोसे पूछा कि अमुक पडौसी राजा इस विषय मे इस शर्तपर संधि करना चाहताहै इस विषय में आपकी क्या राय है ? या रूस जापान के युद्ध मे किसको मदद देना चाहिये ? इसपर दीवान वगैरह ने जो राय दी वह राजा की राय के साथ नहीं मिली उसको दुःख हुवा. और जहा उन्हो ने कह दिया कि जी सरकार हुजूर की राय बहुत नेक और बहुत बजा है झट राजा को सुख हो गया यहां यह हुआ कि ऐकमत्य या इत्तिफाक राय होना सुख और मतभेद या खिआफ राय होना दुःख है अब राजा का दरबार हो चुका उसने अपनी रानी को बुलाभेजा और उसकी राय पूंछी वह जैसी कुछ राजा के अनुकूल प्रतिकूल मिली वैसा उसको सुख दुःख हुआ फिर उसने अपनी रानीको भी कह दिया कि अब तुम जाव मै एकान्त में विचार करूंगा, उसने अपनी सदसद्विवेक बुद्धि के अनुसार विचार करके अपनी राय कायमकर ली, उसे सुख हुआ, इससे यह सार निकला कि अनेकत्वमे सुख दुःख है अकेले को कुछ नहीं अब राजा भी वहां से उठकर चलागया तो भी दीपक वैसाही जल-रहा है, उसके सामने दरबार हुआ, नाच गाना हुवा, रानी आकर

चली गई, स्वयं राजा भी आकर चले गये, उनको सुख दुःख भी हुआ वह सारा यह दीपक देखता रहा, जो कुछ हुआ इसी के कारण-से हुआ परन्तु वह अन्ततक स्वयं असङ्ग रहा, सब राजा चले गये तो भी वह पहले की तरह जलरहा है। राजा,रानी, दरबार, नाच सब के लिये उसकी जरूरत थी,परन्तु स्वयं उसको किसी की जरूरत नहीं है, वह स्वयंप्रकाश है, सज्जनो!यह शरीर महल है, इसमें अहंकाररूपी राजा बैठा हुवा है, संसारी बुद्धि नाचनेवाली वेश्या है, पांच कर्मेंद्रिय और पांच ज्ञानेंद्रिय इसके साजिंदे है, यदिबुद्धिरूपी नटनी का और इन इन्द्रिय साजिन्दो का मेल मिलगया तो सुख हुआ और वे मेल होगया तो दुःख, शास्त्र विधि के अनुकूल इन्द्रियोका साज बजा और बुद्धि वेश्या ने नृत्य किया तो सुख होगा और विवेक प्रतिकूल साजिन्दे और वेश्या अपनी २ इच्छा के अनुकूल चलने लगे तो दुःख होगा, अपनी धर्मपत्नी मे सन्तानोत्पादन करने से नटनी सा-जिन्दो का मेल मिलकर सुख होता है और परस्त्री की इच्छा रखने मे वे मेल काम होता है उससे दुःख होताहै यह राजा, यह वेश्यायें, साजिन्दे इन सब का प्रकाशक आत्मा है परन्तु वह दीपक की तरह तीनो काल मे असंग है उसे किसी के सुख-दुःख से गरज नहीं है दीपक और आत्मा मे भेद इतनाही है कि लौकिक दीपक चैतन्य रहित है और आत्मा सच्चिदानन्द है, इस प्रकाशक आत्मा के प्रकाश से मनुष्य जो कुछ भले बुरे कर्म करता है उनका गुप्त चित्र उसके अन्तःकरण मे खिचा रहता है, और जबतक उसका फल न भोग लिया जाय तबतक वह बीजरूप से वहां पर रहता है हमारे हृदय मे बैठकर हमारे कर्मो का हिसाब रखनेवाला चित्रगुप्त यही है, स्वप्न मे भी जाग्रत् अवस्था मे जिन बातो का संस्कार चित्तपर पडा रहता है वेही बाते दीखती हैं अर्थात् स्वप्न सृष्टि प्रत्यक्ष सृष्टि के अनुकूलही होती है, प्यारे दोस्तो! क्या कभी किसी क्षत्रिय ने ऐसा सुपना देखा है कि वह किसी के यहां श्राद्ध का न्योता खाने गया हो, कोई

दान लेता हो ? एक भी ऐसा दृष्टान्त नहीं मिलेगा, वह सुपना ब्राह्मणही देख सकता है. क्योंकि प्रत्यक्ष सृष्टि में उसी का यह कर्म है व्यभिचारी मनुष्यको स्वप्न मे पर स्त्री ही दीखती है और धर्मनिष्ठ मनुष्य को ईश्वर का ही दर्शन होता है. मन रहित प्राणकी जो दशा उसी का नाम सुषुप्ति है, सुषुप्ति में आत्मा मन को हुकुम देता है कि तुम सोजाव.

॥ श्रीकृष्णजी की सोलह कला ॥

जागृत्, स्वप्न, सुपुप्ति और तुरीय इन चार अवस्थाओं के सोलह भेद होते हैं और भगवान् श्रीकृष्ण की सोलह कला कही जाती है वे आध्यात्मिक भाव से येही हैं, वे १६ भेद इस प्रकार होते है जागृत में जागृत्, जागृत्में स्वप्न जागृत् मे सुपुप्ति और जागृत्मे तुरीय, स्वप्नमे जागृत्, स्वप्न मे स्वप्न,स्वप्न मे सुपुप्ति और स्वप्नमे तुरीय, इसीप्रकार सुपुप्ति और तुरीय के विषयमे समझना,इसी षोडश कला पूर्ण सच्चिदानन्द परमात्मा की प्राप्ति करना मनुष्य का मुख्य कर्त्तव्य है और ईश्वर की श्रवणकीर्त्तनादि ९ प्रकार से भक्ति करने से वह सिद्ध होता है, यहातक संक्षेप से अध्यात्म तत्त्व का निरूपण करके अब उसकी उन्नतिके विषयमे थोडा कहकर मै आजका व्याख्यान पूरा करूँगा ।

॥ उन्नति ॥

प्यारे मित्रो ! इस भारतवर्षमे किसी समय. गार्गी मैत्रेयी जैसी कितनीही अलौकिक महर्षियो की स्त्रियाँ भी अध्यात्म विद्या में खूब निपुण थी परन्तु हाय ! भारतवर्षमे इस समय इस विद्या की इतनी अवनति होगई है कि उसकी फिर से उन्नति करने के लिये विलायत अमेरिका, रूस वगैरह देशो के कर्नल तथा स्त्रिया भारतवर्ष मे आकर प्रयत्न कररही हैं. यूरप अमेरिकावाले

वास्तव मे बडे दयालु हैं और उसमे भी भारतवासियो पर उनकी असाधारण कृपा है वे हमारे लिये अबतक कपडे, जूते, बटन, यन्त्र आदि सब चीजे वहां से बना कर भेजते थे हमारे देवताओं की मूर्तिया भी विलायत से ढलकर आती थी परन्तु अब तो वेदांत की आध्यात्मिक विद्या भी यूरप से ढलकर आने लगी है ब्राह्मणों के गुरुत्व की वेदान्त की दूकान भारतवर्ष से उठकर अब विलायत मे जा खुली है, प्यारे दोस्तो ! अब चलो ! तुम और हम वहीं चलकर जनेऊ पहन लेगे, उस दिन किसी कालेज का 'प्रास्पेक्टस' मैं पढता था उसमे लिखा देखा कि इस कालेज का एक उद्देश यहां पढनेवालो को ऋषि बनाने का भी ह मेरे प्यारे भाइयो! ऋषि कालेज मे या और कहीं बनाये से नहा बनते हैं हीरा हीरे की खान मे से ही निकल सकता है, पत्थर को या कांच को कितनाही रगडो, कितनाही पालिश करो, उसका कभी हीरा नहीं बनसकता. केवल विद्या पढने से ऋषि नही बन सकते, जब बेरिस्टरी और सिविल सर्विस जैसी मामूली अधिकार की बातें भी हमारी गवर्नमेटने अपने अधीन रक्खी है तब ब्रह्मा क्या ऋषि बनाने का अधिकार चाहे जिस आदमी को देसकती है, ऋषि ब्रह्मा के साक्षात् मानस पुत्र थे और समय आपडने पर इस समय जो उनकी सन्तान है उन्ही मे आर्ष तेज का उत्कर्ष होगा. मैं सुनता हूं कि हिमालय म रहने वाले कितनेही महात्मा विलायत की औरतो को मिलते हैं, उनको चिट्टि पत्री लिखा करते है और उनके खानेके लिये चीजे ले आते है, यह सुनकर मुझे बडा आश्चर्य मालूम हुआ और मै इस बातको सोचने लगा कि क्या भारतवर्ष का इतना अधःपतन होचुका है कि हमारे ऋषियों को अपनी सन्तान को छोडकर विलायती औरतो और अमेरिकन कर्नलो की शरण में जाना पडा है!! ब्राह्मणो! यह तुम्हारा अधिकार है अध्यात्म विद्या तुम्हारे घर की चीज

है, तुम जागो ! अपने घरको सम्हारो तुम्हारे घर में आकर और और लोग गुरु बनने लगे है, यह कुछ तो तुम्हारे आलस्य का और कुछ लोगो की बुद्धि विपर्यास का फल है अतः मैं आपसे विनयपूर्वक कहता हूँ कि आप सचेत होकर अपना कर्तव्य करने लगो विलायती लोगोने थियासफिकल सोसायटी बनाकर अध्यात्म विद्याकी उन्नति का जो उद्योग अपनी तरफसे चलाया है उसे उन्हे करने दो, उससे यदि उन्हे कुछ लाभ होता हो तो कर लेने दो देव और दानव दोनो ने समुद्र मथन किया था, जो जिस चीज का अधिकारी था उसे वह मिलगई इसी प्रकार इस विषय में भी होगा. परन्तु आपके गुरु सिवाय ब्राह्मणो के और कोई नही बन सकते उपनिषदो मे कथा है कि एक ब्राह्मण किसी राजाके पास गया राजाने ब्राह्मण से ब्रह्म का स्वरूप पूँछा वह नहीं बतासका और उसने राजा से कहा कि आप मुझे उपदेश करो ! राजा ने कहा कि मैं कभी तुम्हारा गुरु बनकर तुम्हें उपदेश नही कर सकता, मैंने यह विद्या ब्राह्मणो से ही पढी है अतःआपको यह दानरूप से सङ्कल्प करके देता हूँ, उपदेश रूप से देने का मुझे अधिकार नहीं है, ऐसी और भी बहुतसी कथा तथा प्रमाण मिलते है मुसलमानो की अमलदारी में दाराशिकोह प्रभृति मुसलमान विद्वानोने हमारे उपनिषदो का फारसी भाषामे अनुवाद करवाया, उसे पढकर मुसलमान वेदान्तियो का एक नया पन्थ 'सूफी' नामसे संसारमे प्रचलित हुआ, उसी प्रकार अब अंग्रेजी अनुवाद पढकर 'थियासफी' पन्थ चल पडा है, यह तो हमारे धर्म की खूबी है कि जो कोई उसका नाश करने के लिये आता है वही उसका अनुयायी बनता है, अन्त मे आप सब सज्जनोसे अपनी आध्यात्मिक विद्या की प्राचीन विधि उन्नति करने के विनय करके मै अपना कथन समाप्त करता हूँ।

बम्बई १८।८।१९०४

भारतधर्म महामण्डल के जन्मदाता पण्डिताग्रगण्य श्रीमान् पण्डित दीनदयालुजी का-

गोरक्षा-

पर व्याख्यान।

इस कलिकाल की बलिहारी है कि भारतवर्ष जैसी पवित्र भूमि मे सनातनधर्मावलंबियो की इस मण्डली में, वैदिक आर्य लोगो की इस महती सभा मे गोरक्षा पर बोलने की मुझे जरूरत पडी है कर्म-उपासना ज्ञान जैसे अलौकिक विषय मे उपदेश की आवश्यकता आचार्योंने बतलाई है शुभकर्मों से मल दूर होगा मन पवित्र होगा, उपासना से विक्षेपनिवृत्ति होगी और ज्ञान से आवरण हटजायगा ये बाते तो समझाने की हैं, परन्तु जो हमारी रक्षा करती है उसकी रक्षा हमको भी करना चाहिये, जो प्रत्यक्ष धर्म है, उसके लिये भी उपदेश की आवश्यकता होना इसी का नाम घोर कलिकाल है, तथापि भगवदनुग्रह से, ईश्वर की कृपा से, जो ब्रिटिशशासन हमें मिला है उसी की कृपा का यह फल है कि आज हम यहां एकत्र होकर इस विषय पर बोल सकते है, यह कम सौभाग्य की बात नही है बीच मे एक हजार वर्ष तक बोलना भी कठिन था, परन्तु ब्रिटिश सूर्य के सामने वह अन्धकार जाता रहा अब शांति का समय आया है. इसमे जो धर्मोन्नति-आत्मोन्नति करना हो सो करलो, हिंदू शास्त्र के अनुसार इस बात को हम सिद्ध कर सकते है कि जिस मनुष्य से कोई भी धर्म नहीं हो सका उससे यदि एक भी गौ की किसी प्रकार से रक्षा हो जाय तो उसका उद्धार हो जायगा, राजा का राज्य और प्रजा का सुख इनकी स्थिति गोरक्षाहीपर निर्भर है, संसार के इञ्जिन मे यह एक ऐसी चीज है जिसकी हानि से सब चरखा ढीला हो जाता है, जिस

प्रकार जगद्व्यापी ब्रह्म संसार का उपकार करता है उसी प्रकार गौ जीव समस्त जगत् का उपकार करता है, गौ मे सम्पूर्ण सृष्टि का सर्वस्व भरा हुआ है, यद्यपि ये सब बाते मै अच्छी तरह आपको प्रत्यक्ष करके दिखा सकता हूँ तथापि इस विषय को न तो मैं पोलिटिकल बनाऊँगा न गहन धर्म सम्बन्ध में ले जाऊंगा। किन्तु दोनो को बीच मे रखकर इसपर बोलूंगा।

सर्व देशो मे, सर्व धर्मोमे, यह एक सर्व सम्मत बात हो गई है कि मनुष्य 'अशरफ-उल-मखलूकात' अर्थात् जगत् के अन्दर समस्त प्राणियो मे श्रेष्ठ है, और मनुष्य इस बातका बडा भारी अहंकार करते हैं परन्तु मनुष्यका यह श्रेष्ठत्व, सर्वोत्तमत्व क्या इसी बात मे है कि वह औरो को मारकर अपना पेट भरे ? औरो को दुःख देकर आप आराम करे ? यह तो सिंहादिक पशु भी करते है, वास्तव में रेल, सडक, स्टीमर, तार आदि सुखसाधनही मनुष्य की उन्नति का लक्षण नहीं है, किन्तु चिउटी से लेकर ब्रह्म तक समस्त प्राणियों को जो सम दृष्टि से देखता है, जीव ही में नही, बरन् वृक्ष-पत्तो में भी जो आत्मभावना करता है, जो सबपर दया करता है वही अव्वल दरजे का मनुष्य हैं, उसी मे सच्चा मनुष्यत्व है, आजकल भी रिफौर्मर या सुधारक उसी को कहते हैं, जो केवल अपनाही पेट नहीं पालता किन्तु अपना घर, अपनी जाति का भी उपकार करता है, जो इससे भी आगे बढकर देशभर का उपकार करता है सबसे बडा सुधारक कहलाता है, सज्जनो ! इस ख्याल से मैं आपको दिखाऊँगा कि सबसे बडी सुधारक गौ है, क्योकि वह जगत् भर का उपकार करती है और वह इस प्रकार से करती है कि कोई भी सुधारक मनुष्य वैसा नही कर सकता, इसपर कुछ महात्मा कहेगे कि मनुने तो खुले शब्दो मे कह दिया है कि 'न मांसभक्षणे दोषः ... प्रवृत्तिरेषा भूताना' फिर मांस भक्षण से मनुष्यत्व की हानि किस प्रकार होती है ? इसका अर्थ यह है कि मांसादि खाना यह भूतो

की-अर्थात् प्राण की प्रवृत्ति है. प्राण रूपी अग्नि कुछ खाने को मांगता है, उसे स्वाद की अपेक्षा नहीं है उसका क्षुधा निवृत्ति मात्र से ही प्रयोजन है, लड्डू....कचोरी-दूध-हलवे से भी निवृत्त होती है; मांस से भी और सूखे चनेसेभी होती है परन्तु मांस ही चाहिये, या लड्डूही चाहिये यह स्वाद की बात मनके अधीन है मन प्राणके अधीन है; वह वृत्तियाँ उठाता है, प्राण सबमें है हाथी में भी है और सिंह में भी है. सर्प मे भी है. और मनुष्य में भी है,सिंह मांस खाता है और हाथी घास खाता है, घासमांस पार्टी सनातन है, कुत्ता-सिंह वगैरह मांसपार्टी वाले हैं और गौ भैंस वगैरह घास पार्टीवाले हैं मनुष्य एक आश्चर्यपार्टी है वह दोनों में है और दोनों से अलग भी है,मुझसे एक जगह इन पार्टीवालों ने पूँछा कि पण्डित जी आप किस पार्टी में हैं ? मैंने कहा भाई ! न मैं घासपार्टी हूँ, न मांसपार्टी हूँ, मैं तो खीरपार्टी में हूँ, प्राण सब कुछ खाता है,श्रुति में इसको 'अत्ता चराचरस्य' कहा है उसका यही तात्पर्य है इंजिनमे को-यला डालने से भी रेल गाडी चलेगी,लकडी से भी चलेगी,या और कुछ ईंधन डाले तोभी चलेगी इंजिन यह कभी नहीं कहेगा कि मुझे अमुक प्रकार का ही ईंधन चाहिये, परन्तु इनमें से किस चीज से कौ-नसा लाभ है और कौनसी हानि है इस बात को विचारकर रेलवेवाले लाभदायक चीज काम में लाते हैं इसी प्रकार प्राणाग्नि कुछ अन्नरूपी ईंधन चाहता है उसे किसी विशेष वस्तु से प्रीति भी नहीं है और किसी से घृणा भी नहींहै,इसलिये उसको दोष भी नहीं है,यदि किसी वैष्णव को कि जिसने अपनी उमर भर में कभी मांस देखा तक नही है; मांस की गन्ध भी आ जाय तो उसे उलटी हो जायगी,केवल इत-नाही नहीं, किन्तु उसने कोई चीज खाई हो और उस मे मांस है, ऐसा झूँठही कह दो तो भी उसे वमन हो जायगा, परन्तु यदि किसी दूसरी चीज में मिलाकर कुछ दिनतक उसे मांस खिलाया जाय तो उसके पश्चात् उसकी मनोवृत्ति मांस खाने की तरफ हो जायगी।

सारांश 'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः' इस भगवद्वचनानुसार मनुष्य की भलाई, बुराई, उन्नति, अधःपात आदि का जो कारण मन है उसकी जिससे भलाई होगी जिससे वह पवित्र होगा वही आहार समझकर उसको देना चाहिये क्योंकि पाप पुण्य सब मन मे है, प्राण वायुतत्त्व है,और वह अग्नि,पृथ्वी और जल इन तीनो को खाजाता है जो अन्न हम खाते हैं उसकी तीन दशा होती है, और २७ नक्षत्र मे वीर्य बनता है जो कुछ हम खातेहै उसमे तीनतत्त्व होते हैं मिट्टी (पृथ्वी) जल और अग्नि, प्राण [वायुतत्व] खाता है. जल स्वाद देता है और अग्नि पकाता है, खाये हुए अन्न के पार्थिवांश की दूसरे दिन विष्ठा होती है सूक्ष्म अंश का मांस बनता है और कारण अंश का मन बनता है इसी लिये कहावत प्रसिद्ध है कि "जैसा खावो अन्न वैसा होगा मन्न" पेय पदार्थों मे जो जल का स्थूलांश होता है उसका मूत्र बनता है, सूक्ष्मांश का रक्त बनता है, और कारण अंशका प्राण बनता है, आग्नेय अन्न (चिकनाई घी वगैरह) के स्थूलांश की हड्डी बनती है, सूक्ष्मांशःकी मज्जा बनती है और कारण अंशकी वाणी बनती है सारांश हमारा सम्पूर्ण देह और मन, प्राण और वाणी ये सब अन्नपान से बनते है अतः ऐसा अन्नपान सेवन करना चाहिये जिससे पुष्टि आजाय, परन्तु काम क्रोध अहङ्कारादि विकार उत्पन्न न हो, तथा धैर्य और शान्ति उत्पन्न हो जाय ऐसा आहार संसार भरमे सिवाय गौके दूध के और कोई नहीं है, बिना वेद पढे पाण्डित्य की धारा, शांत, विरक्त, प्रत्युपकार की इच्छा के बिना जगत् पर उपकार करने वाली, घास खाकर अमृत उत्पन्न करने वाली, सत्व की मूर्ति—सिवाय गौ के संसार में कौन है ? प्यारे सज्जनो ! दूध तो भैंस भी देती है, बल्कि, गौ से ज्यादह और अधिक गाढा देती है, परन्तु भैंस का दूध काम क्रोध उत्पन्न करने वाला है, आप एक गौ का बछडा और एक भैंस का पाडा ले आइये, दोनो को एकही घास खिलाइये और ध्यान देकर दोनों के

स्वरूप को देखिये. गौका पाडा कितना शांत होगा और भैंस का पाडा कैसी डरावनी सूरत दिखावेगा, काम क्रोध की मूर्ति ज्ञात होगा, इसीलिये शिवजी ने अपने बाहन के लिये गौ का बछडा पसन्द किया और यमराजने अपने स्वरूपानुरूप भैंस का बछडा लिया. जगत्मे सत्वगुणका भण्डारा ४ जगह भरा हुआ है और चारो हमारी सत्वमूर्ति माताएँ हैं, एक जननी माता, दूसरी गोमाता, तीसरी गङ्गा माता और चौथी सरस्वती माता, जननी माता के निरपेक्ष स्नेह को कौन नही जानता ? श्रुति भगवती भी 'मातृदेवी भव' का उपदेश कर रही है,परन्तु हमारी गोमाताकी योग्यता सच पूछिये तो जननीसे भी बढकर है, जननी तो अपनेही बच्चोंको प्रेमसे दूध पिलातीहै और यदि दूसरा बालक पीने लगे तो उसे थप्पड लगातीहै, इसके मुकाबलेमे हमारी गोमाताकी उदारता देखलो कि उसके बच्चोको तो रस्सीसे बांध रखते है और आदमी दूध पी लेते है संसार भरमे उसके पुत्र हैं, ए आदमी ! सिविलिजेशनके ठेकेदार ! क्या यही तुम्हारी सब श्रेष्ठता है ? ।

भगवान्ने कहा है कि गौ मेरा रूप है, " सुखदुःखे समे कृत्वा, " इस वैराग्यके परम सिद्धान्तको गौ ही पूर्णतया पालन करती है, उसपर जो प्रेम करता है उसे जैसा दूध देती है, वैसाही उसके गलेपर जो छुरा रखताहै उसे भी देती है, प्यारे दोस्तो ! इससे अधिक शांति कहां पाओगे? ।

यही सच्चा "युनिवर्सल ब्रादरहुड–सार्वत्रिक भ्रातृभाव" है, इस गौ से अधिक दयापात्र कौन है ? सज्जनो ! गौके पुत्रकी शांति और धैर्यको देखो ! उसपर तुम कितनाही बोझ लादो और कितनाही काम उससे लो वह कभी क्रोध नही करेगा, यदि तुमहीको दया आजाय तो तुम उसे विश्राम दो या बोझ हलका करो, परन्तु वह यथाशक्ति गाडी खेंचताही रहेगा घोडेको यदि अधिक परिश्रम होजाय तो वह

दुलत्ती चलावेगा और गधा पटक देगा, सज्जनो! यह गौ के दूध का गुण है, इसी लिये शिवजी गौ के पुत्रपर 'अहं ब्रह्मास्मि' करके आरूढ हुए, हमारी जननी माता हमारे स्थूल शरीर का मल दूर करती है, गौमाता चित्तवृत्ति पवित्र करती है, गङ्गा माता और सरस्वती माता हमारे पापो को दूर करके उद्धार करती है, शाहनशाह अकबर के समय मे कुछ धर्मात्मा और उदार चरित मुसल्मान विद्वान् होगये, उनके विषय मे हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने कहा है कि "इन दो चार मुसलमान पै कोटिन हिन्दु वारिये," उनमे एक रहीम खानखाना थे, उन्होंने भगवती भागीरथी के विषय मे एक जगह लिखा है कि "वैदिकी औषध खाय कछु न खाय तेरोही पानकरे रसखान, अरे सुधामयी भागीरथी—आख धतूरा खाय बसत शिव तेरे भरोसे" नीचे गौ का पुत्र, मस्तकपर भागीरथी, दोनो सत्वगुण की मूर्ति, बीच मे कंठ मे विष धारण कर शिवजी मृत्युंजय होगये, जिसने गङ्गास्नान गो सेवा, गो दुग्धपान और श्रुति का भजन किया वह साक्षात् शिवरूप है, चौथी माता सरस्वती भगवती श्रुति है यह जिह्वाके मल को धो डालती है दो प्रकार की गौ सेवा कही गई है, श्रुतिरूपा गौ की सेवा ब्राह्मणो को अर्पण करिगई और स्थूल गौ की सेवा वैश्यों को बतलाई, एक निराकार है, दूसरी सगुण है, दोनो की अवनति से हिन्दू जाति का अधःपतन होरहा है प्रत्यक्ष श्रुतिरूपा गौ को कृष्ण गोपाल ही ने दुहा था. सज्जनो! यदि आप ध्यान धरकर देखे तो गौ की महिमा आपको बात बात मे दिखाई देगी, साक्षात् अवतारों के विषय में देखिये नृसिंहावतार में कैसी क्रूरता थी? मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र पूर्णावतार होने पर भी, महर्षि वसिष्ठ उनसे कहते थे कि तुम ब्रह्म हो और वे कहते थे कि मै जीव हूं, परन्तु जब कृष्णावतार मे भगवान् ने गोपाल बनकर गौओं की सेवा भली भांति से की और यथेष्ट

दूध-दही-माखन खाया तब गीता मे निश्शङ्क होकर बडे जोर से कहने लगे कि मैं ब्रह्म हूं अर्थात् मनुष्य देहके आनुषङ्गिक जो जीवत्वाभिनिवेश था वह गौ सेवा से एकदम हटगया, मेरे प्यारे दोस्तो! आप अपने को 'अशरफ उल मखलूकात' मानते है, परन्तु आपके मल मूत्र से दुनियां भरके रोगो की उत्पत्ति होती है. और कहीं इधर उधर पेशाब भी करो तो म्युनिसिपालिटी पकड लेती है. इसी के मुकाबले मे गौ का मल मूत्र देखो, उसमे वह आश्चर्य महिमा है कि उससे दुनियांभर के रोग आरोग्य होजाते है-केवल इतनाही नही किन्तु जिस घरमे गौ हो,गोमूत्र और गोबर का विधिवत् उपयोग होता हो और गोरस का यथेष्ट सेवन किया जाता हो उस घरमें तुष्टि-पुष्टि-सन्तति-सम्पत्ति सदैव निवास करती है और न प्लेग आसकता है, न कोई रोग आसकता है न किसी भूत पिशाच का प्रवेश हो सकता है. उस घर मे यदि कोई आवेगा तो वही मोरमुकुट वंशीधर श्रीकृष्णचन्द्र माखन चुराने के लिये आवेगा, देखलो कि गौ के दूध-माखन मे कैसी अद्भुत महिमा है कि उसके लिये भगवान् ने चोर बनना स्वीकार किया बडे बडे योगी-महर्षियो को हजारो वर्षो की तपश्चर्या से भगवन्मूर्ति का दर्शन न होसका परन्तु गोपियां घर मे केवल दूध-माखन रखकर भगवान् को ले आई गौके माखन मे वह आकर्षणशक्ति है कि बिना बुलाये भगवान् घरचले आते है तुम मना करो तौभी भगवान् माखन को नही छोडेंगे सज्जनो! अधिक क्या कहूँ गौ तो पवित्रता की मूर्त्ति है, जिस जगह गौ पेट भरके घास खाकर रोमन्थ करती बैठती है वहां से सब रोग कोसो भाग जाते है, उसके केवल निःश्वास मे ऐसा तेज है कि वह जहॉ पहुँच जाय वहॉ की वायु शुद्ध और पवित्र होजाती है प्लेग या हैजे के दिनो मे हवा शुद्ध करने के लिये जो गन्धक और कोलतार आप जलाते है उनसे कहीं बढकर शक्ति गौ के निःश्वासमात्र मे है,गोबर की तो बात ही क्या कहनी?

जालिम से जालिम जहर भी गोमूत्र और गोबर से नष्ट होजाता है, फिर अशुद्ध हवा साफ होगी इसमें कहना ही क्या ! घर मे जहां लडके खेलते हो वहां एक दो गौएं रखने से लडकों का स्वास्थ्य बहुत अच्छा रहता है, जो नित्य गौ की सेवा करता है और अपने हाथ से गोमूत्र और गोबर उठाता है उसके हाथ को कभी त्वचा का रोग नहीं होसकता, शरीर के जिस जिस अङ्ग को गौ के मल मूत्र का सम्पर्क होता हो वह अङ्ग कभी विकृत नहीं होगा।

भगवान् तीन प्रकारसे गोरस सेवन करते हैं एक होम–हवन में अग्नि द्वारा, दूसरे ब्राह्मण मुख से और तीसरे स्वयं गोपालों के घर मे जाकर खालेते है, आजकल तो तीनो द्वार बन्द होगये है, न होम हवन है, न ब्राह्मण भोजन है, नकोई गोपाल है, इसी लिये संसार मे कुवृष्टि, अकाल, प्लेग आदि विपत्तियें फैलरही है, गौ घास खाकर दूध पैदा करती है, दूध से घी बनता है, ब्राह्मण तृप्त होते है, उससे श्रुति का प्रचार होता है, श्रुति से यज्ञ होते है, यज्ञ से मेघोत्पत्ति मेघ से वृष्टि और वृष्टि से अन्न उत्पन्न होताहै, गौ की सेवा से इन्द्र तक आपकी सेवा करने को उद्यत रहता है, " यज्ञाद्भवति पर्जन्यः पर्जन्यादन्नसम्भवः" यह श्रुति इसी अर्थ को प्रतिपादन कररही है, आजकल न कही पहले जैसा गोदुग्ध है, न यज्ञ याग है और न वृष्टि है, एकमात्र दुर्भिक्ष, इन दिनो यज्ञ के धुंवे की जगह चुरटों का धुवा खूब निकलता रहताहै, परन्तु उस धुवे से वृष्टि भी वैसीही बेमौके होती है मनुष्यो की तरह मेघो के भी कुल होते है, वेदोक्त विधि से यथा समय धर्मपत्नी मे गर्भाधान करने से प्रशस्त संतति पैदा होती है और विधि विपरीत गर्भाधान से नीच सन्तति होती है, उसी प्रकार वेद मन्त्रो से विधिपूर्वक होम–हवन करनेसे जो धुवां निकलता है उससे कुलीन–प्रशस्त मेघ पैदा होकर यथा समय यथोचित वृष्टि करते हैं और केवल भाड़ के या चुरट के धुएँ से नीच मेघ पैदा होकर अकालीन या अति वृष्टि से देश का नाश कर डालते है, जैसा हवन वैसा फल

जैसा कर्म वैसा भोग, एक समय की बात है कि मैं जयपुर गया था, वहा एक ९०।९५ साल के बूढे ठाकुर मुझसे कहने लगे कि, पंडितजी आजकल जो लोग धर्मोन्नति और देशोन्नति के लिये उद्योग करते हैं उनको चाहिये कि वे सब से प्रथम यज्ञ–याग होम-हवन ये जो हमारे कर्मकाण्ड के प्रधान अंग इन दिनों लुप्त होगये हैं उनकी ओर विशेष ध्यान दे, क्योंकि इसी के अभाव से अतिवृष्टि अनावृष्टि होती है और जो अन्न पैदा होता है उसमे वीर्य नहीं है, उन्होने मुझे एक भडभूंजे की दूकानपर लेजाकर चने भूंजना दिखाया और कहा कि हम जब अपनी जवानी मे चने भुंजवाते थे तब वे इतने उछलते थे कि कम से कम एक तिहाई बाहर गिरते थे, परन्तु अब आप देख लीजिये कि बाहर उछलना तो दरकिनार रहा परन्तु खप्पर के किनारे तक भी वे नहीं पहुँच सकते हैं, अब आप बतलाइये कि ऐसा निर्वीर्य अन्न खाकर हमारे में क्या बल आसकता है और हम क्या पुरुषार्थ कर सकते हैं ? प्यारे दोस्तो ! इस सारी अनर्थ परम्परा की जड गोरक्षा का अभाव है, इस बात को आप खूब जान लीजिये, भारतवर्ष के प्राचीन अभ्युदय काल मे गोधन और अन्नधन इन्ही को सच्चा धन समझते थे, आपने सुना होगा कि महर्षि याज्ञवल्क्य जनक महाराज की सभा मे जाकर ब्रह्मविद्या का प्रतिपादन करने लगे तब महाराजने प्रसन्न होकर महर्षि को प्रथम एक सहस्र गौऐं दीं, फिर जब प्रसन्न हुए और सहस्र दीं, इस प्रकार कई हजार गौ महर्षि याज्ञवल्क्य को महाराज जनक ने अर्पण कीं, आजकल मै देखता हूं कि बडे बडे साहूकारो और जन्टलमेनो के घर मे दस दस पाच पांच घोडे बँधे हुए है और घोडे न हो तौ भी २।४ कुत्ते जरूर ही है, परन्तु गौ एक भी नहीं है, मुझे एक सेठजी एकदिन अपने घर लेगये थे, और वहा पहुँचते ही आपने अपनी बैठक के चारों ओर बैठे हुए अलग अलग जाति के ४ कुत्ते मुझे दिखाकर कहा कि पण्डितजी ! ये कुत्ते हमने हजार रुपये में चीन और आस्ट्रेलिया से

मँगवाये है और ये ऐसे है वैसे है वगैरह, मैंने सेठजी से पूछा कि आपके यहां घोडे कितने हैं? आप बोले चार हैं, फिर मैने पूछा गौएँ कितनी है? इसपर नाक भौं सिकोड कर कहने लगे पंडितजी! हमे गौएँ पालने का शौक नही हे, कलियुग तेरी बलिहारी है! हे भारतवर्ष! जब तेरी सन्तान ऐसी सुपात्र है तब तू गारत क्यों न होजाय! साक्षात् भगवान् विष्णु मोर मुकुटधारी गौ की सेवा करते थे और आजकाल सभ्यताके ठेकेदार महात्मा कुत्तों की सेवा करते हैं और उन्हींका चुम्बन लेते हैं कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य ये तीन वैश्यो के कर्म हैं तीनो मे से वाणिज्यका मूल कृषि और गोरक्षा है, इन दोनो मे भी फिर कृषि की जड गोरक्षा है, जब जड ही न रही तब 'नष्टे मूले नैव पत्र न शाखा' कृषि भी गई और वाणिज्य भी जाता रहा, जब वैश्यो की अवनति हुई तब ब्राह्मण क्षत्रिय उससे क्योकर बच सकते हैं? बैल के सींगपर पृथ्वी है यह कथन पारमार्थिक तथा लौकिक दोनों दृष्टि से यथार्थ है, संसार का पोषण अन्न से होता है और अन्न के लिये गौ की किस प्रकार जरूरत है सो पहले कहा गया है, वृष्टि होने पर भी बैल यदि न हो तो अन्न नही उत्पन्न होसकेगा, इसलिये संसार का आधार बैलही पर है, गौ बैल खेतों मे निर्भय होकर घुमे और मल मूत्र करें तो उससे एक प्रकार का क्षार बनता है और उससे अधिक अन्न उत्पन्न होता है. राली ब्रादर्स जो लाखो मन अन्न प्रतिवर्ष यूरोप को लेजाता है वह गौ के पुत्रही की बदौलत उत्पन्न होता है, उनको कहना चाहिये कि इसे आदमी नही उत्पन्न करते किन्तु दो सींग और चार पैर के बैलके परिश्रम का यह फल है, इसालिये उसकी और उसकी माता की रक्षा करने के लिये आप हमारे परमदयालु राजराजेश्वर एडवर्ड महाराज से प्रार्थना कीजिये, जब सारे संसार का आधार गौ पर है तब उसपर विपत्ति आने से ससार क्लेशित क्यो न होगा।

प्यारे दोस्तो! आपको यदि इस विषय को हमारे शाहनशाह के पास पहुँचाना है तो मजहबी जोश को छोडकर बडी विनय और नम्रता के साथ, बडी प्रीति सौहार्दसे उन लोगो के द्वारा भेजिये जिनका कथन आपके मेरे कथन से विलायत में अधिक माननीय हो परन्तु मेरी आपसे विनय है कि जब आप स्वय आपने कर्त्तव्य पालन मे दक्ष नही है तब औरो को क्या कह सकते हैं? जब आप स्वयं गो पालन नही करते हैं जिसके लिये आपको कोई प्रतिबन्ध नही हे तब दूसरों को उपदेश करने का आपको क्या अधिकार है इसलिये आप लोगो को चाहिये कि प्रत्येक मनुष्य यथाशक्ति गो पालन करते यथेष्ट दूध दही स्वयं खाकर तथा औरो को खिलाकर तुष्ट पुष्ट होजाय और शान्ति-धैर्य तथा सत्वगुण की वृद्धि करे, शाहनशाह अकबर के समय मे रहीम खानखाना, अब्दुलफजल, फैजी वगैरह जो कितनेही ज्ञानी और सत्यप्रिय पुरुष होगये उन्होने यथेष्ट दुग्धपान करके शाहनशाह से गोहत्या बन्द करवाई। गोरस मे ऐसीही अपूर्व महिमा है अब भी बहुत से अंग्रेज गो-दुग्ध से पुष्ट होकर हिन्दू धर्मकी प्रशंसा करने लगे हैं, सज्जनो! यदि आप एक बार गोसेवा का आनन्द अनुभव करें तो त्रिलोकी का सुख आपको तुच्छ मालुम होने लगेगा, आपकी तो कथा ही क्या? श्रीकृष्णचन्द्र जब गोपाल बनकर व्रज में गो सेवा करते थे तब उसे देखने के लिये शिवजी कैलास छोड कर चले आये.बूढा ब्रह्मा अपना ब्रह्मलोक छोडकर चला आया और गौएँ चुरा कर लेजाने लगा,परन्तु वहां क्या कमी थी? जितनी ही गौएँ लेजाता था उतनीही फिर आजाती थी पारमार्थिक दृष्टि से श्रुतिरूपा गौ अनन्त हैं,अखण्ड हैं, उनकी कदापि त्रुटि नही होसकती, जिस गौ के लिये अचल ब्रह्मा चल होगया उसकी सेवा में आपको आनन्द आजाय इसमें आश्चर्य नही है, केवल एकबार उसका रसास्वाद मिलना चाहिये, गोकुल मे नन्द के आंगन में भगवान् को गौओ के बीच

मे नृत्य करत देख गोपियां एक दूसरे से कहने लगी "शृणु सखि कौतुकमेक यन्नन्दनिकेतनागणे दृष्टम्। गोधूलिधूसरांगो नृत्यति वेदान्तसिद्धान्तः" इसका आध्यात्मिक अर्थ करने लगें तो सत्वगुणी इन्द्रियें ही गोएं हैं, देखनेवाली दो सत्वगुणी वृत्तियां है इत्यादि होगा, इस बार व्याख्यान को समाप्त करने के पूर्व मैं आपसे एक दक्षिणा मांगता हूं और वह यह है कि जो बाते मैंने आज के व्याख्यान मे कही है उनको अच्छी तरह ध्यान मे रखकर उनके अनुसार यथाशक्ति गोपालन करके भारतवर्ष मे दूध दही-माखन की समृद्धि कर दीजिये, पिछले साल जब मैं हैदराबाद गया था वहा कोई २९। ३० व्याख्यान लगातार दिये थे उनमे कितने ही व्याख्यान केवल मुसलमानो की सभाओं मे हुए थे, उनसे विदा होते समय मैंने यही दक्षिणा मागी थी कि यहां एक गोशाला बन जाय उन लोगो ने मेरे कथन का आदर करके एक पिंजरापोल खोला है और उसमे बहुत से मुसलमानो ने चन्दा दिया है और अपने खर्च से गोशाला के भीतर कुवे बनवा दिये हैं उसके बाद वैसीही दक्षिणा मुझे अमृतसर के लोगो ने दी है और वैसीहि मैं आपसे भी मांगता हूं और आशा करता हूं कि आप उसको प्रसन्नता से देंगे. कलकत्ते मे अभी थोडेही दिन हुए गो सेवक स्वामी हासानन्द ने सन्तत परिश्रम करके एक बडी भारी गोशाला खोली है और वह दिनों दिन उन्नति कर रही है, यह आनन्द की वार्त्ता आपको सुनाकर मैं अपना आसन ग्रहण करता हूँ।

बम्बई २। १०। १९०४

श्रीमान् पं० दीनदायालुजी महोदय का
वैश्य धर्म--
पर व्याख्यान.

वर्त्तमान समय मे जहां तहां कहा जाता है कि भारतवर्ष की अवनति ब्राह्मणो के कारण हुई है, ब्राह्मणो ने देश का सत्यानाश कर डाला, यदि हम इस कथन को मान भी लें तो भी इस विषय मे केवल ब्राह्मणही दोषी न ठहरेंगे इसका दोष चारो वर्णो पर आवेगा, ब्राह्मणो ने पढ़ने पढाने के सिवाय किसी काम मे अपना हाथ नही रक्खा संसार के उपकार का बोझा अपने ऊपर रखकर अपना पेटतक दूसरो के हाथ रक्खा, फिर यदि उनका यथोचित सम्मान न होने से अथवा विद्वानों का निरादर होने और मूर्खों के पूजने से ब्राह्मणजाति कर्तव्य विमुख होकर देश की अधोगति का कारण हुई तो इसका दोष ब्राह्मणो पर नही किन्तु क्षत्रिय और वैश्यो परही है, देश की अधोगति विशेषकर वैश्यो के कारण से हुई है, वैश्य चातुर्वर्ण्य समाज के स्तम्भरूप हैं, जब स्तम्भ ही अस्तव्यस्त हुआ तब समस्त अङ्ग बेकाम क्यो न होंगे ? संसार का व्यापार और संसार परिचालन वैश्यो के हाथ है, ब्राह्मणो के ब्राह्मणत्व, क्षत्रियो के वीरत्व और राजा के कोष तथा शूद्रो के दास्य की कुंजी वैश्यो के हाथ व उनकी बही मे है, वह अच्छे रहेंगे तो ही देश अच्छा रहेगा, उनके अधःपात के साथ देश का अधःपात अवश्यम्भावी है ॥

वैश्य के नाम के साथ "गुप्त" इसीलिये रक्खा जाता है कि देशस्थिति का मुख्य साधन जो व्यापार उसके रहस्यो को वह गुप्त रक्खे, परन्तु आज कल वैश्यजाति ईर्षा द्वेष मे ऐसी निमग्न होरही है कि गुप्तपन उनके कार्य मे नही केवल नाम मे रहगया है, देखा जाता है, कि विलायत और अमेरिका के व्यवसाई आपस मे मिलकर जिस

बातका सिद्धान्त करलेते है वह कभी दूसरोंपर प्रगट नहीं होने देते, परन्तु फूट के प्रसाद से भारत की वैश्य जाति ऐसी कर्तव्यशून्य होगई है, कि यदि चार वैश्य मिलकर कोई सिद्धान्त करना चाहे (पहिले तो कठिनही है) तो उनसे गुप्त रक्खाजाना कठिन होगा एक वैश्य को बढतेहुए देख दूसरा उसका भण्डाफोड करने को उतारू होता है और उसका लाभ विदेशी कम्पनियों के हाथ मे जाकर देश के वैश्य दिवालिये बनजाते हैं, वैश्य जाति कभी लक्ष्मी की कृपापात्र थी परन्तु अब वह बात नही रही, लक्ष्मी ने वैश्यो को धर्महीन, कर्तव्यविमुख देख पश्चिम की ओर प्रयाण किया, यह सिद्धान्त है कि जिस देश मे या समाज मे चार करोडपति हैं उस देश या समाज का भार उन करोडपतियोपर आपडता है, परन्तु आजकल समाज की कौन कहे, पडोस मे पडोसी भूखो मरता रहता है और सेठजी के यहां गुलछर्रे उडा करते है, ऐसे करोडपति को धिक्कार है जिसके धन से अनाथ और विद्वानो का उपकार न होसके, आजकल वैश्यो के दरवाजे पर चारो वेदो और शास्त्रो का ज्ञाता पण्डित आवे और भूख की असह्य वेदना के वश कुछ याचना करे तो सेठ जी उसे दुरदुरा देगे और कहेगे तुम हमारे सम्प्रदायके नहीं हो, हमारे गुरु घराने के नही हो, इसलिये तुम्हें कुछ नही मिलेगा, परन्तु अपने सम्प्रदाय वाले सण्ड मुसण्ड को सैकडो रुपये देगे जिसका परिणाम यह होरहा है, कि स्वर्गीय भारतमार्तण्ड पंडित गट्टूलालजीसे विद्वानो का अभाव होरहा है और अविद्वान् ब्राह्मण बढ रहे हैं, जब वैश्यजाति से उनका सब मनोरथ सिद्ध होता है तब वह विद्या क्यो पढने लगे ! यही कारण है कि ब्राह्मण बिगड चले और उनके साथही वैश्य जाति का भी अधःपतन होने लगा, अब जो कुछ शेष है उसकी रक्षा करके अपनी उन्नति करनी चाहिये, विद्वानो का आदर करो, और अविद्वान् ब्राह्मणो को विद्या मे लगाओ जिससे तुम्हारा कल्याण हो और देशका सुधार हो।

कहने मे लज्जा आती है परन्तु सङ्कोच छोडकर कहदेना चाहिये कि आजकल वैश्य थानेके थान कपडे नाप डालते हैं तथा उलट पलट करते है,सैकडो मनके गट्ठर उठाते रहते हैं मनो अनाज तौले डालते हैं,तब तो उन्हें बोझा नही मालूम होता, परन्तु धेलेभर सूत (यज्ञोपवीत) का बोझा उनसे नहीं सम्हाला जाता, बहुत हुआ तो लडके बाले होजाने पर पडित जी से यज्ञोपवीत लेने की प्रार्थना करते है. पण्डित जी भी कुछ प्राप्ति हो जाने के लालच से जनेऊ पहना देते हैं,किन्तु क्या इसे संस्कार कह सकते है । जब ८ वर्ष मे ब्राह्मण ११ मे क्षत्री और १२ वर्ष मे वैश्य कुमार का उपवीत संस्कार करने की शास्त्रो की आज्ञा है तब वह एक तमाशा मात्र समझा जायगा, सच बात तो यह है कि १६ संस्कारों मे अब वैश्यजाति में कोई भी अपने असली रूप मे नहीं होते, केवल गोदान और कन्यादान शेष रहे हैं सो गोदान मे अपात्र और कन्यादानके उत्सव मे रण्डियो का घर भरता है, संस्कार हीन होने से वैश्य व्रात्य होरहे है और श्राद्ध तर्पण आदि करनेके पर भी पितरो की तृप्ति नही होती है.वैश्यजाति को ब्राह्मण कर्म छोडकर सब वैदिक कार्य करनेका अधिकार है, अतएव वह वेद पढे, धन लगाकर अपने गुरु ब्राह्मणो को विद्वान बनावे, १६ संस्कार करें, सन्ध्या गायत्री का अर्चन करे, पञ्चयज्ञ करे और यथार्थ वैश्य बनकर अपने असली प्रभाव को प्राप्त करे, तब अवश्य ही वे अपनी उन्नति के सिवाय देश की उन्नति भी करसकेगे, यदि ऐसा नही करेगे तो संस्कार हीन होने से उनमे वैश्यत्व का नाम भी नहीं रहेगा ॥

वैश्य का सबसे प्रधान धर्म सत्य बोलना है, सत्य को लेकरही वैश्यत्व है परन्तु आज कल वैश्य जाति सत्य से बहुतही पराङ्मुख होती जाती है इन दिनो जिस तरह ब्राह्मण का धर्म भिक्षा मांगनाही बाकी रहाहै उसी तरह व्यापार में झूठा व्यवहार करना और वहीमे झूँठ लिखनाही बहुतेरे वैश्योने अपना धर्म और अपने व्यापारकी

उन्नति का सरल उपाय समझ रक्खाहै, बडे खेद की बात है कि वैश्य जिस हाथ से दिनरात सोना, चांदी और जवाहिरात तोलते हैं उसी हाथ से सत्यता के साथ धर्म को नही तोलते, धर्मका ख्याल न रहने से ही बालक विवाह, वृद्ध विवाह जैसी कुरीतिये वैश्यों मे चल-पडी है, वेदाध्ययन के बदले उन्होने वेश्यागमन मे प्रीति बढाई है, ब्राह्मण से धर्मत्व सीखने के बदले पानी भराना और लडका खिलाना आरम्भ करवाया है, परन्तु भाई तुम्हारी शोभा जब तुम उनसे धर्मामृत भरवाकर पियो. खरे खोटे की पहचान करके शुद्ध ब्राह्मणो की वृद्धि करो, जाति की उन्नति के लिये भाषा, वेश और भाव ये प्रधान हैं, इसलिये अपने देश का वेष बनाये रक्खो, परदेशी देश से लंगूर न बनो, नही तो न इधर के रहोगे न उधर के, क्योंकि समाज से स्वयं धृणा करके अलग होजाओगे और जिनकी नकल करते हो उनके यहां से भी दुरदुराये जाओगे. मातृ भाषा का समाज और कुटुम्ब मे सदा व्यवहार करो ! हां विदेशियो के साथ अथवा आवश्यकता पडने पर भलेही विदेशी भाषा का उपयोग किया जाय, किन्तु विदेशी झोंक मे आकर अपने कुटुम्ब और माता पिता के साथ अयोग्य बर्ताव नहीं करना चाहिये, आजकल के सुपूत साहबी झोक में आकर अपनी प्राचीन रीति के वस्त्रभूषण से भूषित माता पिता को देखकर बहुत शरमाते हैं, और उनका तिरस्कार करने लगते है, अपना भाव बदलने से जाति की विशेषता जाती रहती है, इसलिये अपना जातीय गुण और भाव स्थिर रक्खो जननी, जन्म भूमि, जाति, जाह्नवी और जनार्दन पर प्रीति रक्खो जिससे तुम्हारा अवश्य कल्याण होगा।

इसमे सन्देह नहीं कि व्याख्यान का मूल यदि यहां के वैश्य समझेंगे तो अपनाही नहीं किन्तु देश का बहुत कुछ कल्याण साधन कर सकेंगे इस गई बीती दशा मे भी बम्बई की वैश्य जाति धनवान् है इसलिये यदि वह चाहे तो अपने धनका सदुपयोग करके अपने गुरु ब्राह्मणो मे विद्या प्रचार के लिये और धर्मसाधन के लिये इस समय कुछ स्थाई प्रबन्ध कर सकते है ॥

बम्बई १२।८।१९०४ ई०

वर्ण व्यवस्था ।

सर्वस्यास्य तु सर्गस्य गुप्त्यर्थं स महाद्युतिः ।
मुखबाहूरुपज्जानां पृथक्कर्माण्यकल्पयत् ॥

पूर्व पक्ष ।

अन्य देशवासियों की दृष्टि मे हमारे सब पदार्थ निषिद्ध हैं,ऐसा दर्शाने मे उन्होने कोई त्रुटि नही रक्खी, उनके अनुयायियो और अनुचरो की दृष्टि मे भी ऐसाही समाया है, जो हमारे ही देशी भाई है,इन महात्माओ ने जहांतक(मूर्खता)के शब्द को दृढता से पकड लिया है, अब उनको हमारी सब बातो मे, सब कामो मे और सब रीति नीति मे जहालत घुसी हुई दृष्टि पडती है, यह लोग अपने व्याख्या नो मे अपने लेख मे. यही प्रकट करते है कि हिन्दुओं की सब बातें मूर्खता की है । इसी प्रकार वह वर्ण भेद कोभी मूर्खता का केन्द्र कथन करते है, इन नव शिक्षित महाशयो का और उनके म्लेच्छ यवन अ· ध्यापक लोगो का कथन है कि सब ईश्वर की सृष्टी है, इनमें वर्ण भेद कैसा ? ब्राह्मण क्षत्रिय क्या ? वैश्य शूद्र क्या ? कायस्थ क्षत्रिय क्या? डोम चमार क्या ? यह वाहियात् भेद क्या है ? यह उच्च और नीच क्या ? ब्राह्मण चांडाल के स्पर्श से क्यो नाक भौं चढाता है और यदि ब्राह्मण किसी चाण्डाल से छू जाता है, तो वह स्नान क्यो क· रता है ? इन कल्पित उच्च नीच जातियो का खान पान एक क्यो न· हीं होता ? जिसने चाण्डाल को सृजा है, उसीने ब्राह्मण को भी उत्पन्न किया है, जब कि सब एक पिता की सन्तान हैं तो भाई भाई मे भेद क्यो ?

ऐ ब्राह्मण भूदेवो!समय बडा टेढा आया है!अब हृदयकी गांठ खोल डालो, चिरकाल की सञ्चित मूर्खता का भण्डार फूँक दो ? कुलाभिमना

को शनैः शनैः कम करो? अब अपने को उच्चतर मत मानो! समझलो तुम्हारे बूढे बडे शास्त्र के बनाने वाले थे औरो के लिखने पढने मार्ग को रोके हुए थे वह लोग जो कहते वही शास्त्र था!कोई उनसे इनकार नहीं करसकता था,उन्होने अपनी लेखनी से अपनी बडाई आप लिखी है, उसीके अनुसार अद्यावधि काम चला आता था परन्तु अब न चलेगा ? अब वह समय नहीं है अब सब लिखना पढना सीखते है, बहुत से सीख गए हैं और बहुत से पण्डित और विद्वान् भी हो गए है। अब टुक मानासिक विचारो को पलट डालो और ऐ शूद्र साहिबो ! अब तुम्हारा नीच दशा मे निर्वाह करने का अवसर नही है और न कोई कारण है कि तुम अपने को सेवक मानो और ब्राम्हणो को देख- तेही प्रणाम करो, क्यो क्या इससे कुछ लाभ है, जिसकी न प्रतिष्ठा है और न श्रेष्ठता वह तृण से भी हलका है, उसकी उन्नति किसी प्रकार नही होसकती, इसीसे अपनी प्रतिष्ठा का विचार करो और उच्च बनो और हे नीच जातियो ! ब्राह्मणोने तुम्हारा बडा सत्यानाश किया है तुमको इस अधोगति को पहुँचाया, उन्होंने तुमको शिक्षाध्ययन मात्र से बहिष्कृत किया वह तुम्हारे पूर्ण शत्रु है, फिर तुम उनको क्यो प्रणाम करते हो? तुम्हारे पिता पितामहाओ को इन ब्राह्मणों ने विजय करके दास बनाया, पहिले वह बहुत थे परन्तु अन्त मे ब्राह्म णो के अन्यायाचरण से मर खप गए, इससे इन अन्यायी ब्राह्मणो को प्रणाम मत करो। मूर्खता के कारण प्रथम तुम इनकी बातो को नहीं समझते थे, परन्तु अब वह समय नही है शिक्षा तुम्हारे लिए विद्यमान है, नेत्र खोलो और देखो कि तुममे और ब्राह्मणो मे क्या अन्तर है ? जो दो हाथ और दो पैर उनके है वही तुम्हारे है, जो दो नेत्र और दो कर्ण उनके हैं सोही तुम्हारे भी हैं, फिर क्या तुमसे अधिक उनके सिर पर सींग हैं जिससे वह तुम से श्रेष्ठ बनते हैं ? नहीं वह कुछ भी श्रेष्ठ नही हैं। यदि तुम बराबरी का विचार करो तो बरा-

वर ही हो । इसके लिए न तो सेना की आवश्यकता है न युद्ध और न लडाई की ऐक्यता करो ! एक हो जाओ !! जाति भेद को दूर करो !!! तो तुम आजही ब्राह्मणो की समान होसकते हो ?

ऐ क्षत्रिय शूर बीरो ! तुम्हारे पुरुषाओं ने ब्राह्मणो के समान होनेके लिए बहुत युद्ध किया है ब्राह्मणो की चातुर्यता से कृतार्थ न होसके परन्तु अब कृतार्थ होना सहज है. तुम ब्राह्मणो के समान होसक्ते हो, इसके लिए तुमको अपने से कम वैश्य शूद्रादि के समान भी होना पडेगा । और हे वैश्य धन पात्रीगण ! धनके पति तो तुम हो, ब्राह्मण तो तुम्हारे याचक हैं और क्षत्रियों को भी तुम्हारा आश्रय है फिर तुम उसके अधःकोटि मे क्यो हो ? वैश्यो का उपकार करो पढो, लिखो, पण्डित बनो और स्मरण रक्खो, यदि ईश्वर को उच्च नीच बनाना स्वीकृत होता तो तुमही सबसे उच्च बनते,और हे भारतवासी चाण्डाल साहबो ! तुम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रो से बचकर क्यो निकलते हो तुम अपराधी नही हो, खूनी नही हो ! आओ भाई ! तुम हम सब ब्राह्मण क्षत्रिय सब समान है ऐसे नीचे मत रहो ।

उत्तर पक्ष ।

शोक ! शोक !! महाशोक

हिन्दु धर्म का नाश ! इस मूर्खता पर !! कैसे हिन्दू संकुचित चित्त है सब भाइयो का ऐक्य और जाति अभेद इनको स्वीकार नहीं इससे अधिक हृदयविदारक और क्या बात होसकती है ?

यह हमारे सुसभ्य नवीन रोशनी वाले भाइयो, जेन्टिलमेन बाबुओ, चन्दा मागकर आश्रम बनानेवाले सपत्नीक संन्यासिया और अपने कन्धे पर रिफार्मरी का जुआ रखने वाले देशहितैषियो के विचार है । विचार उनके कल्पित हैं अथवा यथार्थ यह हम नहीं कह सकते परन्तु यह अवश्य है कि यह बाबू लोग अपने नौकरो पर अवश्य क्रोध करते है उनको वैसे कपडे नही देते है, जैसे आप पहिनते है और न मैले कपडे

वाले नौकर को साथ खिलाते हैं इसमे कुछ सन्देह नहीं कि आप सभी मिल गिद्धोवाली दावत का मजा अवश्य उडाते है, इनका जाति विचार खाने तक समाप्त है शेष अपने धन का तुल्य भाग यह किसी से नही करते है अस्तु, इस समय इससे कोई सम्बन्ध नही है, विचार है दूसरी बात पर क्या यह विचार सत्य है? और सच मुच ईश्वर को जाति भेद अथवा वर्णभेद स्वीकृत है वा पुरुषका बनाया है, परन्तु बात इस प्रकारकी नही है, वर्णभेद कल्पित नहीं है परञ्च यह वेद शास्त्र विहित है, और साइन्ससेभी यह सिद्ध होता है कि वर्ण भेद प्राकृतिक है, इस समय इस बातका विचार वृथा है कि सृष्टिका कर्ता ईश्वर है अथवा ब्रह्मा, प्रकृति इसे बनाती है अथवा स्वयं बनजाती है, बाबू साहबो और साइन्सके चेलोके बडे गुरु मिस्टर डारविनसे लेकर बडे बडे साइन्सवादी और हिन्दुओके पण्डित सबका कथन है कि पुरुष से पहिले कीटादि जन्तु उत्पन्न हुए और इनसेभी पूर्व वृक्ष बने थे, यथा विष्णुपुराणमे लिखा है किः-

पञ्चधावस्थितेः सर्गं ध्यायतोऽप्रतिबोधवान् ॥
बहिरन्तोऽप्रकाशश्च संवृत्तात्मा नगात्मकः ॥ १ ॥
मुख्यानगायतश्चोक्ता मुख्यसर्गस्ततः स्वयम् ॥
तं दृष्ट्वा साधकं सर्गममन्यदपरम्पुनः ॥ २ ॥
तस्याभिध्यायतः सर्गं तिर्यक् स्रोताभ्यवर्तत ॥
यस्मात् तिर्यक्प्रवृत्तःसा तिर्यक्स्रोतास्ततःस्मृतः॥३
पश्वादयोत्रविख्यातास्तमःप्राया ह्यवेदिनः ॥
उत्पथग्राहिणश्चैव ते ज्ञानेऽज्ञानमानिनः ॥ ४ ॥
अहंकृता अहंमाना अष्टाविंशद्विधात्मकः ॥
अन्तःप्रकाशास्तेसर्वे आवृताश्च परस्परम् ॥ ५ ॥

तमप्यसाधकं मत्वा ध्यायतोऽन्यस्ततोऽभवत् ॥
ऊर्ध्वस्रोतस्तृतीयस्तु सात्त्विकोर्द्ध्वमवर्तत ॥ ६ ॥
ते सुखप्रीतिबहुला बहिरंतस्त्वनावृताः ॥
प्रकाशाबहिरंतश्च ह्यूर्द्ध्वस्रोतोभवाः स्मृताः ॥ ७ ॥
तुष्टात्मनस्तृतीयस्तु देवसर्गस्तु संस्मृतः ॥
यस्मिन्सर्गेभवप्रीतिर्निष्पन्ने ब्रह्मणस्तथा ॥ ८ ॥
ततोऽन्यं स तदादध्यौ साधकं सर्गमुत्तमम् ॥
असाधकांस्तुताञ्ज्ञात्वामुख्यसर्गादिसम्भवान् ९॥
तथाभिध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्ततः ॥
प्रादुर्बभूववाव्यक्तादर्वाक्स्रोतस्तु साधकः ॥ १० ॥
यस्मादर्वाक्प्रवर्तन्ते ततोऽर्वाक्स्रोतसस्तुते ॥
तेच प्रकाशबहुलास्तमोद्रिक्ता रजोधिकाः ॥ ११ ॥
तस्मात् ते दुःखबहुला भूयो भूयश्चकारिणः ॥
प्रकाशाबहिरन्तश्च मनुष्या साधकाश्च ते ॥ १२ ॥

विष्णुपुराण प्रथम अंश अ० ५ श्लोक ६ से १७ तक ।

इसका भावार्थ यह है कि ब्रह्माने सृष्टिको उत्पन्न करनेके लिये विचार किया, तब वृक्ष उत्पन्न हुए । इन वृक्षोंमे पांचों प्रकारके वृक्ष झाडी बेलादि सब आ चुके । यह सब विद्याहीन थे अन्दर बाहिरसे सर्वथा अज्ञानी, बेसुध । ब्रह्माकी यह पहली उत्पन्न की हुई वस्तु प्रथम सृष्टिके नामसे प्रसिद्ध हुई, ब्रह्माजीने इससे अपना मनोरथ सिद्ध होते न देखकर और सृष्टि हुई । कीट, पतङ्ग, पशु, पक्षी, सब इसके अंतर्गत हैं, यह सृष्टि तमप्रधान थी और सत्यके ज्ञानसे शून्य कुपथगामी और मूर्खताकी बुद्धिमत्ता समझनेवाली, इनको सुख दुःखका बोध होने पर

भी यह मूर्ख थे अर्थात् यद्यपि इनको सुख और दुःखका ज्ञान था परंतु जान बूझ कर दुःखमें फॅस जाते थे। दानके लिए जलका विचार न करते थे, इसलिए इससे भी ब्रह्माजीको सन्तोष न हुआ, और दूसरी सृष्टिका बिचार किया अर्थात् सत्व प्रधान देवतालोग उत्पन्न हुए। यह लोग अन्दर बाहिरके जानने वाले, और सुख स्नेह प्राप्त करनेवाले और सब स्थानोमे प्रकट होते हुए इनसे ब्रह्मा बहुत प्रसन्न हुए फिर मनुष्यो की रचना की यह सत्व, रज, तम, प्रधान दुःख से मिले हुए और अन्दर बाहिर के अच्छी प्रकार जाननेवाले थे। इन लोगों को कर्म अधिकारी और ज्ञान अधिकारी देखकर ब्रह्मा बहुतही प्रसन्न हुआ। और समझा कि यही प्रयोजन की वस्तु है।

प्रकृति नियम बडेही अद्भुत और विचित्र हैं, इसी से सृष्टि और ईश्वर का कौशल प्रतीत होता है कोई वस्तु सृष्टि ऐसी नही है कि जिसमे वर्ण भेद और जाति भेद न हो जिस समय जगत् मे मनुष्य का नाममात्र भी न था और हमारे सुसभ्य बाबू लोग जिस मनुष्य समुदाय को "सब समान है" कहकर पुकारते है भविष्यत्काल के उदर में था उस समय भी जाति भेद और वर्ण भेद विद्यमान था, यह सृष्टि कर्ता अपने मानसिक विचार को नही जानते थे क्या वह सर्वगुण सम्पन्न और सर्वान्तर्यामी और सर्वज्ञ जगदीश्वर यह नही समझता था कि उसकी अभिलाषा क्योकर पूरी होसक्ती है अथवा प्रकृति में यह शक्ति न थी कि केवल वृक्षो को ही उत्पन्न करती। मनुष्य और जीवो को उत्पन्न न करती। बात यह कि जगदुत्पत्तिका कारण न कोई जानता है और न किसी मे जानने की शक्ति थी, पहले पांच तत्त्व [पदार्थ] थे पीछे पशु हुए, फिर देवता हुए यदि आप देवताओं की शक्ति के भी मानने वाले नही है तो मनुष्य हुए मनुष्य सब से श्रेष्ठ और वही सब से पीछे हुआ है, अब सृष्टि को चाहै ब्रह्मा ने उत्पन्न

किया, चाहे प्रकृति ने, परन्तु यह बात स्पष्ट है कि रचने वाले ने भांति २ की सृष्टि उत्पन्न की, यही तो एक अद्भुत बात है यह भेद ही तो विस्मय जनक है, अब तुम प्रकृति की विचित्र और अद्भुत शक्ति पर विचार करो, देखो सब से प्रथम पांच तत्त्व जो निर्जीव थे उत्पन्न हुए जिनके नाम अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी और आकाश है, अब यदि आप आकाश तत्त्व को भी न माने, तो चार पदार्थ अथवा तत्त्व वायु, तेज जल और पृथिवी को तो अवश्य मानेंगे ।

इनसे भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वश्य और शूद्र चार वर्ण प्रकट हुए । और यह विभाग उस समय भी था, जब कि महात्मा मनुष्य संसार में नहीं पधारे थे, वायु के गुण देखो, शान्त है, कोमल है और वेगवान है तथा बलिष्ठ है, निर्मल है, शुद्ध सर्वोपकारी है इस की पवित्रता, कोमलता और वेग को देखकर निःसन्देह ब्राह्मण कहने को चित्त चाहता है देखो वायु सब के साथ है परन्तु सब से पृथक् भी है दूसरों को लाभ पहुंचाता है अपने लाभ से इसे कुछ प्रयोजन नहीं यही ब्राह्मणों के गुण है ।

अग्नि तेजवान है और तीक्ष्ण है इसमें क्षत्रियत्व टपकता है जलते हुए अङ्गार की प्रचण्ड ज्वाला को देखकर कौन कहता है कि वीर क्षत्रियों को इस की उपमा न दीजावे, इसमें कुछ सन्देह नहीं कि अग्नि के और क्षत्रियके एक गुण हैं, वह सदैव उद्योग करती है और यह भी गुण क्षत्रियो का है । इसी प्रकार जल के गुण वैश्य के से हैं, वह खेतो को जल प्रदान करता है, खेतो की उन्नति का कारण है अधूरे को पूर्ण करना जलही का गुण है, सदा शीतल है, सर्व प्रिय है आहा ! वैश्य के जल से क्या अच्छे गुण की समानता है, अब रही पृथिवी सो वायु, अग्नि, जल, सबको पृथिवी से सहायता मिलती है, चलने का स्थान पृथिवी के बिना और कोई नही. आदि पुरुष के दोनो चरणो से पृथ्वी बनी है, जैसा कि श्रुति कहती है ।

॥ पद्भ्यांभूमिः ॥

और तीनों वर्णों के सेवक चरण हैं, भगवान् के चरणों से शूद्रों की उत्पत्ति है, इसी से पृथिवी की उपमा शूद्रों से होसकती है और वास्तव में सत्य भी यही है, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी के गुणों की समानता ब्राह्मण, क्षत्रिय,वैश्य और शूद्र से दिखाई गई है, जब कि पांच तत्वों के कथन में आकाश की भी गणना है, इस लिए आकाश की समानता तपस्वी ब्राह्मण की भव्य और पवित्र मूर्ति से देते हैं, चाहे आधुनिक सुसभ्य बाबू मानें, अथवा न मानें, क्योंकि यही वर्णभेद के मूल हैं।

पाठक वृन्द! आप नेत्र खोल कर समस्त ब्रह्माण्ड की ओर देखिए, उसमें किस प्रकार वर्ण भेद और जाति भेद प्रत्यक्षरूपसे विद्यमान है, ईश्वर ने पञ्चभूत के अनन्तर वृक्ष फल आदि उत्पन्न किये। इनमें वर्णभेद विद्यमान है। यज्ञ की पवित्र कुशा ब्राह्मण रूप है, ऊँचे ताल खजूर आदि उच्च तन क्षत्रिय हैं, नीम गूलर आदि वैश्य हैं, बबूल जन्टादि दृढ और कुरूप वृक्ष शूद्र हैं। गूढ विचार से देखो कि इसी प्रकार इनका वर्ताव संसार में होता है या नहीं। यही भेद पांचों प्रकार के छोटे बडे वृक्षों में जारी हैं, इसी प्रकार पशुओं में भी यही भेद विद्यमान हैं। देखिये शास्त्र का यह वाक्य क्या कहता है:—

ब्राह्मणश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधाकृतम् ।
एकत्र मन्त्रास्तिष्ठंति हविरन्यत्रतिष्ठति ॥

ब्राह्मण और गौ वास्तव में एकही हैं केवल इनके दो भेद हैं,एक तो यज्ञ करने वाला मन्त्र है और दूसरा यज्ञ करने वाली सामग्री है। अर्थात् ब्राह्मण मंत्र पढता है और गौ से घृत दुग्धादि होम की सामग्रिये उत्पन्न होती हैं, महाभारत मे भी जहां च्यवन ऋषि की कथा है, वहां लिखा है कि गौ और ब्राह्मण का एक मूल्य है, अर्थात् अमूल्य पदार्थ हैं इसी से

पशुओं में गौ ब्राह्मण है, सिंह क्षत्रिय है, महिष बकरी आदि वैश्य और ऊँट अश्वादि भारवाही जीव शूद्र है। पवित्र यज्ञ का कार्य पूरा करने वाली गौ ब्राह्मण हो सकती है या नहीं ? बलवान् सिंह को क्या क्षत्रिय नहीं कह सकते ? सब को लाभ देनेवाली भैंस और बकरी क्या वश्य कैसे गुण नहीं रखती ? इसी प्रकार भारवाही ऊंट घोडे आदि भी शूद्र है।

नवशिक्षित क्षत्रिय महाशय उत्तर दे, कि सिंहकी समानता क्षत्रिय मे ठीक नहीं है। कहिए यह "सिंह" शब्द जो आपके नाम के साथ होता है, यह सिंह का पशुओं मे क्षत्रिय होना प्रकट करता है या नहीं ?

पाठक महोदय ! आपने देखा पञ्चभूतों मे चार वर्ण विद्यमान हैं। फिर वनस्पति मे चार वर्ण है, सिद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं है कि सिंह, हस्ती, वृषभ, भैंसा, गैंडा, बड, पीपल खजूर, सर्प, छछूंदर और कपि (बन्दर) सब अपना वर्ण भिन्न २ प्रकट कररहे है। अब हे नवशिक्षित प्रतिष्ठार्ह महाशयो! और हे अन्य देशवासी महोदयो ! बताओ यह भेद किसने किया है ? किस की मूर्खता है ? यह किस प्रकार भेद हुआ है ?

बिचारे पशु और वृक्ष तो यह न समझते थे, कि अपनी पृथक् २ समाज और पृथक्२आश्रम करलो।लंगूर का मुख काला और पूंछ लम्बी कर देते, सिंह के नख तीक्ष्ण फाडनेवाले और हस्ति की नाक पृथ्वी तक लम्बी लटका देते, अवश्य यह ईश्वर ही ने अथवा प्रकृति ही ने किया है। हम ईश्वरकी शक्तिमे दखल नही देसकते और नहीं कहसकते कि क्यो नही उसने सब जीवो को एकही रूप का बनाया। परन्तु ऊपर के उदाहरणो से स्पष्ट प्रतीत होता है कि अवश्यमेव ईश्वरको वर्ण भेद स्वीकृत है।

आप लोग तो शास्त्र पढे ही नहीं और यदि पढे हों तो उसे मानते नही इसलिये आपको शास्त्रो की दोहाई देना वृथा है। परन्तु आइए

पधारिए ! युक्तिबल से दो २ बातें करें और उनको प्राचीन शास्त्रा से मिलाते जाओ, कि वर्णभेद और जाति भेद ठीक है या नही ? वह न्याय से भरपूर है अथवा ब्राह्मणो की स्वार्थता है। देखो वृक्षो के कई प्रकार के भेद हैं। और उनके आहारो से प्रतीत होते है परन्तु क्या बाह्याकार से ही भेद प्रकट होसकता है ? किसी और प्रकार नही ? अवश्य होस-कता है, इसीलिए तो ईश्वर वनस्पति और पशुओं को बनाकर सन्तुष्ट न हुआ। एक भेद और है उसका नाम अतिरिक्त भेद है। जब ईश्वर ने देखा कि और सृष्टि मे यह गुण नही है तो उसने मनुष्यो को उत्पन्न किया, इसका भेद बडा विचित्र और अद्भुत है। और सृष्टि मे विस्मय जनक है। देवताओं के अनन्तर भी मनुष्य के उत्पन्न करने की आवश्यकता हुई। यही मनुष्य का गौरव है। इसमे तीन गुण से भरेहुए मनुष्य को अर्थ, काम और मोक्ष होता है। यह बात देवता-ओं को भी अप्राप्य है। देवताओं को सुख और आनन्द प्राप्त है मनुष्य उद्योग करके देवताओं के समान प्रत्युत उनसे उच्चतर हो सकता है, परन्तु देवता उद्योग करके मनुष्य से श्रेष्ठ नही होसकता। मनुष्य जो अक्षय पद प्राप्त कर सकता है, उससे कोई बढकर पद नही। मनुष्य के समान पद प्राप्ति के लिए देवता को चिरकालकी आवश्यकता है इससे मनुष्य की श्रेष्ठता है। जिस "आन्तरिक परिवर्तन अथवा आन्तरिक चिह्न का हमने ऊपर नाम लिया था उसके अनुसार मनुष्य ही बनाता है। पांचों तत्त्वो में वह बात नहीं है, वृक्षों मे भी न होने के समानही है। पशुओं की अवस्था इनसे कुछ श्रेष्ठ है, क्योंकि इन सब का भेद बा-ह्य लक्षणो से नहीं है, और यदि कुछ है तो गणना मे नही, मनुष्यो का वर्णभेद नितान्त आन्तरिक है, इससे भी सृष्टिकर्ता के अद्भुत कौ-शल का परिचय पाया जाता है। किसी गूढ विचार से जीव जड सब का भेद परामात्मा ने किया है, परन्तु कहीं आकार में कहीं शरीरान्त-र्गत, अन्तिम स्थानही भेदको पूर्ण करता है, यह आन्तरिक चिह्न भी

बाह्य चिह्नों की भांति कुल मे परम्परा चलेआते हैं अर्थात् जिस प्रकार अन्य जीवोंका बाह्य चिह्न कुलपरम्परा से चला आता है, इसीप्रकार मनुष्यका भी आंतरिक चिह्न कुलपरम्परा से है। सिंह का युवा बच्चा भूखा प्यासा दुर्बल रोगग्रस्त होने से भी सिंह का ही पुत्र है, और लोगो को उस आकार मात्रसे ही भय होता है, परन्तु गर्दभ यदि सिंह का मृगान भी ओढकर निकले तो वह गर्दभही रहता है। हस्तीका बच्चा कैसा ही स्थूलाकार और बलवान् भी हो सिंहके निर्बल शावक (बच्चे)का सामना कदापि नहीं कर सकता, गौ कैसी निर्बल और बलहीन हो खरी से उसकी अधिक प्रतिष्ठा है।

कःपरित्यज्यदुष्टांगां दुहेच्छीलवतींखरीम्।

अर्थात् दुष्टा गौ को त्यागकर कोई सुशीला खरी को न दुहेगा, आन्तरिक चिह्नो से सम्बन्ध होने पर भी पशुओ का जाति भेद बाह्य के चिह्नो से लिये जाता है, उनके आन्तरिक चिह्नो मे अन्तर होनेपरभी बाहिर के चिह्नोसे ही उनकी कुल परम्परा मानी जाती है। मनुष्यो का वर्ण तथा जाति भेद आन्तरिक समझा जाता है, इसलिए वह और जाति को शामिल नहीं कर सकता, कोई पुरुष कैसाही शुद्धाचार और योग्य क्यों न हो, परन्तु इससे वह किसी और वर्ण अथवा जाति मे दाखिल होने के योग्य नहीं होसकता, क्षत्रिय अथवा शूद्र विद्या और अनुष्ठान मे बहुत बढजाने से अथवा अपने सदाचार की श्रेष्ठता करने से ब्राह्मणका सवर्णी नहीं होसकता, हस्ती का हृष्ट पुष्ट और बलिष्ट बालक हस्तीका बच्चा कहलाकर शोभा पासकता है, परन्तु कोई उसकी हृष्ट पुष्टता से उसे सिंह का बालक न कहेगा, इसी प्रकार शूद्र यदि बहुत बढ जाय अथवा विचार मे ब्राह्मणो के समान होजाय तब भी वर्णमे ब्राह्मण नहीं होसकता, इसी प्रकार निर्बल और अनपढ ब्राह्मण भी ब्राह्मण वर्ण से पतित नहीं हो सकता, इसमें कुछ सन्देह नहीं किन्तु उत्तम कर्मों और शुद्धाचार से अपने वर्ण मे श्रेष्ठ होसकता है।

अब एक बात शेष है और वह यह है कि यदि ब्राह्मण वेदाध्ययनादि के न करने से जाति से बहिष्कृत नहीं होसकता, तो म्लेच्छों के साथ खाने से क्यों खारिज होसकता है। इसके विषय में हम इतना कहते हैं कि, जब मनुष्य निर्बल रोगी रहता है उसका शरीर रहता है, परन्तु मर जाता है, तो कोई भी उस शरीर को दाह किए बिना नहीं रहता। इसी प्रकार महा पाप करने से ब्राह्मण और क्षत्रिय का जाति वर्ण नष्ट होजाता है। अर्थात् मरजाता है,और वह बिरादरी से निकाल दियाजाता है, जबतक यह जाति नहीं मरती है, तबही तक वह ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय समझा जाता है (१)सत्वगुण, (२) रजोगुण,(२)रजतमो सत्वगुण, (४) तमोगुण–इन चारों गुणों से चार वर्णों का आन्तरिक चिह्न बनाया गया है, यथा शास्त्र मे लिखा भी है।

शुद्ध विचार वाले ब्रह्मा ने सृष्टि को रचने के लिए जब इच्छा की तो उसके मुख से एक ऐसी सृष्टि उत्पन्न हुई, जिसका स्वभाव सत्वगुण प्रधान था और बाहुओंसे रजोगुणवाली सृष्टि, और जंघाओं से रज और तमगुण वाली और पैरों से तमोगुणवाली सृष्टि उत्पन्न हुई,इनमें पहले ब्राह्मण,दूसरे क्षत्रिय तीसरे वैश्य और चौथे पैरों वाली शूद्र हैं।

ब्राह्मण चाहे कैसी पतितावस्था मे हो और अपनी विद्या और क्रिया कर्म को भूल गया हो,परन्तु उसकी सत्वगुणी वृत्ति बदल नहीं सकती, हाँ उसकी शरीरकी दशानुसार रुग्ण रहसकती है, इसी प्रकार क्षत्रिय चाहे कैसे ही सत्त्वगुणके लिए उद्योग करे, परन्तु उसकी प्रकृति तो रजोगुणसे बनती है वह किसी प्रकारसे भी ब्राह्मण नहीं होसकता। हाँ यदि ब्राह्मण विद्वान् है, कर्म काण्डी है, तो उसका सत्त्वगुण पूर्णमासीके चन्द्रमाकी भांति प्रकाशमान होगा, और क्षत्रिय अपने कर्ममें पूर्णरूपसे तत्पर होगा और सदाचारी होगा उसकी शूरवीरता मध्याह्नकालके सूर्य की समान तेजोमय होगी,इसी प्रकार और जातियोंके विषयमें भी जानलोयही सृष्टि नियम है औरइसी सृष्टि नियमके प्रतिकूल जो लोगहैं,वह चांडाल और वर्णसङ्कर(दोगले)हैं।जैसे ब्राह्मणी

और शूद्रका जाया महा नीच चाडाल(भंगी)कहा जाता है जब कि स-त्वगुण वाली ब्राह्मणी तमोगुणवाले शूद्रसे मिल दोनोंकी प्रकृतिका सत्या-नाश होकर उच्चकोटिका तम उत्पन्न हुआ,और उससे घृणास्पद भंगी उत्पन्न हुआ,यह केवल उदाहरण है और जातियोपर भी इसी प्रकार अनुमान करलो।स्पष्ट प्रतीत होता है कि जातिभेद ईश्वरको ही स्वीकार है,यह किसीका गढा या बनाया हुआ नही वह मूर्खतासे नही बना है प्रत्युत हिन्दुओंकी उन्नतिके साथ उसकी उन्नति हुई है, पशुओंका वर्ण भेद,शारीरिक है और मनुष्यका आन्तरिक, स्वाभाविक कुल परम्परा परन्तु घोर पापसे प्रकृति और कुल दोनो ही मिट जाते हैं।

इस बातको हम पहलेही कहचुके हैं, कि ब्राह्मणका स्वभाव सात्त्विक है, इसी प्रकार क्षत्रियका राजसिक, वैश्यका राजासिक और ताम-सिक और शूद्रका स्वभाव तामासिक है यह स्वभाव भेद हमको चारें-वर्णोंके गुण, कर्म और अवस्थासे ज्ञात होते हैं, शास्त्रने इसको बडी उत्तमतासे दर्शाया है, परन्तु आप महाशयोंके सामने युक्तिहीसे काम लिया जावेगा और जैसे आपके प्रश्न होंगे वैसेही उत्तर दिये जावेंगे,देखिये जैसे भारतवर्षमे अनेक प्रकारके पशु और आरण्यक जीव विद्यमान थे, जिनको किसी प्रकारकी बुद्धि नही थी,यह नंगे फिरते थे और वृक्षोंके फल पुष्प खाकर निर्वाह करतेथे,इनको खाने,पीने,भूषण पाहिनने,पुस्तक पढने आर्य समाजके दफ्तरमें नाम लिखाने, ब्रह्म समाजके मन्दिरमे जाकर उपासना करने आदि बातोका कुछ भी विचार नही था।

सिह, रीछ, भैस, किसीसे इनका रूप नही मिलता, पुरुषोंके से इनके नेत्र, कर्ण और नासिका थी शृङ्ग पुच्छसे हीन थे, तीक्ष्ण लम्बे डरावने दात और फाडने वाले आंकडे नख अवश्य रखते थे, जिस समय इनमे मांसोका बल था, उस समय कोई मोलवी अथवा पण्डित इनको शिक्षा देने वाला न था, और न सभ्यता सिखाने वाला। जि-सने उनको उस अवस्थामे शनैः २ उन्नतिके सोपानपर ले जाकर "ह-

जरते इनसान" बनाया हो, केवल कालकी बिकराल गतिसे प्रकृति के नियमने ही उनको इस नूतन अवस्था तक पहुंचाया, और उस समय के लोगो की समान अवस्था और एकसी बनावट होने परभी बहुतो को उन सबका शिक्षक बनाया, और उन शिक्षकोने उस समयके पुरुषोको शिक्षा और सभ्यतासे भूषित किया तो क्या आप यह स्वीकार नही करेगे, कि उनका स्वभाव अवश्य सामान्य पुरुषोसे उत्तम था, अथवा यह कि प्रकृतिने अवश्य इनको और लोगोसे श्रेष्ठतर गुणों से भूषित किया था ? अस्तु आप लोगोंका यह कथन हम विना किसी प्रकारके तर्क वितर्क स्वीकार करलेते है, कि ब्राह्मणोने वर्ण भेद तथा जाति भेद केवल अपने आपको सर्वोत्तम करनेको किया, परन्तु इसके साथ आपको यह तत्काल मानना होगा कि सबसे प्रथम ब्राह्मणही विद्वान् और बुद्धिमान् हुए और सबसे प्रथम उनको विद्या और बुद्धि पर अधिकार प्राप्त हुआ ! अतएव ब्राह्मण वह लोग है कि जिससमय मनुष्य वनमानस की अवस्थामे अज्ञानी और मूर्ख थे उनसे उन्नति करके सबसे प्रथम मनुष्योंके गुरु बने केवल इस गुणके प्रतापसे जो इस समय और वनमानसो की अपेक्षा प्रकृतिने उनको विशेष प्रदान किया था !

आज कलका समय आप लोगोंकी मनभावनी उन्नतिका समय है, स्कूल कालेज, पाठशालाएं, मदरसे और शिशुशालाएँ विद्यमान है, प्रत्येक विद्याके पण्डित महाशय बाहुल्यतासे मिल सकते है । इस समय विद्या पढना और सीखना सबको सुगम है, ऐसे समयमे भी जो विद्या प्राप्त न करसके, क्या वह नितांत कुबुद्धिवाला पुरुष नही है ? पाठक वृन्द ! आज वह समय है, कि सूक्ष्म से सूक्ष्म विषय सीखने के लिए उपाय विद्यमान है, बैठने को यदि उत्तम नही तो साधारण स्थान अवश्य मिलजाते है, यह तो नही, कि निर्धन विद्यार्थी पीपल के वृक्ष के नीचे बैठा व्याकरण याद कर रहा है, आधी चलती है और वृक्ष की शाखा के टूटने का भय है वर्षा होरही है और शीत के कारण कपकपी

लगरही है भोजन के न मिलने से वृक्षों के फल पुष्प खाकर निर्वाह कररहा है. मनुष्यों की सङ्गति न मिलने से पशुओं में मिलकर रहता है। भाई! अब तो सहस्रो पुस्तकें,सहस्रों स्कूल, सहस्रों पाठशालाएं लाखों,ग्राम, करोडों मनुष्य और मनो खाने पीने की सामग्रिऐं विद्यमान हैं, इससे सहज और सुगम तथा उत्तम अवसर विद्या प्राप्ति करनेका क्या और होसकता है? परन्तु इस सुगमता परभी कितने सुशिक्षित है?

परन्तु उस भूतकाल मे जब कि उत्तम अन्न,गाय से दुग्ध और दुग्ध से घृत निकालने का विचार मनुष्य को स्वप्न मे भी नहीं था, उस समय में जो लोग उन सब आवश्यकताओं,को दूर करके उन्नति के सोपान पर आरूढ हुए हैं, उनके गुण कैसे उत्तम और अपूर्व थे, इस समय की उच्चशिक्षा और सभ्यता की डीग मारने वाले लोग जो इस समय की प्राचीन विद्याओं को देखकर विंस्मित होते हैं, और उनको प्राप्त करने की शक्ति अपने में नहीं पाते, इन अद्भुत विद्याओं को जिन लोगों नें किसी की सहायता के बिना प्राप्त किया था वह कैसे अद्भुत गुणों के लोग थे। जिस परमेश्वर को "यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्यमनसासह" कहा गया है,उसके पास जिनका मस्तिष्क यहां तक पहुंचगया है, कि सब मस्तिष्क का घमण्ड उससे चूर २ हो गया और होरहा है तथा और होगा. वह लोग कैसे अद्भुत स्वभाव रखने वाले थे, कि जिनके मस्तिष्क से विज्ञान, ज्यौतिष,काव्य, पुराण आदि निकल कर समस्त भूमण्डल में विद्या के प्रकाश फैलाने का कारण हुए हैं, वह किस स्वभाव के लोग थे? अब हम भी तुम्हारे सुर मे सुर मिलाकर कहते हैं, कि ब्राह्मणही वर्ण भेद तथा जाति भेद के कारण हैं, जब कि उन्होंने अपने गुणो से एक अद्भुत गुण पाया तो उसकी सदैव रक्षा के लिए और देशके लाभ के निमित्त जिससे उनका सुस्वभाव साधारण निकृष्ट गुण से मिलकर नष्ट न हो वर्ण भेद को वेदानुसार विख्यात किया इस उत्तम गुण के पश्चात् जो

लोग बलवान् हुए उन्ही को हम क्षत्रिय मानलेते है, उन क्षत्रिय और ब्राह्मणो से प्राचीन काल में अपनी २ श्रेष्ठता के लिए झगड़े हुए, परन्तु उससे हानि क्या है ? और भी विचार करने की बात है कि "ब्राह्मणोस्यमुखमासीत्" इस श्रुति के अनुसार जब कि चार वर्ण की उत्पत्ति है तब मनुजी उनके कर्मोंका विधान करते हैं यह नही कहते इन कर्मोंका करनेवाला यह वर्ण होता है और गीता में स्वभाव लिखे हैं सो वह प्रमाण नीचे लिखते है ।

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा ।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥ मनु० ॥

वेद पढना पढाना, यज्ञ करना कराना, दान लेना देना यह छः कर्म ब्राह्मणोके वास्ते नियत किये गये और—

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानंविज्ञानमास्तिक्य ब्रह्मकर्मस्वभावजम् ॥ भ०गी०

मनसे किसी का अनिष्ट चिन्तन न करना, इन्द्रियो का रोकना, पवित्रता क्षान्ति (सहना) आर्जव (सीधापन) कोमलता, ज्ञान, विज्ञान, आस्तिकता ईश्वर को मानना यह ब्राह्मणो के स्वाभाविक कर्म हैं ।

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः ॥ मनु० ॥ १
शौर्यतेजोधृतिर्दाक्ष्यं युद्धेचाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रकर्मस्वभावजम् ॥ भ०गी० ॥ २

प्रजा की रक्षा, दान देना, यज्ञ करना, विषयो मे नहीं फँसना, वेद पढना यह कर्म क्षत्रिय के हेतु बनाये ॥ १ ॥ और शूरता, तेज,

धृति, धैर्य्य, चतुरता, युद्ध से नही भागना, दान देना, ईश्वर मे प्रीति करना यह क्षत्रियो के स्वाभाविक कर्म हैं ॥ २ ॥

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ॥मनु० ।१।
कृषिगोरक्षवाणिज्यं वैश्यकर्मस्वभावजम् ।।भ०गी०।२।

पशुओ की रक्षा करनी, दान करना, वेद पढना, व्यापार करना, ब्याज लेना, खेती करना, यह कर्म वैश्यो के अर्थ बनाये ॥ १ ॥ खेती गोपालन व्यापार यह वैश्यो का स्वाभाविक कर्म है ॥ २ ॥

एकमेवहि शूद्रस्य प्रभुः कर्मसमादिशत् ।
एतेषामेववर्णानां शुश्रूषामनसूयया ॥ मनु० ॥ १॥
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापिस्वभावजम्॥भ०गी०२।

शूद्र का एकही कर्म है, निन्दा को छोडकर तीनो वर्णों की सेवा करना यह मनुजी ने ठहरा दिया है ॥ १ ॥ गीता में लिखा है शूद्र का सेवा करना यह स्वाभाविक कर्म है ॥ २ ॥

इससे यह बात सिद्ध होती है कि ब्राह्मण को ऐसे,क्षत्रिय को ऐसे, वैश्य को ऐसे और शूद्र को ऐसे कर्म करने चाहिये यह अर्थ नहीं है कि इस कर्म के करने से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र होजाता है किन्तु चारो वर्ण प्रथम उत्पन्न हुए पश्चात् उनको कर्म सोंपे गये जैसे कोई कहे कि यज्ञदत्त तुम यह काम किया करो तो क्या इसके यह अर्थ होगे कि जो अमुक २ कार्य करै वोही यज्ञदत्त होता है इससे विदित हुआ यज्ञदत्त किसी पुरुष का नाम पूर्वकाल से है, अब उसको कार्य सौंपे गये है, यदि कर्म करने से ब्राह्मणादि होते तो ऐसे लिखते कि जो अध्ययनादिक करे वह ब्राह्मण होता है, सो यहां यह बात नहीं किन्तु उनको कार्य सौंपे हैं जैसे कि पहिले तो चारों वर्णो के नाम पीछेसे उनके काम और फिर ।

अतीत्य हि गुणान्सर्वान्स्वभावो मूर्ध्नि वर्तते ।

स्वभाव सबसे अधिक बलवान है, जिसके स्वभाव मे जो बात है वह कभी नहीं जाती, गुणो से गुण अलग नही होता और यह भी तो सोचने की बात है कि बडा होना कौन नही चाहता यदि उपरोक्त षट् कर्मोसे ही ब्राह्मण होता तो वेद तो तीनो वर्ण पढे होते थे, क्या जो पढे है सो पढा नही सकते, जिसने यज्ञ किया है वह करा नही सकता, फिर तो ब्राह्मण के षट् कर्मो को सभी कोई करसकते थे और सभी ब्राह्मण होजाते सो मनुजी ने निषेध कर दिया कि और वर्ण वेद विद्या को नही पढा सकते, इससे यह स्पष्ट है कि ब्राह्मण जाती जन्म से ही होती है नही तो विश्वामित्र तप न करते, यदि पढे का नाम ब्राह्मण होता तो मूर्ख ब्राह्मण ऐसा प्रयोग मानवधर्म शास्त्र मे नहीं होता और कर्म करने से जाति नही बदलती, परशुराम ने इक्कीसबार पृथ्वी के सब क्षत्री मारडाले वे भी ब्राह्मण थे उन्हे आज तक कोई क्षत्री नहीं कहता, द्रोणाचार्य अस्त्र विद्या सिखाते थे उन्हे आज तक कोई क्षत्री नही कहता, यह महाभारत मे युद्धभी करते थे यहभी क्षत्री नही कहलाये ब्राह्मण ही कहलाये, फिर कर्ण जब परशुराम के पास विद्या पढने को गये तो झूंठ बोले कि मै ब्राह्मण हूँ पीछे परशुराम ने क्षत्री जान कर शाप दिया यदि पढनेसे ही ब्राह्मण होते तो उन्हैं क्यो छिपाना पडता, और गुण कर्म से ही उच्च वर्ण होता तो कर्णमे कौन से गुण क्षत्री के नहीं थे सभी थे, थे भी असल क्षत्री पर अपनी जाती की खबर न होनेसे सूत पुत्रनाम से बिख्यात हुए थे, जिस समय द्रोपदीके स्वयम्वर मे धनुष कर्ण ने उठा लिया तब उस समय द्रौपदी ने कहा कि हम सूत पुत्र को बरण नही करेगी क्योंकि यह क्षत्री जाति नहीं यह सुन कर्ण ने लज्जित हो धनुष रख दिया, अब कहिये यदि गुण कर्म से जाति होती, तो

कर्ण धनुष रखता और द्रौपदी क्या आग्रह करती कर्ण में कौनसी बात की कमी थी परन्तु सूत के पालन करने से सूत जाति प्रसिद्ध होगई इत्यादि प्रमाणो से जन्म से ही वर्ण व्यवस्था सिद्ध होती है ।

॥ मृत्युपश्चात् जीवन ॥

मिसेज एनी वेसन्ट का व्याख्यान जो महाराजा फरीद कोट के राजभवन में हुआ था,

जिसका अनुवाद ।

सम्भलनिवासी श्यामलाल जोशी उपमन्त्री सनातन-धर्म सभा सम्भल से कराकर—

पं० बलदेवप्रसाद मिश्र मुरादाबाद निवासीने प्रकाशित किया ।

महाराज साहब व मित्रगण !

आप का धन से क्या सम्बन्ध है ? आपका बान्धवों से क्या सम्बन्ध है ? आपका अपनी स्त्री से क्या सम्बन्ध है ? हे मनुष्य तेरी मृत्यु निश्चय है । उस कन्दरा बिराजित जीवात्मा को खोजकर, आप के पिता और पर पिता कहा चलेगये ? यह वह प्रश्न है जिसको महर्षि वेदव्यास ने महर्षि शुकदेव से किया था और अनेक युगान्तरो से मनुष्य जाति में यह प्रश्न उठता रहा है । मनुष्य के मनमें यह विचार कभी २ उठा करता है कि जीवन का क्या सुख है ? जगत् के साधनो और बल पराक्रम कीर्ति से क्या प्रयोजन है ? यदि कभी यमराज हमारे हाथों से यह सुख छीन लेगा अतएव अनादिकाल से यह प्रश्न होता आया है कि जन्म और मृत्यु क्या पदार्थ है, हम इस संसार मे आते हैं और चले जाते है । हम अल्प समय के लिये

यहा हैं परन्तु प्रत्येक समय हम मे परिवर्तन होता रहता ह। जिस वस्तु को हम प्रिय समझते है और जिस पर अपना चित्त लगाते है वही हमारे हाथो से यमराज छीन लेता है समय आने पर स्वयं हम भी मृत्यु को प्राप्त होजाते है। संसार के सारे सन्देह युक्त विषयो में मृत्युही एक निस्सन्देह पदार्थ है। भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता म अर्जुन को समझाया ह कि "जातस्याहि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्यच" अर्थात् जिसका जन्म हुआ है उसकी मृत्यु अवश्य है और जिसकी मृत्यु होती है उसका जन्म निश्चय है यदि हम अपने आपको संसार मे पाते है तो हम जानते हैं कि किसी समय हम संसार से अवश्य चले जावेगे, हम नही जानते कि कब और किस अवस्था मे हमारा शरीर छूट जावेगा। परन्तु एक समय ऐसा होगा कि कालदेव निश्चयही हमारा ग्रास करेंगे इसमे कुछ भी सन्देह नही है।

विशेष कर मनुष्य इस अवस्था से अपने नेत्रा को फेरलेता है। कि बहुधा मनुष्य अपने आनन्द के समय को ऐसी वार्ता के विचार करने में नष्ट करना नही चाहता, परन्तु यदा तदा जब मृत्यु किसी मनुष्य के घर मे घुस जाती है अर्थात् किसी सम्बन्धी की मृत्यु होजाती है तब मृत्यु की ओर मनुष्य को अवश्य ध्यान करना पडता है। तब मनुष्य अपने हृदय मे घृणा कर मृत्यु पर विचार करता है। कि यदि जीवन का निश्चयही नही है तो उसका आनन्दही क्या है?

ऐसी दशा म उसके हृदय मे वैराग्य का संसर्ग होता है। जिससे उसको परीवर्तन शील पदार्थों से अरुचि होजाती है, और सासारिक सुखो से दृष्टी फिरजाती है और उसके चित्त मे उस अविनाशी अनादि परमात्मा की प्राप्ति की उत्कण्ठा होती है, जहां आशा निराशा की छाया भी नही पडती परन्तु यह यथार्थ वैराग्य नहीं है क्योकि यह तो उसे समय मे उत्पन्न होता है जब मनुष्य के सुखमार्ग को मृत्यु रो-

करलेती है अल्प समय के पश्चात् यह क्षणिक वैराग्य जाता रहता है, क्योंकि इस वैराग्य का प्रादुर्भाव जीवात्माकी वास्तविक उत्कण्ठा से नही होता । शुद्ध वैराग्य जिसका मनुष्य के चित्त मे पूरा प्रभाव पडता है जब होता है जब मनुष्य की बुद्धि से प्रेरणा किये जीवात्मा को परमात्मा के प्राप्ति की लालसा होती है, ऐसे वैराग्य का वीज मनुष्य की स्वाभाविक प्रकृति मे जड पकडता है इस वैराग्य का कभी नाश नही होता । फिर उसको ऐसा ज्ञान होता है कि संसार भर मे एकही जीवात्मा है ।

यथार्थज्ञानके बिना सासारिक पदार्थों की आशा निराशा से उत्पन्न हुआ वैराग्य निराशा के दूर होते ही अपना भयभीत रूप हटा लेता है ऐसे वैराग्य के समय मे जब कि जगत् की अनूठी शोभा वैराग्य के बादलो से आच्छादित हो जाती है और संसारी सुख रूचकर प्रतीत नही होते मनुष्य को बडे बडे लाभकारी उपदेश मिलजाते है परन्तु जब बादल हटजाता है और जगत् की शोभामयी माया अपना रूप दिखाती है ऐसी दशा का लाभ संकट के समय मे उठाना चाहिये, जब अपने मित्रो और कुटुंबियो का वियोग मृत्यु द्वारा हो मनुष्यो को इस वैराग्य से लाभ उठाना चाहिये ।

मनुष्य के चित्त मे यह प्रश्न उठता है कि जीवन और मृत्यु क्या पदार्थ है ? क्या हम मृत्यु के पश्चात् का वृत्तान्त जान सकते हैं? इस बात का तो हम को निश्चय है कि शरीर के नाश होने पर सब पदार्थों का नाश नही होजाता है । शरीर के पात होने पर हमारा नाश नहीं होता परन्तु मृत्यु के पश्चात् होता क्या है ? यमराज से भेंट कर कर हमारी क्या दशा होती है और किन किन लोको मे हमे यात्रा करनी पडती है, कौन कौन पदार्थ मृत्यु लोक के हमको परलोक में प्राप्त होते है ? ।

क्या कोई मनुष्य संसार मे परलोक का वृत्तान्त बतला सकता है क्या कोई मनुष्य संसारमें अपने अनुभव से कह सकता है कि मरने वालों की क्या दशा होती है ? कौनसी वस्तु उनको संसार मे फिर जन्म दिलाती है ? इस स्थूल मृत्यु लोक मे मनुष्य के पुनर्जन्म का अधिकार किसको है?जन्म और मृत्यु का चक्र क्या है जन्म और मृत्यु का वह चक्र है जिससे हम बँधे हुए है । और जिससे हमारा छुटकारा नही होसकता और जिस चक्र में घूमते हुए हम और लोको मे चले जाते है और फिर लौट आते हैं । हमको तीन लोको मे यात्रा करनी पडती है इसी चक्र से जन्म और मृत्यु होतीहै । वह कौन सी शक्ति है जिसने जन्म और मृत्यु को इस परिवर्तन शील चक्र मे बद्ध कर दिया है क्या इस चक्र से छुटकारा पाना सम्भव है ? क्या हम उन बन्धनो को तोडने में समर्थ है, जिससे हम छुटकारा पासके ? क्या कोई ऐसी स्थायी दशा भी है जिसको पाकर हमको पूर्ण शान्ति और अनन्त सुख प्राप्त हो और जहां दुःख कुछ भी न हो ?

बारम्बार मनुष्य के हृदय में यह प्रश्न उठा करते है । आजकी रात्रि के बिचार मे इसी प्रश्न के उत्तर देने का मैं उद्योग करना चाहती हूँ और मै देखना चाहती हूँ कि प्राचीन ऋषियो के सिद्धान्तों से यह प्रश्न समाधान होता है कि नहीं ।प्राचीन ऋषियों के उपदेशो को प्राप्त किये हुए विद्वानो के विद्याबल से मैं आपके प्रश्न का उत्तर देना चाहती हूँ ।

हम लोग उस निश्चित अवस्था की खोज करना चाहते है, जिसमे रहकर मनुष्य बारम्बार जन्म मृत्यु को प्राप्त होता है और किस प्रकार इस चक्र से छुटकारा पाकर उस अचल और अनन्त शान्त अवस्था को प्राप्त करता है ॥

पहिले हमको इस प्रश्न के प्रथम भाग अर्थात् जन्म और मृत्यु के चक्र पर विचार करना उचित है । यह प्रश्न अति आवश्यक है क्योंकि

हम लोगो मे से अधिकाश इस चक्र से निकलने मे समर्थ नहीं हैं । पूर्ण मुक्त दशा को प्राप्त होने से पूर्व बहुत कुछ साधनों की आवश्यकता है और मुक्ति प्राप्त होने से पाहिले हममे से बहुत लोगो को बहुत वार जन्म लेना है परन्तु इस बन्धन को तोडना और किस मार्ग पर हमको चलना चाहिये सो एक गूढवार्ता है ।

मैने अभी कहा है कि जीवन और मृत्यु के चक्र मे मनुष्य को तीन लोक मे जाना पडता है,सबसे पहिले मृत्युलोक है परन्तु इसका वृत्तान्त लिखने की अधिक अवश्यकता नही क्योंकि इस लोकके वृत्तान्त को हम सब लोग जानते है परन्तु इस विषय मे एक बात कहनी है जिसके कारण से मनुष्य इस चक्रसे नही बचते हम सब सुख पाने की इच्छा करते हैं और यदि आप इस पर विचार करे तो यह मनुष्य जन्म का एक परम सिद्धान्त भी है कि मनुष्य सदा सुख पाने की इच्छा करता है परन्तु इसको सन्तोष और शान्ति कभी नही होती । यदि वह किसी वस्तु को ग्रहण करता है और उसमे सुख नहीं पाता तो अपने मनमे कहता है कि मुझ से भूल हुई मैने अविचार से उस वस्तु मे सुख चाहा अब मैं दूसरे मार्ग से सुख पाने का उद्योग करूं, तब वह उस मार्ग से लौटता है और फिर भी सुख पाने का विचार करता है । परन्तु उसके मन को किसी प्रकार से शान्ति नहीं होगी । यह स्वाभाविक बात है क्योंकि सुख पाने की इच्छा ईश्वर देता है परमेश्वर ही हमसे सुख प्राप्ति की इच्छा कराता है क्योंकि इसी चेष्टा के द्वारा हम उसको प्राप्त होसकते है । हम स्थूल पदार्थो मे सुख प्रतीत करते हैं अर्थात् सांसारिक वस्तुओंको सुख पानेकी इच्छा करते हैं यह सारे जगत् का अनुभव है। जिस समय इस शरीर को शान्ति नही मिलती है तब यह बडे बडे अधिकार चाहता है । यह लालची शरीर वस्तुओ की ओर दौडनेवाला है इसको खान पान और स्त्री विषय के सुख की इच्छा होती है इस कारण सदा किसी न किसी वस्तु के ग्रहण

करने का उद्योग किया करता है, सब से पहिले मनुष्य शरीर मे सुख पाना चाहता है इसका अधिकार इसके चित्त में बड़ा प्रबल होता है परन्तु यह नही समझता कि थोड़े समय में यह इच्छा जाती रहैगी। अतएव अज्ञान से इसके प्रवेश को मार्ग देता है। जब उस को भोजन की इच्छा होती है वह लालच से अधिक भोजन की इच्छा करताहै जब उसको स्त्री विषय की इच्छा होती है तब भी वह अधिक ही चाहता है परन्तु परिणाम क्या होता है रुचि और अनेक रोग शरीर में उत्पन्न होजाते हैं। अतएव परमेश्वर जीवों को उपदेश करता है कि इन्द्रियों के विषय शान्ति वा शरीर में सुख पदार्थ वर्तमान नहीं है। इन्द्रियों के विषय से उसकी तृष्णा अधिक बढती है। जितना अधिक वह पीता है उतनीही अधिक उसकी पीने की तृष्णा बढती है, जितना अधिक वह भोजन करता है,उतनीही अधिक उसको भोजन तृष्णा बढती है।ऐसेही जितना वह स्त्री विषय करता है उतनीहि अधिक उसकी इच्छा बढती है। यह लिखा हुआ है कि अग्निपर घृत डालकर उसका बुझाना सहज है परन्तु प्रबल इन्द्रियों का दमन करना सम्भव नही। इस प्रकार कही सुख नही मिलता है, और ईश्वर हमको समझाता है कि "तुम्हारा सुख तुम्हारे शरीर में नहीं है, यदि तुम सुख की खोज शरीर मे करोगे तो तुमको बारम्बार निराशा होगी। तुमको सुख प्राप्त नहीं होगा परन्तु तुम्हारा अधःपतन होगा" ॥

तब मनुष्य महान और अचल सुख के लिये मानसिक विचारों में उपयोग करता है परन्तु कभी क्लेश और दुःख आपडने से बुद्धि विचार का आनन्द जाता रहता है और फिर उसके मनमें बिचार करने की सामर्थ्य नहीं रहती और यदि वह दुःख में भी वीरता से ऐसे विचार करता रहा तो बुढापा आजाता है जब उसके मस्तिष्क में शुद्ध विचार करने की सामर्थ्य नही रहती तबही मानसिक सुख का अन्त होजाता है। यद्यपि यह मानसिक सुख शारीरक सुख से बहुत उत्तम है।

इस प्रकार सब मार्गों से मनुष्य टक्कर खाकर लौटता है । स्वाभाविक रीति पर मनुष्य को परमात्म तत्व मे सुख प्राप्ति की खोज होती है । यहही एक ऐसा सुख है जहां आशा निराशा घृणा अरुचि नहीं होती।यहही केवल ऐसा सुख है जहां विषय और रोग का संसर्ग नहीं, इस स्थान पर उसको ज्ञान होता है कि जीव और ब्रह्म एकही तत्त्व है और वह उस आनन्द अवस्था का भागी होता है जहा पर आनन्द और प्रेम का स्रोत है ।

परन्तु अब हमको एक ऐसे मनुष्य की मृत्यु पर विचार करना चाहिये जिसने अपनी जीवित अवस्था मे शारीरक सुख चाहा है जब मृत्यु से उसका शरीर नष्ट होजाता है तो वह फिर उस शरीर को अपने सुख भोगनेमे यन्त्र की भांति काम मे नहीं लासकता । अब मैं आपको ठीक २ बतलाती हूँ, कि मृत्यु के पश्चात क्या होता है ? म दो दृष्टान्त लेती हूं, एक दृष्टान्त ऐसे मनुष्य का जिसने सारे सुखो को अपने शरीर मे ही पाया है, दूसरा ऐसे मनुष्य का जो सदाचारी और सन्तोषी है । और उसको मानसिक विचारो के अभ्यास में सुख होता है । अब देखना चाहिये कि मत्यु के पश्चात् इन दोनो भिन्न मनुष्यो की क्या दशा हाता है ॥

दो लोको मे होकर इन मृत मनुष्यो को जाना पडेगा परन्तु इन दोनो मनुष्यो की दशा भिन्न २ होगी एक मनुष्य विषय सुख को लियहुए शरीरको छोडता है,पहिले उसकी अचेत दशा होती है और निद्रा आजाती है और शरीर के नष्ट होनेपर थोडी देरतक अचेत रहता है । जागने पर अपने आपको प्रेत लोक मे पाता है यही लोक भूतों का लोक है और इसको काम लोक वा इच्छा लोक भी कहते हैं जिस समय वह जागता है उसको प्रथम अपने विषय सुखो की याद, आती है जिनको जीवित अवस्था में अपने विषय सुख की शान्ति

के लिये पालना किया था, अब यह विचार इस समय भडकते है, और अपने विषय की पूर्ती चाहते है। यदि उस मनुष्य को सुन्दर और स्वादिष्ट भोजन और पीने या स्त्री विषय का अभ्यास है तो यह कामना मृत मनुष्य को मृत्युके पश्चात् जागने पर भडकती है। परन्तु उसका सूक्ष्म शरीर ऐसा है जो उसकी इच्छाओ को शान्त करने मे समर्थ नही है यदा तदा इस शरीर को बलिष्ठ शरीर भी कहते है, क्योकियही शरीर जीवात्मा को बद्ध किये हुये है। वह कैदी की समान बन्दी गृह (Jailr) मे बद्ध है यह बन्दीगृह (Jail) जिसमे वह बद्ध है विषयो और कामनाओ का बना हुआ है मृत्यु लोक मे उसने इन विषयो को भोग करने से इस शरीर को बलिष्ठ कर दिया है॥

इन विषयो का तुम्हारे स्थूल शरीर से कुछ सम्बन्ध नही है। यह स्थूल शरीर तो इन विषयो के भोगने का एक यन्त्र मात्र है। यह विषय कामनाये सूक्ष्म शरीर मे होती है, इसही सूक्ष्म शरीर मे इन विषय कामनाओकी जड होती है और इसी स्थान पर इनके केन्द्र (Cente) हैं और यह स्थूल शरीर उनके भोगने का एक यन्त्र है इस यन्त्र मे कर्मेन्द्रिया है जिनसे इन्द्रियो को भक्ष्य कराया जाता है। स्थूल शरीर इन इंद्रियो की इच्छा पूर्ती का एक यन्त्र है॥

इस प्रकार मृत्यु के पश्चात् ऐसे मनुष्यो की इन्द्रिया बडी बलवान् होती हैं और जीवात्मा को बाध लेती हैं। उसको उन भोगो की इच्छा होती है जो उनसे मृत्युलोक मे भोगे थे और भोगो के अभाव से इस समय उसको क्लेश होता है क्योकि जिन भोगो को वह चाहता है वह मृत्युलोक से सम्बन्ध रखते है, और इसलोक मे वह उनको भोग नही सकता। इस प्रकार उसको उन विषयो की इच्छा होती है, जिसको शान्त करने मे वह समर्थ नही है॥

मृत्यु के पश्चात् यह दशा उन मनुष्यो की होती है जिन्हो ने मृत्यु लोक मे अपनी इन्द्रियो से विषयो को भोगा है अन्त म भोगा

का यन्त्र अर्थात् स्थूल शरीर नष्ट होजाता है । वह ठीक ऐसा है जैसे कि एक अत्यन्त भूखा मनुष्य किसी दृढ जगह पर बाध दिया जावे और एक भोजन की थाली उसके सामने रख दीजावे परन्तु बँधे होने के कारण वह भोजन तक नहीं पहुंचा सकता इस मनुष्य की जिसनें अपने जीवन को इंद्रियो के विषय मे व्यतीत किया है । अब इन्द्रियो के भोग का यन्त्र स्थूल शरीर मृत्यु द्वारा नष्ट होगया, अतः मृत्यु ऐसी असन्तोष युक्त बुरी दशा मनुष्य की मरने के पश्चात् होती है स्थूल शरीर को नष्ट करदेती है परन्तु इन्द्रियां वर्तमान रहती हैं । यदि किसी बुद्धिमान मनुष्य को इस बात का ज्ञान होजावे तो वह प्रेत लोक मे ऐसी भाग्यहीन वा दुखदायी दशा को न भोगेगा । इस जीवन मे आप मीठा होने परभी विषको नही खावेगा । आप मूर्खता से भी विष ग्रहण नहि करेगे । आप यही कहेंगे कि नहि मैं ऐसी वस्तु को ग्रहण नहीं करूगा जिससे अन्त मे दुःख होवे तो आप इन्द्रियो को ऐसा क्यो बलिष्ठ करते हैं । जो मृत्यु के पश्चात् आपको प्रेत लोक मे कष्ट दे जहा आपको भूखा मरना पडेगा क्योकि वहा पर यह विषय आप नहीं भोग सकते ॥

बारम्बार मनुष्य समुदाय मे मैंने इस वृत्तान्त को समझाया है। मैं इन बातों को केवल इसी रीति पर नही जानती हूँ कि मैने उनको धर्म ग्रन्थो मे पठन किया है परन्तु मैं उसके देखने के योग्य भी हूँ । जैसा अभ्यास करनेकी मुझे शिक्षा दीगई है मनुष्योंको ऐसे क्लेशमें देखते हुए मुझे बडा दुःख होता है और वास्तवमे प्रत्येक मनुष्यको यह देखकर दुःख होगा कि मनुष्य उस बन्धनको नही तोड सकते कि जिसको उन्होने स्वयं बनाया है । जो मनुष्य इन्द्रियोका विषय भोग करते है उनकी शरीर छूटने पर यह दशा होती है परन्तु प्रेतलोग मे मृतक मनुष्यको मृतलोकके शरीरधारी निवासियोसे भी कुछ सहा-यता मिलसकती है और मृतक श्राद्ध जिसके करनेकी आपको शिक्षा

दीगई है यह प्रेतोंकी सहायताका उपाय है और इस सहायतासे वह प्रेत उस बन्धनसे छुटकारा पाकर स्वर्ग लोकको जासकते है। श्राद्ध में मन्त्रोका प्रयोग कियाजाता है जिनका प्रयोजन यह है सारे शब्दो से वायुमे (Vibration) हरकत होती है और यह हरकत वायुसे टक्कर खाकर सूक्ष्म परिमाणुओंको इधर उधर छिन्न भिन्न करती है और यह हरकत शरीरसे टक्कर खाकर उसके खण्ड खण्ड करदेती है । अब मै आपको मृत्युलोकका एक उदाहरणभी सुनाती हूँ यदि आप एक समूह सैनिको (Soldiers) का एक साथ आगे पिछे कदम ब कदम चलते हुए देखे इनके चलनेसे एक हरकत होगी और यदि यह सैनिक किसी जीर्ण पुलपर होकर जावेगा तो मै साहससे कहती हूँ कि आप इस बातको जानते है कि सेनापति (Commander) उन मनुष्योंको आगे पीछे छितराकर चलनेकी आज्ञा देवेगा क्यो ? इस लिये कि यदि यह सेना इकट्ठी होकर क्रमानुसार चलेगी तो इसमें पुलके टूटजाने का भय है, कदम ब कदम क्रमानुसार चलनसे जो हरकते (Vibrations) होती है यह बडी बलिष्ठ होती है यह जिस वस्तुसे टक्कर खाती हैं उसको तोड डालती हैं इस प्रकार पुलपर चलती हुई सेनाको छितरा कर चलेनेकी आज्ञा दीजावेगी ।

मन्त्रभी बडी बलिष्ठ हरकते (Vibrations)उत्पन्न करके जविात्मा के बन्धक शरीर से टक्कर खाकर उसके खण्ड खण्ड करदेने का उपाय करते है इसी प्रयोजन से श्राद्धयज्ञ किया जाता है और मन्त्रो का उच्चारण किया जाता है परन्तु इस यज्ञ को बडी सावधानी से करना चाहिये । पुरोहित विद्वान् और सदाचारी हो नही तो उसके मन्त्रो मे कुछ सामर्थ्य नहीं होगा। दुराचारी और अपढ अर्थात् निरक्षर पुरोहित के मन्त्र उच्चारण मे वह हरकत नही होती इस लिये मूर्ख पुरोहित से श्राद्ध कराना निरर्थक है यदि आप विद्वान् और सदाचारी पुरोहितसे श्राद्ध कराते हैं तो वास्तव मे आप अपने मित्र और कुटु

स्त्रियां की प्रेतलोक मे बडी सेवा वा शुश्रूषा करते हे इससे उनको उस बन्धन से छुटकारा पाने में सहायता मिलजावेगी ।

अब तनिक उस मनुष्य की ओर भी ध्यान देना चाहिये जिसने इस मृत्यु लोक के जीवन मे इन्द्रियो को विषयो मे प्रवृत्त नहीं किया है यह मनुष्य भी प्रेत लोक वा कामलोक को जाता है इस मनुष्य की क्या दशा होती है ? अपने जीवन मे ही इस मनुष्य ने इन्द्रियो को दमन कर विषय वासनाका नाश कर दिया है । उसका परिणाम यह होता है कि इस मनुष्य के बन्दीगृह (Jail)के बनने के लिये बहुत थोडा मसाला रहजाता है । जिस प्रकार कि आप कोई मकान बिना ईटो और मिट्टी के नही बना सकते इसी प्रकार प्रेतलोक मे आप का वासना रूपी शरीर नही बन सकता, यदि आप विषय वासना मे प्रवृत्त नहो । सारांश यह है कि जितेन्द्रिय मनुष्य का सूक्ष्म प्रेत शरीर सुगमता से खण्डित होसकता है और वह शरीर बहुत शीघ्र स्वर्ग-धाम की यात्रा करसक्ता है वह मनुष्य प्रेतलोक मे रोका नहीं जाता और बहुत शीघ्र वैकुण्ठधाम को गमन करता है, उसको वहां दुःख नहीं होता, क्योंकि उसका शरीर दुःख के बदले उसकी सहायता करता है और वह बिना किसी क्लेश और दुःख के आनन्द के साथ स्वर्गधाम वा सुखलोक मे देवताओं के सत्सङ्ग से पूर्ण ज्ञानको प्राप्त होता है ।

अब इस स्थान पर बुद्धिका काम पडता है जिस मनुष्यने अपनी मानसिक शक्तियो को सूक्ष्म विचार द्वारा शुद्ध किया है और मनुष्योंका बडा उपकार किया है और सदा दयावान और सदाचारी रहा है वह वहां पर अपने सारे सत्कामों को अपनी बाट देखता हुआ पाता है । उसके सारे शुभ विचार और सत्कर्म उसके निकट जाकर उस का ऐसा सुन्दर शरीर रचते है जिसको पाकर वह ब्रह्मलोकके सुखो को भोगता है उसके सारे सत्कर्म शुभ कामना और शुभ विचार उसके पूर्व जन्म के

स्वर्गीय शरीर को रचदेते हैं जिसके द्वारा वह देवलोक के सारे आनन्दो को भोगता है ।

इस प्रकारका शरीर आपको बनाना चाहिए जिसको मृत्यु के पश्चात् आप धारण करसकें यह शरीर शुभ कामना सत्कर्म शुद्ध विचार और परोपकार करने से बनता है। आप विचार (Thought) की प्रबलता को नही जानते है जिस समय आप सुन्दर वस्तु विचार करते हैं तो आप एक सुन्दर शरीर रचते हैं जो जीवित अवस्थामे आप के निकट रहता है और सन्मार्ग प्रवृत्त होने मे सहायक होता है। प्रत्येक दिन कुछ थोडासा समय आप को सुन्दर विचारो मे लगाना चाहिए। प्रातःकाल को नित्य कर्म करने के पश्चात् शुभ विचार और सुन्दर पदार्थो का ध्यान किया करो।

इस प्रकार आप ऐसा शरीर रचते हैं जो मृत्यु के पश्चात् आपको स्वर्ग मे लेजाने के लिए बाट देखेगा, अपने नित्य ध्यान के लिये किसी सुन्दर विचार को अपने ध्यान मे स्थिर करलो जिससे अन्त समय मे यह विचार तुमको अपने लोको मे लेजावेगे भगवद्गीता मे आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्ण ने समझाया है कि जीवन मे जिस वस्तु मे मनुष्य की वासना होती है मरने पर उसी वस्तु के लोक को वह जाता है, स्वर्गीय शरीरको आप उतने समय तक धारण कर सकेगे कि जितने दिनो वह ठहरेगा अर्थात् आपके सत्कर्मोंकी अवधि तक वह शरीर रहेगा जो आपने सत्कर्मो द्वारा बनाया है जितने अधिक आपने सत्कर्म किये है उतने अधिक समय तक आपका स्वर्गीय शरीर बना रहेगा और फिर नियमानुसार आप इसी लोक मे आवेगे जहां की आपकी वासना थी ।

ऋषियो अर्थात् महात्माओ का कथन है कि यज्ञ से स्वर्ग की प्राप्ति होती है यह बात सत्य है। यदि कोई मनुष्य यज्ञ करे और वह स्वर्ग के सुखो को भोगे जो पदार्थ मनुष्य यज्ञ मे अर्पण करता है वह पदार्थ

उसको लौटकर मिलता है । मनुष्य गहने आभूषण और पृथ्वी और बडे २ मकानो मे रुपया खर्च करते है और उनको उसका कुछ पछतावा नहीं होता इन वस्तुओ से थोडी देर के लिए उनको सुख मिलजाता है परन्तु जिस समय यह सुख जाता रहा फिर कुछ नही रहता । परन्तु जो पदार्थ मनुष्य ईश्वर के निमित्त अर्पण करता है उसका उसको पछतावा होता है देवता मनुष्य से यज्ञ दान चाहते हैं । वे ऐसा दान चाहते है जिससे औरोका भी उपकार हो ! कूपो का बनवाना वृक्ष लगाना और मनुष्यो का उपकार करना और फिर देवता लोग जो न्यायकारी है इस स्वर्गीय शरीर मे उसको वह पदार्थ पहुँचाते हैं यदि मनुष्य अधिक दान करेगा उसका स्वर्गीय शरीर भी अधिक दिनो तक रहेगा।

यह नियम है कि मनुष्य उस स्थान पर जन्म लेगा जहा उसके वांछित पदार्थ वर्तमान होते है ।

एक उपनिषद् मे ऐसा लिखा है कि मनुष्य अपनी इच्छा के अनुसार एक लोक से दूसरे लोक म जाता है । अधिकतर मनुष्यकी इच्छायें स्थूल मृत्युलोक से सम्बन्ध रखती है इसीलिए वह शीघ्रही मृत्यु लोकमे जन्म लेता है ।

तीन कारणों से पुनर्जन्म की इच्छा और पूर्वजन्म के विचार मैने आपको बतलाए हैं कि इन बातो का काम, काम लोक तथा स्वर्ग लोक में किस प्रकार पडता है । कुछ कर्मो का फल तो इन दो परलोकों मे भोगलेता है और शेष कर्मो के निमित्त पुनर्जन्म होता है ।

जब मनुष्य का पुनर्जन्म होता है उसकी प्रकृति उसके पूर्वजन्म के विचारों के अनुसार बनती है जो उसके जन्मका मूल कारण है ।

आप जानते है कि जन्म के समय मनुष्य भिन्न २ प्रकृति के होते हैं।दो बच्चे भिन्न२ प्रकृति लिए जन्म लेते है। एक बच्चे को आप लालची पावेंगे किसी बच्चे को आप स्वार्थी प्रकृति पावेंगे और कोई बच्चा बहुतही क्रोधी होगा । कोई बच्चा प्रेमी होता है और कोई बिलकु

कर्मी और रूखी प्रकृति होता है । यद्यपि यह सब बच्चेही हैं परन्तु प्रकृतियां भिन्न २ हैं । यह उनके स्वभाव उनके पूर्वजन्म के संस्कारों से हैं ।

आप जानते हैं कि कितना अधिक मनुष्य का सुख उसके स्वभाव वा प्रकृति पर निर्भर करता है यदि कोई मनुष्य सदाचारी और साधु स्वभाव नहीं है तो वह चाहे धनवान वा राजा क्यों न हो उसको सुख नहीं होगा ॥

तो आपका स्वभाव आपके विचारों से बनता है जैसा आप ध्यान करेंगे वैसेही आप बन जावेंगे । छान्दोग्य उपनिषद् का वाक्य है कि मनुष्य की उत्पत्ति उसके विचारों से होती है । जैसा मनुष्य विचार करेगा वैसा ही बनजावेगा । विचारों से केवल स्वर्गीय शरीर ही नहीं बनता है । परन्तु तुम्हारा स्वभाव भी उसी से बनता है यदि तुम साधुत्व का विचार करोगे शुद्ध स्वभाव धारण कर जन्म लोगे । यदि कुत्सित प्रकृति का ध्यान करोगे तुम्हारा कुत्सित स्वभाव के साथ जन्म होगा । यह वह नियम (Law) है जिसमें परिवर्तन नहीं होसकता ॥

दूसरी वस्तु आपकी इच्छायें हैं आपकी इच्छाओं से यह स्थिर होजाता है कि कौन २ पदार्थ आपको आगामी जन्म में प्राप्त होंगे । यदि आपको रुपये का बहुत कुछ ध्यान है तो आपको आगामी जन्म में धन मिलेगा। परन्तु सोचिये कि कौनसा पदार्थ ग्रहण करने योग्य है । बहुत धन और उच्च पदों से ही केवल सुख प्राप्त नहीं होता है । अब मैं आपको एक ऐसे मनुष्य का दृष्टान्त सुनाती हूँ जिसकी अवस्था आश्चर्य जनक थी । वह मनुष्य बडा धनहीन था उसने ठेकेदारी का काम किया और बडा धनवान होगया । जो काम उसने किया उसमें सफलता प्राप्त की इस प्रकार उसने लाखों करोडों रुपये संग्रह कर लिये और एक बडा सुन्दर भवन बनवाया व उसको खूब

सजाया परन्तु ऐसा सुन्दर भवन होने पर भी उसने उसमे निवास नही किया वह बडे क्लेश मे रहता था और दरिद्री रहता था उसके बच्चे बेपरवाह थे उसकी स्त्री मरगई थी और उसके कुटुम्बी उससे घृणा करते थे इतने बडे धन कुबेर होने पर भी वह दुःखी रहता था वह एक छोटीसी झोपडी मे रहता था और उसके पास एक नौकर था, और वह भी रोगी था, अब इसके पूर्वजन्म की अवस्था विचारने योग्य है, उस मनुष्यकी रुचि सदा रुपयेमे रहती होगी काम के अटल नियमानुसार उसको धन मिला उसकी पूर्वजन्म की अवस्था बहुतही क्लेश जनक थी । वह बहुतही स्वार्थी और लालची था और उसको धन भी मिला परन्तु भलीभाति भोग न सका । इस जीवन का परिणाम यह हुआ कि उसको धन मिला परन्तु इसपर भी उसको क्लेश रहता था ॥

अब कर्म फल को विचारिये यदि इस जीवन मे इस संसार म आप औरोंको शारिरक सुख देवेगे तो दूसरे जन्म मे आपको शारीरक सुख मिलेगा यदि आप अपने निकटस्थ को धन प्रदान करेंगे तो आपको भी धन मिलेगा यदि आप दूसरे मनुष्यों को सुख देगे तो आपको स्वयं परिश्रम करना चाहिये । कल्पना कीजिये कि कोई धनवान मनुष्य सर्व साधारण के लिये एक वाटिका (Park) बनवाता है यह बहुत अच्छी बात हे क्योंकि इससे मनुष्यो को बहुत कुछ सुख मिलता है वहां पर उनको ताजी हवा अर्थात् अच्छी वायु मिलती है बैठने के लिये वृक्षो की छाया मिलती है यह शारीरक सुख उसको लौट कर मिलेगा जो सत्कर्मों का और उपकारो का बीज उसने बोया है वह उसको लौटकर मिलेगे परन्तु यदि उसको आत्मिक सुख के करने की अभिलाषा है तो उसको निष्काम दृष्टिसे कर्म करने चाहिए । उसको निष्काम बुद्धि से दूसरो का उपकार करना चाहिये ॥

यह निष्कामत्व उसकी प्रकृति मे मिलजावेगा, और उसको सुखी बनावेगा। मनुष्य को अपने कर्मो और स्वभाव दोनो का ध्यान रखना चाहिये, परन्तु अपने कर्मों को भूलना नहीं चाहिये। यदि कोई मनुष्य किसी के साथ अन्याय करता है तो वह अन्याय लौटकर कर्म शास्त्र के अनुसार उसको मिलती है ॥

यादि बल को उचित रीति से काम मे नही लाया जाता है यदि इस बल को दूसरो के कष्ट पहुंचाने मे बरता जाता है तो ऐसा अन्यायी राजा आगामी जन्म मे कष्ट भोगेगा अर्थात् उस बीज के फल काटेगा जो उसने स्वयं बोया है यह कर्मशास्त्र का नियम है। जिसके द्वारा मनुष्य को उसके कर्मो का फल मिलता है और उसकी सामर्थ्य के अनुसार उसपर जिम्मेदारी का बोझ है।

परमेश्वर मनुष्यो को उच्च अधिकार देता है और उनको जगत् अपना प्रतिनिधि रूप बनाकर भेजता है हिन्दू शास्त्रो मे यह उपदेश दिया गया है कि राजा ईश्वर का रूप होता है जैसा कि भगवद्गीता मे कहागया है कि "नराणा च नराधिपः" और राजा मे ईश्वरीय शक्ति होती है। उनमे ईश्वरीय शक्तिया और उसकी मान प्रतिष्ठा ईश्वर समान की जाती है। और उसके बदले मे उसको रक्षा करना, न्याय करना, धनवानो से दीनो की रक्षा करना, और बलवानो से निर्बलों की रक्षा करना उचित है। निर्बलो की रक्षा उसमे मिलती है क्योंकि महाभारत मे ऐसा लिखा है कि दीन दुखी मनुष्य के आसू बडे २ बलवानो की शक्ति को नाश कर सकते हैं। परमेश्वर सारे संसार के भूपतियों का राजा है। वह इन भूपो के अन्याय व कानूनी बेपरवाइयोका हिसाब मागता है प्रत्येक शक्ति को महाशक्ति का स्मरण रखना चाहिये, जिसके सन्मुख उनको हिसाब देना है। जीवन और मृत्यु का नियम यही है। इसी चक्र मे जवात्मा को घूमना पडता है ॥

इस चक्र के विषय मे एक बात कहना और है जिससे छुटकारा नही पासकता। हमको इस चक्रमे घूमने और बारम्बार जन्मलेने और

शरीर त्यागने की आवश्यकता नहीं। हम इससे थक गये और छुटकारा चाहते हैं ऐसे समय पर हम मुक्ति मार्ग की खोज करते हैं आपको नाचकेत की कथा याद होगी जब उसका पिता हवन कर रहा था पुत्र ने पूछा पिता तुम मुझको किसकी भेट करोगे ? पिता ने उत्तर दिया कि बेटे मैं तुझे यमराज की भेंट करूंगा इसलिए वह यम-राज के लोक को गया और बिला आदर सत्कार पाये तीन दिन और तीन रात खडा रहा।जब यमराज लौटे उन्होंने नाचकेत को अपने पिता की आज्ञानुसार बाट देखता हुआ पाया। उसके आदर सत्कार के बदले में यमराज ने उसको तीन बरदान दिए। पहिला बरदान नाचकेत ने यह मांगा कि मेरा पिता मुझसे प्रसन्न होजावे, दूसरा वर यह मांगा कि स्वर्ग की अग्नि मुझको प्राप्त होजावे और मेरे नाम से पुकारी जावे, तीसरा बरदान उसने यह मांगा कि मृत्यु का गुप्त भेद जानूँ, बहुत मनुष्य कहते हैं कि मनुष्य अमर है, कुछ कहते हैं कि वह अमर नहीं है इसलिए हे यमराज ! अपने गुप्त रहस्य को प्रगट कीजिये—क्या मनुष्य आप से बच सकता है ? यमराज ने कहा हे पुत्र ! इसको न पूछ सिवाय इसके और कोई वरदान मांग मैं तुझ को संसार का धन और सब प्रकार के सुख देसकता हूँ परन्तु मृत्यु का भेद नहीं बतलाऊंगा। लडके ने कहा कि आप संसार के सुख और स्वर्गलोक के भोग स्वर्ग की अप्सरा रहने दीजिए इनके बदले मुझे केवल वही वरदान दो कि ऐसा क्या उपाय है कि मनुष्य काल का ग्रास न बने इस प्रकार नाचकेतके बारम्बार प्रश्न करने पर यमराज मृत्यु का भेद बतलाने को विवश हुए मनुष्य का बन्धन बासना है। यह बासनायें वा इच्छायें इन्द्रियों से उत्पन्न होती हैं और यही बारम्बार जन्म मृत्युकी कारण हैं। मनुष्य को इन्द्रियों का दमन करना चाहिए सब से पहिले इसी मार्ग को ग्रहण करना उचित है। सब से पहिला यही काम है।जैसे कि इन्द्रियां मनुष्य को जन्म और मृत्यु में बांधती हैं प्रथम इनको दमन करके अधिकार में लाना चाहिये

यह शरीर रथ के समान है इन्द्रिया अश्व रूप हैं। मन उसकी बागें हैं। बुद्धि सारथी है। जीवात्मा इस सरथी से ऊपर रथ मे बिराज-मान है। बुद्धिरूपी सारथी के मनरूपी बाग को पकड कर इन्द्रिय रूपी घोडों को रोके हुए जो अपनी विषयी वस्तु की तरफ दौडते हुए जाते हैं इस शरीर रूपी रथ को हाके। इन घोडों को सत्मार्ग मे हांकना चाहिये। अर्थात् इन इन्द्रियो को सत् मार्ग में प्रवृत्त कर-ना चाहिए बुद्धि द्वारा मन को अधिकार मे लाना चाहिये जिस प्रकार कि इन्द्रियों को मन के आधिकार मे लावे। प्रत्येक कार्य्य मे मन और इन्द्रियोंको अधिकार मे लाना उचित है।इन मार्गों में प्रवृत्त होने से मन की शान्ति पर जीवात्मा के दर्शन होते है। तब योग विद्या सीखनी चाहिए। इस हृदय रूपी गुफा मे उस अनादि आत्माका ध्यान करना उचित है। यह आत्मा इस हृदय मन्दिर मे विराजती है और जिज्ञासु उस पर ध्यान को स्थिर करे। इस हृदय मन्दिर में उस पुरुष-तत्व का ध्यान करना चाहिये। आत्माके लक्ष्य करनवाले मन को शुद्ध निर्भय स्थिर रखना चाहिए इसके अनन्तर ज्ञान और भक्ति को प्राप्त करना चाहिये क्यों कि भक्ति द्वारा ही जीवात्मा की एकता का लक्ष्य होता है। इस प्रकार मनुष्य कालको जीत सकता है जब सब इच्छा-ओंका नाश होजाता है तब मन अमर होजाता है। जिस समय मन का परमात्मा के दर्शन होजाते है वह फिर कालका ग्रास नहीं बनता।

यह गुप्त भेद बतलाया गया, मोक्ष की प्राप्ति का केवल यही एक गुप्त रहस्य था जो कहा जा सकता है। हम इसको किस प्रकार प्राप्त हो वा सीखे अब भी उपदेश गुरु वर्त्तमान है और यमराज कहते है कि सत-गुरु की खोज करो और उनकी सेवा करो वे अब भी संसार में जीवित है और संसार मे उपदेश करते हैं और जो मनुष्य सीखना चाहते हैं उन को खोज करते हैं जैसा मै जानती हूँ वैसा आपको बतलाती हूं वे उसी सूक्ष्म मार्ग का उपदेश करते हैं जो अब भी खुला हुआ है।

यह मार्ग ज्ञान द्वारा प्राप्त होता है । परन्तु यदि गुरु प्राप्त होजावे तो शिष्यको भी शिष्यही के समान हो जाना चाहिये । इस प्रकार आप सत्य ज्ञान को प्राप्त हो सकते हैं परन्तु स्मरण रहे कि आत्माकी प्राप्ति इन्द्रियों के विषयों से नहीं होती । तर्क वितर्क और वादानुवाद से उसकी प्राप्ति नहीं होती । जीवात्मा अपने अधिकारी को ही दर्शन देता है और यह अधिकार शुद्ध स्वभाव और निष्कामतासे प्राप्त होता है ॥

इति ।

॥ सम्प्रदाय भेद क्यों ? ॥

लीजिये ! अब यह प्रश्न आया कि "सम्प्रदाय भेद क्यों "? जो यह पूछता है जान पडता है, कि उसे मूर्ति पूजा पर तो कोई आपत्ति नहीं उसे केवल इतनाही पूछना है कि यह के एक भिन्न २ प्रकार से क्यो होता है ? यह भी पूछने वाले की मन की बात प्रगट होती है कि [क] "भगवत्प्राप्ति का मार्ग एकही प्रकार सब के लिये चाहिये" और कदाचित् पूछने वाले ने (ख) सम्प्रदाय भेद के कारण कुछ हानि भी समझी हो ॥

(क) अच्छा तो यह जो भाव झलका कि "सब के लिये एकही प्रकार चाहिये भिन्न २ क्यों ?" इसी को कुछ देखिये , क्योंकि हमारे मुसल्मान, क्रिस्तान, ब्राह्मण, और आर्या भी इसी बात का झगडा उठाते है सब के लिये एक और एकही प्रकार का धर्म्म हो क्योंकि जब सबका भगवत्प्राप्ति रूप एकही उद्देश्य है तब एक प्रकार क्यों न हो ? इसकी समालोचना मे पहले यही देखिये कि (१)यदि एकही उद्देश्य हो तो एकही प्रकार होना अत्यावश्यक है कि नहीं और फिर यह भी देखेंगे कि (२) सब हिन्दू मुसल्मान क्रिस्तान बौद्ध ब्राह्मो आदि का एकही उद्देश्य है कि नहीं (३) फिर आप लोगो की दृष्टि इधर भी फेरेंगे कि सब एक प्रकार से चले यह सम्भव है कि नहीं ?

[१] देखिये तो क्या बच्चो की सी बात है कि एक उद्देश्य हो तो एकही प्रकार उपाय भी होना चाहिये । देखिये न तो इसकी कोई प्रबल युक्तिही है और न ऐसा व्यवहारही देखते है प्रत्युत संसार की प्रकृतिही इससे उलटी देखते है । देखिये भूख लगने पर कुछ भोजन कर उसे शान्त करना यह उद्देश्य सब का एक है । पर इसके पूरे करने के भिन्न व्यापार है, कही रोज पूरियें छन्ती हैं, कही प्रति दिन भात पसाया जाता है, कही लड्डुए ढलते हे और कही चूडे सादे जाते है, कहिये तो यह प्रकारभेद क्यो?शीत वातादि के निवारणके लियेवस्त्रधारण करना यह एक उद्देश्य ह, फिर कही मखमल, कही छीट, कही पगडी, कही टोपी, इत्यादि सहस्रो प्रकार क्यो !! और उनम भी एक एक गडी, आदि के सहस्रो प्रकार क्यो ! ! यदि एक उद्देश्य से एकही प्रकार से कार्य सम्पादन किया जाय तब तो घर, बिछौने, ओढने, पलङ्ग, मचिया, खटिया,आदि सब पदार्थ एकही एक प्रकार के होने चाहिए । और आज कल के विज्ञो के समाज मे तो उसका उलटाही सिद्धान्त देखते हैं, वे तो एक उद्देश्य के एक पदार्थ को सहस्रों प्रकार स सिद्ध करनाही अपनी विद्या की सफलता समझते हैं- और तो जहा तहां पेन्सिल, कलम, स्याही, और कागज के प्रकारके हैं । क्या एक प्रकार की बोताम से कुर्ता नहीं अटक सक्ता ? क्या एकही ढङ्ग की चेन से घडी नही झूल सक्ती ? और क्या एकही प्रकार की छींट से अंग नही ढकसक्ता ? पर नहीं ! आज कल के विद्वान् लोग इसी बात को विद्या की पराकाष्ठा समझते हैं कि एक काम सेकडों रीति से हो, और इसी बात पर लोग अपनी अपनी चतुराई और विद्या झाडते है कि हम और एक नया ढंग निकाले ? अच्छा कुछ गाने की ओर तो ध्यान दीजिये, गान विद्या की मूलकारिका तो इतनी ही है कि एक किसी प्रधान रीति से कुछ नियत स्वरो पर आरोह अव-रोह करते रहना, पर गाने बजाने वालो की प्रशंसा इसी बात मे है

कि वे नये२ ढंग से आवेंगे । जो सितारिया एक ही गत को घण्टों तक बजावे और बार२नईही नई तानें निकाले उसी की अधिक वाह २होती है यह बात तो अशिक्षित जंगलियो मे है कि वे प्रायः एकही प्रकार के झोपडे बनाते हैं और एकही प्रकार से धोती मुरेठा लपेटते है अथवा यह बात पशु पक्षियो मे है कि वे एकही प्रकार के व्यापार से जन्म बिताते है और एकही प्रकारके खोते बनाते है । तब जहां के निवासियो ने थोडे समय से पढना लिखना सीखा है और थोडेही दिनो से मनुष्यता पाई है वे यदि ईश्वर पाने के शास्त्र की उन्नति न करसके हो और एकही मोटे से पथ को मोक्ष पथ कह के मान छोडा हो तो हो ! पर जिन भारत निवासियो ने और शास्त्रोको भी भगवत्प्राप्तिही मे सहायक समझ आदर किया और उपासना के शास्त्र को अन्तदर्जे तक पहुंचा दिया उनका उसी उद्देश्य के साधन के अनेक पथ निकालना क्या बुरा है ?

यदि एक उद्देश्य से एकही उपाय ठीक समझा जाता तो, वैद्य, कविराज, हकीम, और डाक्टर लोग एक २ राग की एकही एक दवा रखते, पर कहिये तो यह कहा की युक्ति है कि एक साधारण ज्वर की तो दस दस पन्द्रह२बीस२ प्रकार की दवाइयां होसकै और इस संसार के जन्म मरण के महाज्वर की मोटी मोटी एकही दवा हो और उसका एकही अनुपान हो ! और यदि उस दवा के सेवन का भी किसी ने भिन्न २अनुपान और प्रकार निकाला तो नवीन समाजी लोगो को सन्देह ज्वरका सान्निपात हुआ ?

[२] और यह ही आपने क्योंकर समझा कि सब का एकही उद्देश्य है कोई स्वर्ग चाहते हैं कोई सायुज्य चाहते है, कोई सालोक्य चाहते है कोई कैङ्कर्य चाहते है । कोई सासारिक पुरुष इतनी ही मेहरबानी चाहते है कि इनसाफ के दिन कुसूरमुआफ हो, कोई चाहते है कि ईसा ने जो सब के बदले सजा पा ली है इस लिये हमे छुडादे

कोई चाहते है कि देह त्याग के अनन्तर हम वासना रहित शुद्ध चेतन रहजायँ, कोई चाहते हैं कि हम तो ब्रह्मरूप है ही पर जिस अज्ञान बन्धन से हम जीव कहला गये वह बन्धन किसी प्रकार छूट जाय इत्यादि सैकडो उद्देश्य भिन्न २कहां तक गिनाये जाय फिर जब एक एक प्रकार के उद्देश्य साधन के लिये अनेकानेक उपाय हो सक्ते हैं तो अनेक उद्देश्यो के लिये तो भला कितने उपाय होंगे ?

अच्छा अब यह ही देखिए कि सब एकही प्रकार से चले तो यह कहां तक सम्भव है। और लम्बे २ बडे २ द्वीपो मे कुछ सम्भव हो तो हो भी पर क्या भारतवर्ष मे भी सब प्रान्त और सब वर्णों का सामान्य भाव सभव है ? यह वह भारतवर्ष है जिसके मारवाडदेश मे आफ्रिका का मजा धूल खाता है कश्मीर की ठंड पर यूरप की भी ठण्डी होजाती है, और वनस्पतियो की शोभापर काबुलके अनारोकी छाती फटती है, और छुहारे छिछोरे पडी सकुडे जाते है, इस भारतवर्ष मे एक प्रान्त ऐसा भी है जहा ४०० हाथ गहरे कुवें में पानी का दर्शन हो और एक प्रान्त ऐसा भी है जहा डुपट्टेमे लोटा बांध पानी निकाल लीजिए एक प्रान्त ऐसा भी जहां चारो ओर पहाड और घोर जंगल की घूम से एक कोस भी टै सरल भूमि नही है और जहा कि पर्वत के ऊपर की बस्तियों में ऐसे हजारो बुड्ढे रहा करते है जो कभी पहाड से नीचे उतरे ही नही और इस भारत मे कोई प्रान्त ऐस भी है जहां के लडके पुस्तको मे पहाडो का नाम पाते है पर पहाड देखने को तरसा करते हैं । इस भारत मे थोडी २ दूर पर बोली बदलती है,वेष बदलते हैं, और व्यवहार बदलते हैं जिन्होंने भारत के अनेक भिन्न भिन्न प्रान्तो मे सभा की होंगी उन्होने देखा होगा कि पञ्जाब की सभाआ मे लम्बे२चोगे और घनी डाढी वाले ऐसे पचहत्थे ज्वान जुटते है कि उनके सफेद २ भारी २ मुरेठा की ऐसी कतारे बॅधती है जैसे, किसी तडाग के उप-

बन मे हजारो हंस इकट्ठे हुए है ? राजपूताने की सभाओं मे रङ्ग बिरङ्गी पगडी कसे गले मे बलेवाडा झुलाये तुर्रा झुमाते ढीला पेच डुलाते छूछा करेत, ऐसे छैल छबीले जमते है कि मानो किसी बगीचे मे विचित्र बसन्त ऋतु आया हो जिससे सहस्त्रो फूलो के रङ्ग बिरंग गुच्छो से सब पौदे लद फद होगए है। अब कुछ बङ्गदेश की ओर दृष्टि दीजिये तो वहां की सभाओ मे जिन्हे देखने से दयाका उद्वेग हो ऐसे कोमल कोमल अङ्ग वाले छोटे कुरते और लम्बी धोती वाले बाबू लोग इकट्ठे होते है उनके चिकने २ घुघरारे कारे२ केशवाले उघाडे मस्तको से सभा एकदम श्रीकृष्णमय होजाती है और ऐसी सभा दीख पडती है कि मानो किसी खिले हुए रङ्ग बिरङ्ग कमलो से भरे तालाव पर करोडो भौरों के झुण्ड आपडे हो. उनसे सब कमल ढपगये हो, ! तो क्या ऐसे भारत मे सम्भव है कि सब एकही प्रकार चले और केवल देश भेद क्या ? जाति भेद, वर्ण भेद, आश्रम भेद आदि के कारण से भी क्या अधिकारी एक प्रकार के ठहर सकते है । इत्यलम्.

साहित्याचार्य स्वर्गीय अम्बिकादत्त व्यास.

॥ धैर्य ॥

यह भी मनुष्य मे एक विलक्षण गुण है। जितने काम है वे धीरज ही से अच्छे होते है । चपल पुरुष से प्रायः काम बिगडते है । जिसको धैर्य्य नही वह थोडी ही बात मे घबरा जाता है और घबराने के कारण फिर उसको वह विवेक नही रहता कि क्या हमारा कर्तव्य क्या है और क्या नही, तब फिर बिना विचारे और बिना समझे चाहै जो कर गुजरता है तो यह कब सम्भव है कि इस प्रकार के काम ठीक ही उतरै । ऐसा प्रसिद्ध है कि-

बिना बिचारे जो करै, सो पाछे पछताय ।
काम बिगारै आपनो, जगमें होत हँसाय॥

जो लोग थोडी ही सी घबडाहट मे अपने से बाहर हो रोते है आदमी२ के पांव पडते हैं, तथा सन्देह और चिन्ता के ज्वर से ज्वरित होते हैं उनसे अधिक और कौन दुःखी होगा ? इसलिए सदा धीरज ही धरना चाहिए।

॥ कवित्त ॥

कैसे काज ह्वै है सब बात सब बूडि जैहै, कादरता ऐसी कबो भूलिहू न करिये। करिके विवेक को समाज निज जो मै पचि रचि कै उपाय निज व्याकुलाई हरिये ॥ ईश्वर को याद कै जनैये पुरुषारथक को, दत्त कहे काहू के न जाय पांय परिये। हारिये न हिम्मत सु कीजे कोरि किम्मत को, आपति मे पति राखि धीरज को धरिये ॥

इस संसार मे ऐसे क्षुद्र अनेक है, जो कुछ शोक उपस्थित होने से घबराके कुएँ मे गिर के प्राण दे देते है अथवा और किसी प्रकार से आत्म घात कर लेते है, अथवा कितनेही आग लगी देख घबरा क घर के कोने म बैठ जाते हैं और निकलने का रास्ता भूल प्राण देते हैं, कितनेही जङ्गल मे शेर और भालु का नाम सुनतेही काठ हो खिलौने से खडे होजाते है और उन्हे अन्य पशु भोजन करते है, कितनेही घबराय पथिकों के समूह अल्प सामर्थ्यवाले तीन चार डाकू लूट लेते है और विचारे धीरज विहीने हो आपस मे एक दूसरे को धरते पकडते रोते हा हा करते लुट जाते हैं। धैर्यके छोड देने से कितने अनर्थ होते है जो कहे नही जासकते। देखिए धीर और अधीर का कितना अन्तर होता है एक अधीर पुरुष को दूरसे सिंह को देखतेही दस्त होजाते है और दूसरा धीर पुरुष जब तक सिह लपक के अपने पास आवे तब तक एक गोली भर के उसे मारते है ॥

किसी एक पुरुष ने सिह का बच्चा पाला और सदा उसपर हाथ फेरता प्यार करता अपने साथ रखता उससे ऐसा हिलमिल गया था

कि उस सिंहके बच्चे को कुत्ता सा बना लिया था। धीरे२ वह सिंह का बच्चा बडा हो पूरा जवान सिंह हुआ। पर तो भी उस सिंह का अपने स्वामी पर वैसाही प्रेम था मानो उस सिंह को यह ज्ञानही न था कि यह स्वामी भी वैसाही रुधिर मांस का पिंड है जैसा मैं प्रति-दिन बडे प्रेम से खाता हूँ। वह सिंह अपने स्वामी को दूर से देखतेही दौड के आता और पूँछ सटका पांव चाटने लगता उसके पीछे २ फिरता और हर बात में प्यार की आंख से देखता था।

एक समय एक कुरसी पर उसका स्वामी बैठा था और हाथ में एक छोटीसी किताब लिये पढ रहा था भोरका समय था, ठण्डी हवा चल-रही थी। सामने बगीचे के हरएक पौधों के पत्ते ओस की छोटी बूँदो का बोझा उठा रहे थे, कुन्द और सदागुलाब की सुगन्ध से आकाश भी प्रसन्न दीख पडता था। इतनी देर मे सामने का पिंजरा उसकी आज्ञा से खोलागया और सिंह भी पूँछ हिलाता उसके पास आया। उसके स्वामी ने पहिले उसके शिर पर हाथ फेरा फिर पुचकार पुच-कार गर्दन झाड अपनी बाँई ओर बैठाया वह भी उबासी ले कुछ बाई ओरसे कुछ पीछे तक कुरसी घेरता हुवा बैठगया।

उसका स्वामी किताब पढता जाता था कभी कभी अपने पाले हुवे शेर के बच्चे को देखता और कभी बायां हाथ उसके कान और शिर पर फेरता और कभी उसकी ओर अपने को देख चारों ओर इस भाव की आंख पसारता कि "मेरे ऐसा संसार में और ऐसा कौन है, जिस सिंह का नाम सुनते लोगों को दस्त होती है वही मेरे साथ बकरी की भांति पूँछ हिलाता दौडता है। किसकी सामर्थ्य है कि ऐसे समय मेरे सामने आवे मैं अँगुलीसे भी इशारा करूँ तो यह बडे २ गजराजों का भी कुम्भस्थल व अस्थि चीर डाले और रुधिर की नदी बहादे" इन्हीं घमण्डो मे भर इधर उधर देख भाल वह फिर अपने हाथ की किताब पढने लगा। उसका बांया हाथ बाई ओर कुरसी के नीचे लटकताथा।

यह सिह उसी हाथ के पास मुँह किये बैठा था धीरे धीरे उसका हाथ चाटता जाता था।

उसके स्वामी की कुछ भी उधर दृष्टि न थी यहा तक कि उसे हाथ चाटते चाटते लगभग आधा घण्टा होगया। तब उसकी जीभ के रगडेसे हाथ मे कुछ रुधिर चमचमा आया और सिंह की भी जीभ में कुछ स्वाद लगने लगा। जब इसका हाथ कुछ छर छराया तो उसने अकस्मात् अपना हाथ खींचा उस समय पहिले तो सिह ने जीभ की अलसेट से हाथ खीचने न दिया और इसने झटका तो सिह गरज उठा। इसने देखा कि सिहकी त्यौरी बदली तब यदि उसी समय घबरा फिर हाथ खीचते तब तो समाप्त थे पर उन्हो ने धीरज को स्थान दिया और हाथ वैसेही सिहके मुँह के पास रक्खा और किताब की ओर मुँह कर अपने नौकर को पुकारा नौकर के सामने आतेही उस सिह के प्रेमी ने कहा कि चटपट जाओ और बङ्गले मे भरी हुई दुनाली बन्दूक धरी है सो लाकर मेरे पीछेसे झुककर इस पाजी के पेट मे और खोपडे मे मारो नही तो दो मिनट मे यह मुझे खाजायगा। वह नौकर भी रंग देख कांप उठा पर धीरज धर चट घर मे गया और बन्दूक ले आया। कदाचित् देर तो आधीही मिनट की हुई होगी पर सब कोई समझ सक्ते हैं कि जिसका रुधिर सिह चाट रहा था और जिसे पलक पलक मौत का भय पूरा पूरा होता था उस विचारे को वह अल्प क्षण भी कितना बडा और कडा जान पडाहोगा।

इतने मे उस चतुर नौकर ने आडही आड समीप आय हाथ डेढ हाथकी दूरी से सिह के पेट पर ऐसी गोली लगाई कि वह मछली की भांति भूमि मे लोट गया और दूसरी उसके कपाल पर ऐसी दी कि विचारे ने सांस तक न लिया॥

देखिये यदि यह विचारा पहले ही घबरा जाता तो प्राण जाने में क्या सन्देह था॥

पुराणो मे जितनी नल, राम, युधिष्ठिरादि की कथा है उनमें आदि से अन्त तक धैर्य का प्रकरण भरा है और जितने आज तक एक से एक पराक्रमी और बीर, प्रतापी, तथा यशस्वी पुरुष होगये हैं उनकी उन्नति का प्रधान कारण धैर्यही मिला है ॥

साहित्याचार्य स्वर्गीय अम्बिकादत्त व्यास.

॥ क्षमा ॥

क्षमा कुछ साधारण गुण नहीं है। जिस पुरुष मे क्षमा नही वह अति क्षुद्र समझाजाता है। जो ऐसे होते है कि किसी से कुछ अपकार की शंका हुई कि उसका अपकार करने को तैयार, किसी के मुँहसे भ्रमसे भी कुछ कडा शब्द निकला कि आप गालियो की वर्षा करने लगे। किसी ने अल्प अपराध भी किया तो उसपर टूट पडे वे अति तुच्छ समझे जाते है। जिन को क्षमा नहीं उनके लडकेवाले दुर्बल होते हैं क्योकि वे बात २ मे घुसे और घुडके जाते है और बात बात मे मार खाते हैं। उनसे जी खोल कर कोई बात नहीं करता क्योकि यह सबको आशंका रहती है कि बातो मे कोई अनुचित न होजाय। जिसको क्षमा नहीं है उससे कितनेही काम चट पट मे ऐसे अनुचित बन जाते है कि पीछे जन्म भर उसका पछतावा रह जाता है। क्षमा रहित पुरुष राजसभाओं मे तो कभी टिकही नही सकते। जैसे किसी कटोरेमे जल हो तो उस मे जहां कुछ और पदार्थ डाला कि जल उबला यह स्वभाव अक्षम पुरुषोंका है समुद्र मे पहाड आपडे तो भी उसका बढना घटना फैलना कुछ नहीं विदित होता, यह स्वभाव क्षमावान पुरुषो का है। जैसे गजराज के पीछे कुत्ता भूँकता चलै और गजराज उसपर ध्यान न दे तो उसका कुछ नहीं बिगडता। वैसे ही क्षमाशील पुरुष यदि तुच्छों की बक बक पर ध्यान न दे तो उनकी क्या हानि है? यदि कोई अपने को गाली दे तोभी यो समझ लेना कि—

जाके ढिग बहु गारी ह्वै है, सोही गारी दै है ।
गारी वारो आप कहै है, हमरो का घटि जै है ॥

कोई कोई समझते हैं कि "जो हमको गाली देता है उसे यदि हम गाली न दे तब तो हमारी बडी अप्रतिष्ठा होगी" पर यह उल्टी ही बात है। तुच्छों की गाली पर गाली ही देने से टंटा बढता है और चुप रहने से कोई जानता भी नहीं कि किसको गाली दी।

एक समय वशिष्ठ और विश्वामित्र में बडा झगडा चला, झगडा तो इस बात का था कि विश्वामित्र क्षत्रिय थे पर बहुत तप करने के कारण कहते थे कि हमें सब कोई ब्राह्मण कहा कीजिये पर यह बात उस समय के ब्राह्मणों को पसन्द न पडी वशिष्ठजी ने कहा कि आप क्षत्रिय है पर तपस्वी है इसलिए राजर्षि कहला सकते है परन्तु ब्रह्मर्षि नहीं, इसी बात पर विश्वामित्र ने वशिष्ठजी से शत्रुता बांधी विश्वामित्र बार २ अधिक २ करके आते थे और वशिष्ठजी से झगडा करते थे पर वशिष्ठजी उनपर क्षमा ही रखते थे पुराणो मे ऐसा लिखा है कि एक बार विश्वामित्र बहुत तप करके आये और वशिष्ठ को लल-कार बोले कि हमें ब्राह्मण कहो नही तो युद्ध करो वशिष्ठजी एक दण्ड लेकर कुटी के बाहर खडे होगए, विश्वामित्र उन पर बहुत से शस्त्र अस्त्र चलाने लगे परन्तु वशिष्ठ जी ने अपने तपोबल से सब को उसी दण्ड पर रोका, जब विश्वामित्र कोटि कला कर हारे, तब वशिष्ठ जी ने कहा कि भाई और कोई शस्त्र अस्त्र बाकी हो तो चलालो फिर हम भी आरम्भ करेगे। तब विश्वामित्र ने हाथ जोडे और वशिष्ठजीने क्षमा किया। कालान्तर मे वशिष्ठजी एक समय अपनी कुटी मे बैठे आंख बन्द किये ध्यान कर रहे थे और अन्धेरी रात थी चारों ओर मारे अन्धकार के ऐसा जान पडता था कि काजल की आंधी चल रही है अथवा स्याही की वर्षा होरही है काले मेघ मण्डल से तारो का भी प्रकाश बन्द होगया था । उस समय विश्वामित्र के चित्त में

यह बात आई कि जितने ब्राह्मण है वे वशिष्ठ ही पर ढलते हैं और कहते हैं कि वशिष्ठ ब्राह्मण कहैं तो हम लोग भी ब्राह्मण कहैं और वशिष्ठ ऐसा दुष्ट है कि चाहे कुछ हो हमें ब्राह्मण न कहैगा। तो इस अन्धेरे मे वशिष्ठ का शिर काट डालना चाहिए। यह विचार चोरकी भाँति तलवार ले वशिष्ठ की कुटीमे घुसे, दैवात् वशिष्ठ की समाधि खुली, वशिष्ठ ने पूछा कौन है ? तो विश्वामित्र ने कहा कि तुम मुझे ब्राह्मण नहीं कहते इसलिये मै तुम्हारा शिर काटने आया हूँ। वशिष्ठ ने कहा कि आपही सोच लीजिये क्या जो पाप करने आप आये है एसेही ब्राह्मणो के कर्म होते हैं ? क्या ऐसेही स्वभाव के भरोसे आप ब्राह्मण बनना चाहते हैं ? यह सुनतेही विश्वमित्र लज्जित होगए, और तलवार दूर फेंक प्रणाम कर बैठ गये और अपने अपराध क्षमा कराने लगे, वशिष्ठजीने कहा कि हमे कुछ बदला नही लेना है कि आप क्षमा मागें पर देखिए जिस समय आप अहङ्कार से ऊँचे बनने का डङ्का दे युद्ध का डोल बांधते थे तब सबकी दृष्टि मे आप छोटे जचते थे और अब आप हाथ जोडे अपने को तुच्छ समझे बैठे हैं तो हमरी दृष्टि मैं ऊँचे जान पडते हैं। इस समय आपके हृदयमें अहङ्कार नहीं, क्रोध नहीं, छल नही, ईर्षा नही, मद नहीं, मत्सर नहीं, बस ऐसा हृदय रखिये तो आप सबसे बडे है विश्वामित्रजी को यह सुन बहुत बोध हुआ और वशिष्ठजी का इतना भारी क्षमा गुण देख सबको आश्चर्य हुआ,। इस लिए यही चित्त में जमा के रखना चाहिये कि–

दोहा०–क्षमा सकल गुण मे बडो, क्षमा पुण्य की मूल।
क्षमा जासु हिरदे रहै, तासु दैव अनकूल॥
अपराधी निज दोष तें, दुख पावत वसु जाम।
क्षमा शील निज गुननते, सुखी रहत सब ठाम॥

साहित्याचार्य स्वर्गीय अम्बिकादत्त व्यास.

॥ उपनयन ॥

हिन्दू धर्म्ममें ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य के लिये उपनयन भी एक प्रधान धर्म्म है । उपनयनही के कारण ये लोग द्विजाति कहलाते है क्योकि एक जन्म तो माताके गर्भसे और दूसरा जन्म उपनयन संस्कार समझा जाता है । उपनयन संस्कार मे कोई यद्वा नही और उपनयन संस्कार मे कोई अथवा नही । यहां तक मनुने लिखा है कि "इतऊर्ध्वं त्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः। सावित्रीपतिता व्रात्या भवन्त्यार्यविगर्हिताः" नियत समय पर उपनयन न करने ही से मनुष्य पातित होजाता है और समय विता के करने से फिर प्रायश्चित्त करना पडता है देखने मे तो यह छोटासा नौ तार का डोरा है पर सब विद्या और मतो का मूलभूत वह उपनयन बिना काम मे नही आसक्ता । अर्थात् उपनयन के अन्तरही वेदारम्भ की विधि है और उपनयन क अधिकारी न होने से ही शूद्रो के मुख कमल पर वेद के भौरे का झङ्कार नहीं होता ।

इसी उपनयन के लिये अनधिकारी लोग मरे जाते हैं,कि "हा"हमको उपनयन नहि । कोई २ गम्भीर हृदय हो तो उनके लिये हम लोग नहीं कहते परन्तु प्रायः ब्रह्म :समाज और आर्य समाज मे छोटेही वर्णवालो ने अधिकांश आश्रय लियाहै और "जनेऊजनेऊ" लेके भारी हल्ला होरहा है । ब्रह्मसमाज ने तो द्विजाति अद्विजाति को एक तराजू पर तोलने का यह ढङ्ग निकाला है कि सबको वे जनेऊ का नङ्ग मुनङ्गा कर बन्धन रहित कर डाला । क्या जाने क्या समझके उन लोगों ने अभी तक बनर्जी मुकर्जी, आदि ब्राह्मण वंश बोधक नाम नही बदले है परन्तु शूद्रसे ब्राह्मण तक सब धान बाईस पसेरी होरहे है ॥

आर्य समाज वालो ने जनेऊ कुछ अच्छी समझी सो हेतु वाद के झोक से एक बेर विचारी सूथन के ईजारबन्द मे फँसा दी कुछ समझ

बूझ तोड के न फेकी । पर इतने से जिन महाशयों का प्रधान मण्डल इस समाज में आ फँसा है और जिनके ही द्वारा समाज का श्वेत कृष्ण रूप झलकता है उनको द्विजो से कम रखने में उनका कैसे उत्साह बढेगा यह विचार सबकी समता के लिये उन्होंने सबको उपवीतका अधिकार दिया और सबको इसी के द्वारा वैदिक बनाना चाहा ॥

अब आप लोगों को विस्तार से कुछ नहीं कहना है । आप लोग स्वयं समझ गये है कि यह जनेऊ किस बडे मोलकी चीज है । इसी जनेऊ के छीनने को मुगलों ने सैकडों बेर रुधिरों की नदियां बहाईं, और हाडों के पहाड चुने और इसी जनेऊ को बनाने के लिये लाखों सिक्ख राजपूतानी और मरहटों ने अपने सिरों को अपनी हथेली पर रख वीररस की वृष्टि की । इसी यज्ञोपवीत के विषय में नागेश भट्ट ने बडा पोथा बनाया और यह सिद्ध किया कि कलियुग में केवल ब्राह्मण और शूद्र दोही वर्ण हैं इस कारण ब्राह्मण छोड और किसी का उपनयन न हो । इसी उपनयन के विषय में काशी के पण्डित धनश्याम जी गौडने बडी धूमधाम की सभायें की और महाराष्ट्र लोग देखतेही रहे पर उन्होंने सैकडों अग्रवाल वैश्य और क्षत्रियों को जनेऊ देही दी।इसी यज्ञोपवीत के विषय पर पण्डित राममिश्र शास्त्रीजीने संस्कार मीमांसा नामक धूमधामका ग्रन्थ बनाया और जो लोग क्षत्रियों तथा वैश्यों के उपनयन के विरोधी थे उनको चुप किया, जिसके खण्डन के लिये आजातक किसी के सिर में खुजाल भी न चली । हम ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों से कहते हैं कि बाबा अब भी तो समझो, जिस अमृत के लेने को चारों ओर सहस्रों कङ्गले झुक रहे हैं और जिसमें केवल विघ्न डालने को बडे २ राक्षस दांत कटकटाते फिरते हैं वह अमृत की थाली आप लोगों के लिये परोसी है आप इसे लात मार न हटाइये । आप के कुल में कुछ काल से

उपनयन छूटगया हो तो भी हानि नही है प्रायश्चित्त करके जनेऊ लीजिये और कुल तारिये ॥

साहित्याचार्य स्वर्गीय अम्बिकादत्त व्यास.

॥ प्राचीन और अर्वाचीन उन्नति ॥

इस लेख मे इस बातका विचार किया जायगा कि हमारे प्राचीन लोगो की उन्नति और अर्वाचीन पाश्चात्य लोगो की खोज मे बराबरी कहां है और भेदका कहांपर आरम्भ होता है ? जिनका वर्णन रामायण महाभारतादि ग्रन्थो मे अलौकिक प्रकार से किया जाता है, सम्भव नही कि वे महात्मागण बिना किसी अलौकिक साधन के उन्नति को पागये हो आजकल के पश्चिमी लोग जिन यन्त्रादि साधनो से उन्नति के शिखर पर पहुंचे है वे साधन उन प्राचीन महात्माओं क पास नहीं थे ! इससे अनुमान होता है, कि एकही परिणाम को उत्पन्न करनेवाले दो भिन्न भिन्न प्रकार के साधन अर्वाचीन और प्राचीन लोगो को प्राप्त होगे ! अब इस बात का विचार करना उचित जान पडता है, कि हमारे उस अनुमान को प्राचीन ग्रन्थो से कितना अवलम्ब मिलता है ।

आज कल ऐसी २ अद्भुत खोजो का पता लगता है और ऐसी ऐसी युक्तियां निकलती रहती है कि उनको देखकर मनुष्यों का मन चकित होजाता है ! निःसन्देह इस समय की खोज और युक्तियां सही है, तथा उनका प्रचार करनेवाले सर्वथा प्रशंसनीय हैं । परन्तु आज कल की खोज से जो बाते सिद्ध हुई हैं, अथवा जिनका सिद्ध होना सम्भव है उन बातो को प्राचीन लोग भी भली भांति जानते थे । इसमे कोई शङ्का नही है । क्योंकि जिस प्रकार इस समय के पश्चिमी लोग अपने मनोगत कार्यों को सफल कर लेते है, वैसे ही हमारे पूर्वजभी अपने इष्ट हेतु को सिद्ध कर लेते थे, परन्तु दोनोके मार्ग अलग रहुए ।आजकल

के मनुष्योंको एक घण्टे मे दस या बीस कोस जाता हुआ देख कर आश्चर्य हुआ करता है, परन्तु पाहिले महात्मा भी अल्प काल में एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँच जातेथे, इसमे कोई शङ्का नही कि विना यन्त्र का और विना तारके तार का आविष्कार करनेवालो का बारम्बार बखान किया जाता है, परन्तु प्राचीनकालके विद्वानगण इन यन्त्रोके न जानने परभी हजारो कोसपर रहते हुए मनुष्य का वृत्तान्त पलक मारने मे जान-लेते थे। परन्तु दोनो का मार्ग अलग २ था, इस पुराने और नए मार्गको अलग २ करके देखनेपर यह ज्ञात होजाता है कि इस समयका मार्ग भौतिक है। और उस समयका मार्ग मानसिक था। पानी, पवन, बर्फ, बिजली इत्यादि सृष्टि के जड पदार्थों के गुण धर्म को अत्यन्त सूक्ष्म रीति से अनुशीलन करके पश्चिमी लोगो ने उनपर पूर्ण विजय पाई है, और उन सब पदार्थों को अपना दास बनाकर इच्छानुसार कार्य कराते है।

इधर धर्म ग्रन्थो मे रावणादिक दैत्यो के और राक्षसो के वैभव वर्णनसे बोध होता है कि उनके घरो मे पवन देवता बुहारी देते थे और मसालचीका काम सूर्य को सौंपा गया था, पुराणो के इस सत्य वर्णन को जो नई रोशनी वाले कल्पना प्रसूत बताया करते है उनको उचित है कि आज कल के विज्ञान को देख कर उन सब बातों को यथार्थ जाने। आज कल के विज्ञान को पञ्च महाभूतो के ऊपर स्वत्व प्राप्त कर लेने का फलही समझना चाहिए।

इस समय के विद्वानो ने इन महा भूतो के गुणधर्म को खोज करनेमे अपना सारा सामर्थ्य लगा दिया। परन्तु हमारे पूर्वजो ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति मानसिक गुणधर्मकी खोजमे व्यय की थी और उन शास्त्रोंके अभ्यास से मानसिक सामर्थ्य को जान लेने के कारण उस शक्ति के बलसे इस समय की अपेक्षा सौ गुने व हजार गुने आश्चर्यकारक कार्य कर गए है। पूर्वकालीन महात्मागण योग का ही

पदार्थ विज्ञान शास्त्र समझते थे । पदार्थ विज्ञान शास्त्र तथा आधिभौतिक सृष्टि से व्यवहार रखनेवाले इतर अर्वाचीन शास्त्र निम्न श्रेणीके माने जाते थे । परन्तु योग शास्त्र उच्च श्रेणी का समझा गया है। पदार्थ विज्ञानादिक शास्त्रो से ईश्वर बहुत ही दूर है । परन्तु योग शास्त्र ठीक २ परमेश्वरके निकट ही अपने साधक को पहुॅचा देताहै । यदि परमेश्वर को कोई कार्य करना होता है तो वह लोहे के बडे २ डण्डो पर फौलादी पहियो को जोर के साथ नही घुमाता है, मनमे विचार करते ही वह अपने कार्यको पूर्ण कर लेता है, और यही तत्त्व योगशास्त्र का अनुसरण करता है । इसही कारण से यह शास्त्र ईश्वर के निकट का शास्त्र माना गया है । हमारे पूर्वजो ने इस शास्त्र का अभ्यास दीर्घ काल तक किया था, यह शास्त्र अधिक व्यापक है, इस एकही शास्त्र को सीख लेने से समस्त शास्त्रों के सीख लेने का फल होता है । यदि कोई रेलगाडी और ऐंजिन बनाना जानता हो तोउसको बिना सीखे हुए मार्कोनी के अभ्यास किये तार का काम कदापि नहीं आसकता । परन्तु जिसके मनमे योग के द्वारा सामर्थ्य उत्पन्न होगई है, वह पलभर मे सहस्रो कोस जासकता है और घर बैठे ही बैठे एक क्षण भर मे सहस्रो कोस की दूरी का वृत्तान्त जान सकता है । इसी से भलीभाति योग शास्त्र की व्यापकता को प्रत्येक मनुष्य समझलेगा, यह बडे आश्चर्य की बात है कि इस प्रकार के अद्भुत और व्यापक योग शास्त्र को पाकर भी हम हीन दीन से बैठे हुये आजकल बातो पर आश्चर्य किया करते हैं. कि अमुक ने अमुक यन्त्र निकाला और अमुक ने अमुक कार्य किया । हमारे पूर्वज महात्मा इस योगशास्त्र के बलसे ही बलवान् हुयेथे । यह योगशास्त्र असाधारण शास्त्र है । अतएव इसही कारण से इसमें सब बातो का समावेश होता है । आजकल बहुधा दिल्लगी से यह प्रश्न किया जाता है, कि वेदों में कही रेल और तार का भी जिकर है ?

उसके उत्तर मे निवेदन यही है कि वेदो मे रेल तार ही नही वरन सब ही कलाकौशल वर्त्तमान हैं, परन्तु इस कलाकौशल के जानने और देखने के लिये संस्कृत हृदय तथा संस्कृत नेत्रो की आवश्यकता है। आजकल किसी स्टेशन पर खडी हुई किसी आगगाडी को ही धूमयान नही समझना चाहिये परन्तु आगगाडी अर्थात् अति शीघ्रता के साथ एक स्थानसे दूसरे स्थान पर पहुँचने वाले विशिष्ट साधन कानाम आगगाडी अथवा धूमयान है ऐसा सरलार्थ ग्रहण करने से ज्ञात होताहै कि वेद में धूमयान अवश्य है, और वैदिक ऋषिगणों के पास भी निश्चय इस प्रकार की आगगाडी अथवा रेल गाडी थी। इसही भांति की दृष्टि से देखने पर रेलगाडी के अतिरिक्त मशीनगन्स (कल से चल नेवाली तोपे) भी हमारे पूर्वजो के पास थी आजकल की मशीनगन्स मे जैसे एकाध पहिया होता है, और उसके द्वारा बहुत से कारतूस एकही टोटे मे होकर निकलते चले जाते हैं, वैसे ही हमारी मशीनगन्स नही बनी थी, परन्तु आजकल की मशीनगन्स जिस प्रकार अनेक लोगोका संहार करडालती है, वैसेही पूर्व कालीन मशीनगन्स भी अनक लोगोंका संहार करडालती थी, हमारी पूर्व कालीन मशीनगन्स दुष्ट जनो का संहार करने मे नियुक्त थी पवित्र तेजस्वी, तपस्वी तथा ब्रह्मचारी ब्राह्मण उन वैदिक तोपो के गोलन्दाज थे हमारी इन अद्भुत तोपो पर आजकल धूलि पडगई है, मोरचा लगगया है। इसके अतिरिक्त वैसे गोलन्दाज भी अब नही मिलते। इसही कारण से वह दुष्टजन संहारकारिणी मशीनगन्स इस समय निकम्मी पडी हुई हैं। वेद मे विशेष करके अथर्ववेद मे अनेक प्रकार के मन्त्र लिखे हैं। पुरश्चरण के द्वारा सिद्ध करने पर वे मन्त्र तत्काल फल देते है ऐसे बहुत से मन्त्र है। परन्तु केवल रुद्र के कितने एक मन्त्रो का पुरश्चरण फल यहा लिखा जाता है, जिससे यह ज्ञात होगा कि उन मन्त्रो को "हमारी प्राचीन मशीनगन्स" नाम देना कैसा उचित और युक्ति युक्त है।

रुद्र के पहिले अध्याय की १०, ११, १२ इन तीन ऋचाओ का पुरश्चरण करने से " युद्धापनीताः शत्रवो हीयन्ते" अर्थात् युद्ध करने को आगे खडे हुए शत्रु नाश को प्राप्त होते हैं, ऐसा फल कहा है। इसही प्रकार उसही अनुवाक की १३। १४ और पन्द्रह ऋचाओमे भी मशीनगन्स की नाईं अद्भुत सामर्थ्य आगे के प्रमाण से विदित होगी।

एताभिरपि संग्रामकाले तैलमेकादशप्रदीपसहस्राहं द्रोण्यां प्रक्षिप्य तत्र देवमावाह्य लोकपालैः सहाराध्य स्पृष्ट्वा तैलं सप्तदिनानि प्रतिदिनमष्टसहस्रं जपेत्। तेन सिद्धतैलेन प्रदीपानेकादशसहस्रमारोप्य शत्रुराज्ये प्रत्यासन्ने राजानं विना सेनानीः पुरोगच्छेत्।दृष्ट्वादीपज्वालां शत्रुसेनानावतिष्ठते। एतत्प्रभावादेवशत्रवो विनश्यन्ति।अन्यदपिएताभिरेवारातिनगरे सिद्धवेषधारिणो ब्राह्मणाः शक्तामन्त्रसिद्धाः शत्रोरभिचारं कुर्युः राजायदुपयुंक्ते वस्तुतदेताभिः स्पृष्ट्वा चदृष्ट्वा च स्पर्शनदर्शनायोग्यं तन्मुखाच्छ्रुत्वा अभिचारोस्त्विति जपेयुः। मन्त्रान्तेऽन्यदपि शंकुनिधाय नगरचतुष्पथे देवालये देवारामे सालखातयोरन्यतरस्मिन्नपि नगराङ्गभूते सहस्राभिमन्त्रितंखनेयुः। तन्नगरं शम्भुकोपात्संवत्सरत्रयान्नश्यति व्याधिना"

इस मन्त्र के पुरश्चरण की सामर्थ्य उपरोक्त संस्कृत मे इस प्रकार से कही है कि इस मन्त्र के द्वारा अभिमन्त्रित तेल के उजियाले का

देखते ही शत्रु की सेना अपने सामने खडी नहीं हो सकेगी तैसेही जिसने इस मन्त्र को सिद्ध कर लिया है उस सिद्ध वेषधारी ब्राह्मण को अभिचार करने के लिए शत्रु के राज्य मे भेजे यदि वह ब्राह्मण अभिमन्त्रित करके कोई कील शत्रु के राज्य मे गाड दे तो ३ वर्ष के भीतर ही भीतर वह नगर किसी न किसी रोगसे विध्वंस हो जायगा।

रुद्र के दूसरे समस्त अनुवाक के पुरश्चरण का फल इस प्रकार से कहा है कि--

शत्रूणां मारककामो रक्तसर्षपांस्तैलाक्तानयुतंजुहुयाद्दता-वृतौतेन कर्मणाशत्रवो नश्यन्ति। युद्धे प्रत्यासन्नेदेवस्य परिमार्जिष्ठ पटमारोप्य स्वयं शुद्धोभूत्वा दक्षिणहस्तां-गुष्ठेन एतद्गच्छत्यनुवाकान्तेवदन्नष्टसहस्रं पञ्चदिनानि जपेत्। शत्रूणां राजा स्थानाद्गच्छति।

भावार्थ ऐसा है कि इस पुरश्चरण को करके लाल सरसोंको तेल मे भिजो लेवे और उससे हवन करै तो शत्रु का नाश होता है तैसेही सरसों की पिट्ठी को महादेवजी पर लेप करै और शत्रु का नाम लेके आठ हजार जप करनेसे शत्रु को भयंकर ज्वर आवेगा और उसी ज्वर से शत्रु नष्ट होजायगा। इसी भांति से शत्रु के राजा पर इस मन्त्र के जप का कुछ प्रयोग करने से वह निज स्थान से भ्रष्ट होता है इस दूसरे अनुवाक की नाईं तीसरे अनुवाक का भी यही फल है यथाः—

राजा चान्यतरस्य राष्ट्रस्यरोगबाहुल्यमिच्छन्नाम्नेव वागहोदिभिर्मांसैर्लक्षंहोमःकार्यः।रिपुराष्ट्रं समुद्दिश्या-भिचारं करोमि फट् स्वाहेति। एवंमांसहोमेनरिपुरा-ष्ट्रं प्रजाश्चक्षुष्यन्ति। अथवैकङ्कतसमिद्धीरक्तसूत्र-

वेष्टिताभिः शतसहस्रंहोमः । अनेन शत्रोः महाज्वरो भवति । परराष्ट्रजनैरुपभोग्यं जलादिकं वस्तुस्पृष्ट्वा वीक्ष्यवाशतसहस्रं जपं कुर्यात् ।यस्तद्वस्तूपयुंक्ते सस-म्वत्सरान्नश्यति । श्मशानाग्नावर्कसमिद्भिरासम्वत्सरं जुहुयात् । तेनशत्रुनगरं व्याधिनानश्यति। अर्कारण्यं भवति ।अनेनैव चामुण्डालये दक्षिणाभिमुखोभूत्वा मा-षतैलाक्तैरेकादशसहस्रं जुहुयात् । परराष्ट्रप्रजाच मसू-रिकाभिर्बाध्यते।अनेनैवापरमुच्यते।पश्चिमद्वारेशम्भो-रालये देवस्य पादपीठे अग्निमपस्मारिणं स्पृष्ट्वा सतस-हस्रं जपेत्।शत्रुराज्यंस्मृत्वा मन्त्रान्ते प्रज्वलज्ज्वालाप-स्मारिन् इति वदेत्।एतेनराजशत्रोरपस्मारोभवति।अने-नैवसर्वपदगं राजानंस्मृत्वा शुद्धतण्डुलकृतपिष्टैराहुति-मात्रैःशतसहस्रहोमेन राजयक्ष्मोत्पद्यते। तेनविनश्यति।

पश्चिम वालों की आविष्कार की हुई मशीनगन्स जैसे भांति २ की होती है वैसेही हमारी प्राचीन गन्स भी भिन्न २ प्रकार की हैं। तीसरे अनुवाक की मशीनगन्स का प्रभाव इस प्रकार का है कि इसके द्वारा शत्रु का देश और उसकी प्रजा रोग से सूख जाती है और शत्रु के अङ्ग मे महाज्वर उत्पन्न होता है । शत्रुके देश की जलादि वस्तुओं को देख के या स्पर्श करके यदि इस मन्त्र का एक लक्ष जप किया जाये तो उसका व्यवहार करने वाला एक वर्ष में नष्ट होता है । इसी मन्त्र के एक दूसरे साधन शत्रु के नगर का नाश व्याधि से होता है और उस देश मे रोग का वास होजाता है तथा वहा आक का बन जमता है। इस मन्त्र से शत्रु के राज्य मे मसूरिका इत्यादि रोग फैलते

हैं व अपस्मार क्षयी इत्यादि रोग भी उत्पन्न किये जा सकते हैं । पाचेव और छठे अनुवाक के फल भी कुछ इसी प्रकारके कहे हैं यथा—

एताभ्यांसंग्रामेप्रत्यासन्नेराज्ञोमहानसपक्वान्नेवसोपदंशेन भक्तेन दधिमधुघृताक्तेनप्रतिनमस्कारंएकादश कृत्वा हुत्वा शेषं बलिंभूमौविधायादाय जलमिश्रं पात्रेणनामभिः प्रक्षिपेत् । सासेनाचिरान्नष्टा भवति एताभ्यामेवराज्ञः सर्वायुधानि स्पृष्ट्वा सहस्रमभिमन्त्रयेत् तेषांतेजोवर्धतेए ताभ्यामेव परसेनांप्रतिक्षिपेत्साहिसेनाचिरंनष्टाभवति। एताभ्यामेव परसेनास्तम्भ उच्यते। अर्कसमिद्भिरादित्यं प्रतिनमस्कारं शतसहस्त्रंजुहुयात् । परसेनास्तम्भं करोमि स्वाहा। एवं कृते शत्रुसेना स्तम्भिता भवति। एताभ्यामेव राज्ञःसर्वाणि भोज्यवस्तून्यभिमन्त्रयेत तान्यमृतानि भवन्ति ॥

इस पांचवें और छठे अनुवाक की प्रशनिगन्स से शत्रु की सेना तत्काल नष्ट की जा सकती है।और जहांकी तहां स्तब्ध होसकती है । यदि अपने राजा के अस्त्र शस्त्रो को इस मन्त्र से अभिमान्त्रित किया जाय तो उसका तेज बढता है तथा राजा के भोजन की वस्तु अभिमन्त्रित की जांय तो उनमे अमृत की समान गुण होता है । नवे अनुवाक के चौदहवें मन्त्र का पुरश्चरण फल नीचे लिखे अनुसार है ।

राजाशत्रुनाशकामोऽतिशक्तेन ब्राह्मणेन कारयेत् ।शत्रुं राजानां महाखदिररूपिणं कृत्वा कस्मिंश्चिद्विविक्ते देशे जलपूर्णकुम्भेदेवतामावाह्य तत्सान्निधावग्निमाधाय शमिसमिद्भिः सकण्टकाभिः शतसहस्रं जुहुयात् । रुधिरं-

च बिडालं प्रशस्तंभवति । ततस्तद्रूपं प्रत्यङ्गलोहशं-कुभिः प्रतिनमस्कारं खानयित्वा तदुपरिराजा स्वापदं विन्यसेत् । विन्यासकाले गुरुर्जपेत् । ततो राजा ब्राह्मणानां शतं भोजयेत्।ततो देवं विसर्जयेत् । एवंकृते परराजा संवत्सरत्रयान्नष्टो भवति । अन्यच्च तदेव रूपंस-शृंखलं कृत्वापूर्ववद्धोमःततोराजाऽचिराच्छृंखली राज्ञो वश्यत्वंव्रजेत् ।अन्यदपि वक्ष्यते । शत्रुराजनगरे कृत्रि-मवेषधारिणोराजपुरुषाः सब्राह्मणाः सिद्धाः प्रविश्य चतुष्पथेषु देवालयेषु राजसभासु राजद्वारे च लोहशं-कूनपिताञ्शतसहस्राभिमन्त्रितान्कृत्वा गुप्तान्न्यसेयुः। ततो भस्माभिमंत्रितं सर्वतो विकिरेयुः। जलमपि वि-किरेयुः । एवंकृते तत्पुरमासंवत्सरत्रयान्नष्टं भवति । तत्र खदिरबदर्यादयो वनस्पतयो रोहन्ति। ततो विकृत-वेषाः परराजपुरजलाशयेषु कण्ठप्रमाणे जलतपः कुर्वन्तः सूर्याभिमुखाः अष्टशतदिनानि प्रतिदिनमष्टश-तगुणंजपेयुः। जपकाले भगवते हालाहलमेव करा-भ्यामभिमन्त्रयेयुः। एवं कृते तज्जलपायिनो वाहना-दयो विषदष्टा इव नश्यन्ति ।

इस मन्त्र की मशीनगन्स मे जप के कारतूस भरे जाने पर तीन वर्षमे शत्रुका नाश होजाता है व उपरोक्त दूसरी विधि के द्वारा शत्रु का नगर भी तीन वर्ष के भीतर ही भीतर ऊजड होता है और वहा खैर तथा बेरी के वृक्ष जम जाते है । यदि इसी मन्त्र के द्वारा शत्रु

नगर का पानी अभिमन्त्रित किया जाय तो उस पानी को पीतेही शत्रु के हाथी घोडे विष से व्याकुल होकर मर जाते है। दशवें अनुवाक की आठवी ऋचा का विधिपूर्वक पुरश्चरण करने पर उसका पर्यवसान इस प्रकार से होता है। यथा-

वैकङ्कतसमिधा विषतैलाक्तानां श्मशानाग्नौलक्षंजुहुयात्। शत्रवो नश्यंति। शत्रुनामग्रहणंकृत्वा देवस्य सन्निधौ भस्मपाणिरयुतं जपेत्। तस्यशत्रोर्महाज्वरो भवति। श्वेतसिद्धार्थैरयुतंजुहुयात्। शत्रोर्मसूरिका जायन्ते ताभिरेवम्रियंते। शत्रोर्गृहे क्षेत्रादिषु मन्त्रेणानेनावटं खानयित्वातत्रकलपरोमास्थिशर्करादिकं खातयेत्। तस्यशीघ्रं नाशो भवति।

शत्रु का नाश, शत्रुको महाज्वर, माता इत्यादि रोगोंकी महामारी इत्यादि इस मशीनगन्सके द्वारा उत्पन्न होती हैं। उपरोक्त दसवे अनुवाक की एकादश ऋचा के पुरश्चरण मे एक प्रकार की अलौकिक सामर्थ्य लिखी है। यथा—

सर्वाञ्जेतुकामोऽपामार्गसमिधां कपिलाज्यसिक्तानां शतसहस्रमाहुतीर्जुहुयात्। एतेनैववराहादयोवश्याभवन्ति। तिरश्चोजेतुकामो बिल्वसमिधां दधिमधुघृताक्तानां शतसहस्रमाहुतीर्जुहुयात्। अपोजेतुकामो जलस्य मध्ये आत्माग्निमाधाय कपिलेन पयसाशतसहस्रमाहुतीर्जुहुयात्। अद्भ्योभयं न जायते। एवमन्यदपियद्यज्जेतुकामो भवति तन्नामग्रहणं कृत्वाकापिलाज्येनशतसहस्रैर्जुहुयात्। तत्तत्सर्वंजयति।

इस मशीन की सहायतासे सबपर जय प्राप्त होती है और वराहादिक क्रूर पशुभी वशमे आजातेहैं फिर इतर प्राणियो की तो बातही क्या है ? पक्षीगण वश मे होतेहै पानीसे किसी समय भी भय नही होता।जिस२का नाम लेकर यह मन्त्र जपा जाता है, वह सबही साधक के आधीन होजाते हैं। इस प्रकार रुद्र के भिन्न २ मन्त्रो का फल है बरन रुद्र की समस्त एकादशिनी ऐसी ही प्रभावशाली है। यथाः—

शत्रुमारणकामः पूर्वोक्तविधिना मन्त्रन्यासादि कृत्वा दिक्पालेभ्यो रक्तोदनबलीन्दत्त्वा 'स्तुहिश्रुतम्'—इत्यनेन षोडशोपचारान्कृत्वा रुद्रैकादशिनीमेकादशकृत्वो जपित्वा पुनः 'स्तुहि श्रुतम' इतिसहस्त्रंजपेत्प्रत्यहम् सप्तरात्रेण शत्रुविनाशो भवति। अथ कृत्यामुत्पादयितुकामोरक्तवाससारक्तोष्णीषोरक्तमाल्यानुलेपनैर्देवमर्चयेत्। श्मशानाङ्गणे लोहितशलाकाः प्रादेशमात्रा महातैलाक्ता लक्षं जुहुयात्। "उत्तिष्ठरक्ताक्षि रक्तनेत्र रक्तकेशि"। कन्यां तां क्षिप्रमेवरुधिरकुम्भेन। पूर्णमांस॰ मात्रेणतर्पयेत्। अन्यथाकर्तारमवहिंसेत्। सात्वरिता यन्त्रिता वदति। "कंधर्षयामिवदमां ज्ञायते यदि त्रैलोक्यस्थितमभ्युत्सादयिष्यामि" इति॥ तथा चैकैकस्यशरीरस्यग्रामे नगरे गृहे च प्रयोगः। प्रमुञ्च धन्वन—इति षड्भिरायुधमभिमन्त्र्य संग्रामोपनीताः शत्रवः पलायन्ते। अभिमुखा नावतिष्ठन्ते। 'विकिरिद विलोहित' इति यथाशत्रुभिरनेकपर्यायंसुप्तशत्रुमुखे

जुहुयात् । सर्वे विभग्नमनसोविमुखाः शत्रवश्चपलायन्ते 'नमोहिरण्य'इत्यनुवाकैःकटुतैलाक्तानां-राजाभिशंकितानां सर्षपाञ्जुहुयात् ,चक्रमुत्सादयति फट्कारेणदेवस्योपरिमालामधोशिरामवलम्ब्य सशिरसा वस्त्रेण रुधिरमाप्लाव्य त्रिकुटकेनाभ्यज्य देवकरांगुलिना रेखामुत्पाद्य शत्रोर्नामानुस्मरञ्जपेत् । सबलसमुदायं शत्रुमुच्चारयति । एवं कृत्स्नं ग्राममुच्चारयति एकाहेन । राजानमहोरात्रेण संपूर्णमर्धदिवसेन क्षत्रियं क्षपयति । दिवसत्रिभागेनवैश्यं चतुर्भागेन शूद्रम् ।

इस विधान मे शत्रु के नाश होने का प्रभाव है।उपरोक्त ऋचाओंमें कृत्या को उत्पन्न करने का एक विधान कहा है।लाल कपडा लाल फूल लाल गंध इत्यादि के द्वारा देवता का पूजन करे व श्मशान मे लोहे की शलाका से हवन करते हुए'उत्तिष्ठरक्ताङ्गिरक्तनेत्रे रक्तकेशि' इस मन्त्र से उस कन्या को उठाय रक्त मांस से संतर्पित करे।इस क्रिया के द्वारा वह कन्या उत्पन्न होकर कहेगी कि किसका वध करूं ? त्रिलोकी मे वह चाहे जहां हो मै उसको मारडालूंगी यदि ऐसा उग्र देवता सिद्ध होजाय तो उसके सामने आजकल की मशीनगन्स क्या वस्तु है ऐसी अमोघ मशीनगन्स के द्वारा शत्रु तत्काल पराजित होता है और गांव के गांव क्षणभर मे विध्वंस होजाते हैं । उपरोक्त ऋचाओ से भलीभांति ज्ञात होता है कि मन्त्रो के द्वारा इस प्रकार के अनेक और अद्भुत कार्य हो सकते है तथा यह भी जाना जायगा कि आजकल की मशीनगन्स' से जो कार्य होते है उन्ही कार्योंको हमारे पूर्वज लोग अपनी पुरानी मशीनगन्स से सिद्ध कर लेते थे । बरन नई मशीनगन्स की अपेक्षा पुरानी मशीनगन्स के परिणाम अधिक भिन्न २ हैं। इन पुरानी मशी-

नगन्स के गोलन्दाज इस समय अपनी विद्या को भूले हुए बैठे हैं और इस बात की प्रशंसा करते हैं कि पश्चिमी लोगो ने एक मिनट मे हजारो गोले फेकनेवाली तोप को आविष्कार करके जगत् को चकित व छकित कर डाला है, परन्तु इस बात का वह विचारे कभी भूल से भी ध्यान नही करते कि इसी परिणाम को हमारे पूर्वज लोग मानसिक शक्ति के द्वारा सरलता से करडालते थे। परन्तु प्रत्येक उन्नत राष्ट्र पर या उन्नत होते हुए राष्ट्र पर इस प्रकार की अद्भुत सामर्थ्य का साधन चाहे वह जड हो या सूक्ष्म- अवश्य होता है और बिना उसके पास रहे हुए उस राष्ट्र को श्रेष्ठत्व नही मिलता है। इस दृष्टि से रखने पर जाना जाता है कि आजकल के उन्नति राष्ट्र जिन साधनो को अपने पास रखते है, वैसेही मानसिक शक्ति के अपूर्व साधन हमारे प्राचीन राष्ट्रो के पास थे। ऐसे बहुत से उदाहरण पाये जाते है जिन से यह प्रमाणित होता है कि हमारे पूर्वज तेजस्वी क्षत्रियों और ब्रह्मविद्या विशारद महर्षियोने घोर संग्रामोके अति- रिक्त और भी अनेक स्थलों मे अपने अपूर्व साधनो का व्यवहार किया था। इस प्रकार के अनेक उदाहरण पाये जाने पर भी लोग कठिनता से वि- श्वास करते हैं। पूर्व काल की चरचा से कौनसा लाभ है क्योंकि इस नास्तिकपन के जडवादके और संसारी सुख भोग के,समय मे इस प्रकार के अकाट्य सत्य पर विश्वास कराना बडा कठिन कार्य है । परन्तु मत धर्म के सिद्धान्त जानकर इन बातो को सत्य मान लेना असम्भव भी नही है। इन बातो ो सत्य समझ लेने के लिए मन को दृढ करना चाहिए, अन्तःकरण की वृत्ति स्थिर होनी चाहिए। तपश्चर्या का बल बढाना चाहिए और योगबल का संचय होना चाहिए। उपरोक्त कार्य सरल नही है परंतु इन पुरानी मशीनगन्स की भांति नई मशीनगन्स भी सरलता से साध्य नहीं होसकतीं, इनके साध्य करनेमे भी बहुतसा परिश्रम करना पडता है । कल्पना करो कि यदि

एक अर्वाचीन मशीनगन्स के बनाने मे पाच हजार रुपये लगते हैं तो इन पांच हजार रुपयो में कौनसे मानसिक गुण नही आसकते ? द्रव्य बडी रकम उत्तम मनोधर्मका एक रूपान्तर समझो । जब कि इस प्रकार की यान्त्रिक मशीनुगन्स को बहुत से मानसिक गुणो की आवश्यकता है, तब आपकी यांत्रिक मशीनगन को कितनी अधिक इस द्रव्य की आवश्यकता है सो आपही विचार कर देखिए परन्तु इतने गुण क्वचित् ही प्राप्त होते हैं, इसी कारण बहुतो को यह बात कठिन जान पडती है । परन्तु जहापर दिव्य योग साधन है और जहा पर इच्छा शक्ति अत्यन्त प्रबल है, वहा पर कोई भी बात असम्भव नहीं है ।

इस विचार से प्राचीन और अर्वाचीन उन्नति का अन्तर भलीभांति से विदित होजायगा । अध्यात्म शास्त्र पूर्व का बनाया और आधि-भौतिक सुधार आजकल की दशा है एक एक युग मे मार्ग का महत्त्व होता है । पूर्व युगो मे पुण्यात्मा पुरुषो की प्रवृत्ति सूक्ष्म और दिव्य अध्यात्म शास्त्र की ओर थी और वर्त्तमान युग मे स्थूल व जड आधिभौतिक शास्त्र की ओर दृष्टि लगीहुई है । इस युग का नाम कलियुग है ।

बलदेवप्रसाद मिश्र.

दीनदारपुरा मुरादाबाद ।

॥ साकारोपासना ॥

नूतनजलधररुचये गोपवधूटीदुकूलचौराय ।
तस्मैकृष्णायनमः संसारमहीरुहस्यबीजाय ॥

आजकल जैसा हिन्दूधर्म पर संकट पडा है वैसा और किसी समाज पर नहीं प्रथम तो कलियुग में वैसे ही धर्म का एक चरण शेष रहा है, तिसपर फिर इनदिनो के नवीन सभ्याभिमानियो ने ऐसा भयङ्कर

उपद्रव मचारक्खा है, कि जिससे प्राणो को बचाना भी कठिन ह, ब्राह्मण से लेकर म्लेच्छादि निकृष्ट जातियो के सब मनुष्य धर्माचारी होने का दावा रखते हैं जिनक बाप दादो संस्कृत का अक्षर तक भी न पढा होगा, जिनको काला अक्षर भैंसकी बराबर है वह भी आज चौदह विद्या निधान होकर धर्मकी धूल उडा रहे हैं, और यह हिन्दू संतान भेडिये की समान आंखे बन्द करक उनके पीछे २ चले-जाते हैं,जिन्होने जन्मभर तक अंग्रेजी बूकी और पचास वर्ष तक फारसी छानी, वह भी 'मुह्यन्तियत्सूरयः' वेदके तत्त्व प्रकाश कर रहे हैं क्या समय है ? आजकल वही धर्म है, जो हमे पसन्द है, वही शास्त्र है जो हम पढें, वही संसार से उद्धार होने का उपाय है, जो हम लैक्च-रदें—वाह क्या धर्म भी 'नानी जी का मीरास' है, हम जानते हैं कि परमेश्वर ने अपना सम्पूर्ण धर्म राज्य इन्ही वितंडावादी वाक्शूर अदू-रदर्शी कूप मंडूक अव्यवास्थित चित्तो के हाथ मे सोंपादिया है कि तुम जैसा चाहो वैसा करो कदाचित् दिल्ली की बहिश्ती की तरह तीनदिन की बादशाही इन्हें मिलगयी है कि खूब कागज के घोडे दौडालो, हमे इस बात का बडा दुःख है कि जिस धर्म की गति युधिष्ठिर की समान धर्मराज और व्यास, वशिष्ठादि प्रचारको ने भी ठीक २ नहीं जानी, उसे कलियुग के जीव खिलौना समझ रहे हैं । दिनभर मे तीन २ बार धर्म बदलता है,फिर धर्म क्या कुछ भी नहीं, जबानी जमाखरच यह करो वह करो पर करते कुछ भी नहीं, न आप न उनके आचार्य्य घडीभर भी शुद्ध चित्तसे धर्मका आचरण नही करते है ईर्षा, द्वेष,मत्सर,लोभ,मोह,मद, काम, क्रोध सबके एकाधार चलाजाता है, जो आजकल के धर्म प्रचारक ऋषि मुनि संन्यासी योगी यती पण्डित बन रहे हैं । हां ? किसी ने खूब कहा है ॥ श्लोकः—

गतागीतानाशं निगमपदवी दूरमगमत्
विनष्टाःश्रुत्यर्थाः क्वचिदपि पुराणं नसरति ।

इदानीं रैदासप्रभृतिवचसा मोक्षपदवी
नजाने को हेतुः शिव २ कलेरेषमहिमा ॥

गीता का ज्ञान नष्ट होगया, वेद का मार्ग दूरचला गया श्रुतियो के अर्थ उलट पुलट किये गये, पुराणो से श्रद्धा उठगई अब रैदासी इत्यादि शद्वो से अर्थात् नौकरी सेही लोगो ने मोक्ष समझ रक्खा है । यह नही विदित होता कि इसका क्या कारण है, शिव २ यह, सब कलि की महिमा है, इस कारण कलियुग की महिमा को देखकर विचार करना पडाहै कि ऐसा कौनसा धर्महै कि जिसके करनेसे वर्त्तमान समय मे मनुष्य अपने आप को मनुष्य कहला सकता है सो बडे भारी गूढ विचारके करने से यह निश्चय हुआ कि, 'उपासना' के बिना कुछ भी नहीं है, केवल उपासना के करने से ही मनुष्य लोक और परलोक का सुख भोग सकता है इस कारण मनुष्यमात्र को अवश्यही ईश्वरकी उपासना करनी चाहिये, बिना उपासना के जन्म निष्फल है, उपासना के करने से ही हजारो जन्मो के पाप दूर होजाते हैं, यथा—

कलिकल्मषमत्युग्रं नरकार्तिप्रदं नृणाम् ।
प्रयाति विलयंसद्यः सकृद्यत्रानुसंस्मृतेः ॥

कलियुग के अति उग्र पाप पुरुषो को महानरककी पीडा देतेहैं परन्तु वह सम्पूर्ण पाप विष्णु के स्मरण करते ही नाश होजाते है ॥

अपिचेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितोहिसः ॥
भ० गी० अ० ९ श्लो० ३० ॥

श्रीकृष्ण जी कहते हैं जो दुराचारी भी अनन्य भाव से मेरी उपासना करता है, उसे साधु [उत्तम] ही समझना चाहिये कारण कि वोह सन्मार्ग मे प्रवृत्त होरहा है । और वही सच्ची भावना वाला है ॥

अब सर्व साधारण के ज्ञान के लिए उपासना का अर्थ किया जाता है ।

'परब्रह्मपरमात्माके स्वरूपमें लीन होनेका नामही उपासना है'

वह सगुण और निर्गुण भेद से दो प्रकार की होती है सगुण उपासना वह है कि जिसमे ईश्वर को शुद्ध बुद्ध नित्य सर्वज्ञ सर्वव्यापक कर्त्ता हर्त्ता दयालु सत्य पवित्र सर्वशक्तिमान् मङ्गलमय सर्वान्तर्यामी गुणो से युक्त मानकर आराधन किया जाता है । निर्गुण उपासना वह है कि जिसमे ईश्वर जन्म मरण से रहित निर्विकार निराधार संयोग वियोग मे अतीत जान कर आराधन किया जाता है, परन्तु आजकल नई रोशनी के वाक्शूर 'मम मुखे जिह्वा नास्ति' की भांति ईश्वर को सर्वव्यापक मानकर भी साकारोपासना मे घृणा उठाकर निराकारोपासना का दावा बाधकर उभयतःभ्रष्ट हो रहे है, अतः उनको सचेतन करने के लिए प्रथम वेदादि शास्त्रो से साकारोपासना कथन कर पीछे निराकार उपासना का वर्णन किया जायगा और जो यह मन्त्र पढते है कि-

सपर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविर ँ शुद्धमपापविद्धम् । कविर्मनीषीपरिभूःस्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यःसमाभ्यः । यजु० अ० ४० मं० ८

अर्थ-(सः) सो परमेश्वर (पर्यगात्) अर्थात् आकाशवत् सर्वव्यापी है (शुद्धं शुक्रम्) अर्थात् शुद्धस्वरूप है, भौतिक प्रकाश विलक्षण ज्ञानस्वरूप अथवा अलौकिक दीप्तिमान् परमात्मा है, [अकायम्] सूक्ष्म भूत कार्य लिग शरीर वर्जित है (अव्रणम् अस्नाविरम्) स्थूल शरीर मे वर्त्तमान व्रण और स्नाविर अर्थात् नाडी समूह कर वर्जित है इन दोनों विशेषणो से भौतिक स्थूल शरीर से विलक्षण कहा (अपापविद्धम्) अर्थात् धर्माधर्म रहित इस विशेषण से जीवाभिन्न होन से प्रसक्त जो जीवोपाधि लिग शरीर धर्म धर्माधर्मादि तीनों

का निषेध किया है (कवि) अर्थात् सर्वज्ञ है (मनीषी) मन का प्रेरक है (परिभूः) सर्वोपरि वर्त्तमान है, पूर्व उक्त अकायादि विशेषण से भौतिक प्राकृत शरीर का निषेध किया है, इस अभिप्राय का स्वयं ही यह मन्त्र प्रकट करता है (स्वयभूः) इस विशेषण से (स्वयमेव ब्रह्म रुद्र-विष्णवादिरूपेण भवति प्रादुर्भवतीति स्वयभूः) आप ही वह परमात्मा अपनी विचित्र शक्ति से ब्रह्मादि रूप से होता है, इस से स्वयंभू है यही अर्थ गीता मे स्पष्ट है ॥

अजोपिसन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपिसन् ।
प्रकृतिंस्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया। भ०गी० अ० ४ श्लो० ६

श्रीकृष्ण जी कहते हैं हे अर्जुन ! मै अज और अव्ययात्मा और सब भूतो का ईश्वर भी हूँ, तथापि अपनी प्रकृति स्वाभाविक सामर्थ्य को आश्रय कर [आत्म मायया] अर्थात् अपने संकल्प से होता हूँ इससे अवतार सिद्ध है और जब परमात्मा ब्रह्मादिभाव को प्राप्त हुआ तब (याथातथ्यतः) अर्थात् यथावत् [अर्थात्] कर्त्तव्य पदार्थो को [शाश्वतीभ्यः समाभ्यः] दीर्घ वर्ष उपलक्षित प्रजापति मनु आदि हेतुओ से [व्यदधात्] विभाग कर्त्ता हुआ इस मे ईश्वर को अकाय लिखा तो इसमे भौतिक शरीर का निषेध है कारण कि इस मन्त्र मे 'अकाय' पढने से फिर अव्रण व्रणरहित (अस्नाविरम्) स्नायु रहित इन दो विशेषणो की आवश्यकता नहीं थी जब शरीरही नही तो, व्रणादिका निषेध क्यो ? इस मन्त्र से ही स्फुट विदित होता है कि व्रण स्नायु आदिके शरीर से रहित होकर दिव्यमूर्त्ति है कारण कि आगे यह पद पडा है कि वह (स्वयंभू) स्वयं प्रकट होनेवाला है, और स्वयं आगे भी वेद उसका आकार प्रकट करता है ।

ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद्बाहूराजन्यः कृतः ।
ऊरूतदस्ययद्वैश्यःपद्भ्याᳬशूद्रोऽजायत ॥
यजु० अ० ३१ मं० ११

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र क्रम से उसके मुख, बाहु, जंघा और चरणो से प्रगट हुए है, इससे भी ईश्वर की साकारता प्रगट होती है इत्यादि प्रमाणो से उसकी साकारता सिद्ध है । वेदमे ऐसे बहुतसे प्रमाण मिलतेहै कि जिससे ईश्वर का मूर्तिमान् होना और उस ... पूजन करना साबित होता है ।

अन्धं तमः प्रविशन्तियेऽसम्भूतिमुपासते ।
ततोभूयइवते तमोयउसम्भूत्या ँ रताः ॥
यजु० अ० ४० मं० ६

जो पुरुष असम्भूति अर्थात् विना प्रमाण प्रतिष्ठा की हुई प्रतिमा का पूजन करते है वे अन्धे हैं और नरक मे जाकर पडते है, उसी प्रकार जो अन्तर्गत नारायण के स्वरूप को नही जानते विना जाने ही उपासना करते हैं वह भी नरक मे जाकर पडते हैं ।

यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः ।
पूर्वोयोदेवेभ्योजातोनमोरुचायब्राह्मये।यजु० अ० ३१ मं० २०॥

जो ब्रह्मरूप परमेश्वर सूर्य चन्द्र इत्यादि देवताओंको अपना प्रकाश देता है, जो ब्रह्मा आदि देवताओ का हिती और पूज्य है जो ब्रह्मा आदि देवताओ से प्रथम उत्पन्न हुआ है उस ब्रह्मरूप परमेश्वर को नमस्कार है ।

नमोहिरण्यबाहवेसेनान्येदिशांचपतयेनमोनमः।अ. १६ मं० १६॥

हे परमेश्वर ! आपकी भुजा स्वयंप्रकाशवान् हैं और सम्पूर्ण संसार को धर्ममार्ग मे चलानेवाले दिगूदिशाओके पति जो आप हैं सो आपको नमस्कार है ।

उक्त मन्त्र में बाहु शब्द से प्रत्यक्ष ईश्वर का साकार होना सिद्ध है॥

रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूवह तस्य रूपं प्रति चक्षणाय ।
इन्द्रोमायाभिः पुरुरूपं ईयतेयुक्ता ह्यस्य हरयःशतादश॥
ऋग्वेद मं० ६ अ० ४ सूक्त ४७ मं० १८ ॥

परमात्मा अपनी माया को ओंकाररूप करके अनन्तावतारादिरूप अपने प्रगट करता है और अपने रूप की बोधन (पहिचान) के लिए रूप के प्रति अपनी सामर्थ्य सहित विद्यमान होकर उन रूपों के सदृश अपना रूप प्रकट करते हैं, वे अवतार संसार के दुःख हरने को हरिनाम है, सो अनन्त है जिसमें से दश अवतार अधिक प्रसिद्ध है उपरोक्त मंत्र की व्याख्यारूप बृहदारण्य उपनिषत् अ० ४ ब्रा० २ से भी दर्शित है ।

अयं वैहरयोऽपवैदशचसहस्राणिबहूनिचानंतानिच ।

यह हरिनाम परमात्माही अवतार रूप है—वे अवतार दश है शतशब्द बहुत्व का बोधक है, इससे सहस्र तथा बहुत और अनन्त अवतार है—

विचारना चाहिए कि उक्त मन्त्रों से ईश्वरका साकार स्वरूप तथा मत्स्यादि दशावतार तथा चतुर्विंशत्यवतारोंका होना भली प्रकार से प्रगट हुआ और इन्द्रादि तेतीस करोड देवताओं का होना और उनमें ईश्वर का तेज व्याप्त होने से सम्पूर्ण सामर्थ्य का होना भी भली प्रकार से दिखाई देता है इस कारण साकारोपासना वेद के अनुकूल है ।

और युक्तिसे भी सिद्ध है यह युक्ति केवल उन पुरुषों की युक्तिको खण्डन के लिए और आस्तिक पुरुषों की भावना को दृढ करने के लिए प्रकाश कीजाती है ॥

जिनकी यह प्रथम ही हठ है कि ईश्वर निराकार है उसका साकार होना युक्तिसे बाहर है वह जरा नीचे लिखे हुए लेखको सच्चे दिलसे पढैं।

ईश्वर निराकार है, परन्तु जैसे निराकार क ख आद शब्दोंमे सुभीतेके लिये आकार कल्पित किया जाता है जैसे देश भेदसे एकही ककारमे पृथक् २ आकार मानेगये है, वैसे उपासकोंके भेदसे एकही परमेश्वरमे हिरण्यगर्भ, चतुर्भुज, नीलकंठ और अष्टभुजी आदि आकार कल्पना किये जाते है।

यद्यपि ईश्वरमे चतुर्भुज आदि आकार कल्पित है परन्तु वह ऐसे कल्पित नही है कि जैसे कोई अपनी भ्रान्तिसे आकाशमे पुष्पोंकी कल्पना करै, और ऐसे भी कल्पित नहीं हैं कि जैसे ककार आदि वर्णोंके आकार कल्पित हैं, वह ऐसे कल्पित कियाजाता है कि जैसे स्वच्छ पत्थरमे गौ आदिकी मूर्तिये कल्पित है, वह इस प्रकार कल्पित हैं।

देखिए जरा विचारनेका स्थान है कि एक साफ बडे भारी पत्थरको अब कोई अपने आगे रखता है उस समय उसमें कुछ भी आकार उसको नही दीखता, अब यदि कोई वैज्ञानिक शिष्टजन उसको कहे कि 'इस प्रकारमे' अत्यन्त सुन्दर दो गौ तीन हाथी एक घोडा और सुन्दर २ बेल बूटे विद्यमान हैं तो वह उसका कहना कभी सत्य नही मानेगा, वैसेही समझ कर और भी हजारो आदमी देखै तो वह भी उस पत्थरको सफाही कहेगे, कारण कि उस पत्थरमे कुछ भी चिह्न नहीं दीखता है जब तक उसकी वही दृष्टि बनी है तब तक वह किसीके कहने पर विश्वास नहीं करैगा।

जबतक आप संग तराशीके काममे चतुर नहीं होता वा वैसे चतुरका संग नहीं करता तबतक ही यह दशा है, फिर जब उस कार्यमे चतुर हुआ तो दश बीस अधिक रंगकी तस्वीरे उस पत्थरके भीतरसे स्वय निकाल सकेगा, यदि कम चतुर हुआ तो उस

पत्थरमेसे उक्त मूर्तियोंका तो निकालना दूर रहा, बरन उनका अनुमान होना भी महा कठिन है, तात्पर्य यह है कि उस विद्यामे बिलकुल अज्ञान होनेके कारण एक मूर्तिका भी दर्शन वा आविर्भाव नहीं करसकता ॥

अच्छा अब दूसरा जो उस कार्यमे नियुक्त है, जिसने कई बार अनन्त पत्थरोंमेसे सहस्रों मूर्तिये निकाली है और प्रत्यक्ष साफ पत्थर-मेसे निकाल रहा है उससे पूछा जाय कि आपने उक्त तस्वीरे जो इस पत्थरमेसे प्रगट की है वह कहासे आई।

यदि संगतराश कहै कि हमने अपने हाथसे निकाली है तो हाथसे तो केवल उसके ऊपरका हिस्सा कुछ २ अलग किया है परन्तु मूर्तिये कहासे आई? यहा पर अन्तमे यही कहना पडैगा कि मूर्तिये तो पत्थरके भीतरही वर्त्तमान थी, परन्तु मैने अपने ज्ञान विचारसे उन्हे कुछ प्रगट किया है तो अब उसी कारीगरकी जिह्वासे सिद्ध होगया कि पत्थरके भीतरसेही वर्त्तमान मूर्तिये बुद्धि विचारके बलसे उत्पन्न हुई, लीजिये अब सूक्ष्म दृष्टिसे विचार कर देखिये तो सही कि उन विद्यमान मूर्तियोके प्रगट होनेके प्रथम कारीगरकी मानसिक कल्पना अवश्य थी अर्थात् प्रथम उस पुरुषने उन २ मूर्तियोका चिन्तवन किया तो फिर उनको पत्थरसे निकाला, यदि वह एकाग्र चित्तसे चिन्तवन न करै तो मूर्तिका प्रादुर्भाव होना दुस्साध्य है।

अब यह विचारना चाहिये कि जब कारीगर गौआदि मूर्तिका प्रादुर्भाव करसकता है तो क्या उपासक जिस प्रकारसे चिन्तवन करैगा उसी प्रकारसेही चतुर्भुजी आदि मूर्त्तिके प्रगट होनेमे कोई सन्देह रहेगे? नहीं नही कदापि नही।

अब यहां पर यह भी साबित होगया कि साकारोपासना वेदानुकूल और युक्तिसिद्ध है, परन्तु है सरल, बहुत समय तक साकारो

पासना करके पुरुष निराकारोपासनाका अधिकारी होसकता है, जबतक साकारोपासनामे तत्पर न हो, तबतक निराकारोपासनाका दावा बांधना महा अनर्थका कारण है, परन्तु साकारोपासनाको करते २ अंतिम निराकारोपासनामे प्रवृत्त होना योग्य है इसकारण निराकारोपासनाका वर्णन किया जाता है निराकारमे मनका लगाना योगकी रीतिसे योग्य है, सो शुद्ध और पवित्र होकर स्वच्छ एकान्त स्थानमे स्थिरतासे बैठे फिर सत चित् आनन्द लक्षण वाले अन्तर्यामी सर्वव्यापी परमात्मा की ओर अपने मन इन्द्रिय और आत्माको जोडे, जब धीरे २ यह ध्यान कुछ बढजाय, अर्थात् दूसरे चिन्तवनको छोडकर घडी आधी घडी इसी चिन्तवनमे स्थिर रहने लगे तो स्तुति प्रार्थना समर्पणके मन्त्रोको मनमे पढे और साथही उनके अर्थमे मनको लगावै ॥

इसी चिन्तवनको पतञ्जलमुनि कृत योगशास्त्रके अ० १ पा० १ सू० २ मे योग कहा है 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'

उपासनाके समय चित्तवृत्तिको रोकनेका नाम योग है. इस उपासनाको बढाने और मनको स्थिर करनेके लिये गीतामे दो उपाय कहे है । १ अभ्यास दूसरा वैराग्य ।

जब मन ईश्वरके चिन्तवनको तजके बाह्य विषयोकी ओर जाने लगे तो उसे बलात्कारसे ईश्वरमे लगानेका नाम अभ्यास है ॥

असद्वासना वा स्त्री, पुत्र, धन, धाम, पान, स्थान, मानादि वासनाओको उपासनाके समय मनमे न आने देना वैराग्य है ।

पहले सुने हुए मन्त्रो और नामोको मनसे चिन्तवन करते २ तन, मन, धन ईश्वरमे अर्पित करदेना बस यही उपासना है ।

यदि कोई शङ्का करे कि तन, मन, धनके बिना अर्पण किये क्या उपासना नही होसक्ती है तो अवश्य कहना पडता है कि जब तक असद्वासनाका त्याग और तन, मन, धनसे मोह न दूर किया जाय

तब तक मनुष्य उपासक श्रेणीमे नही गिना जाता, क्योंकि तन अर्पित करनेमे अपने हाथोसे सेवा तथा साधुजनोको नमस्कार करनेमे लज्जा नही आती इस लज्जाके दूरहोनेसे जाति, विद्या, कुल, बल, धर्म, धन, इत्यादि पदार्थोका अभिमान नही प्रवेश करेगा जो अत्यन्त अनर्थका हेतु और मोक्षका प्रतिबन्धक है मन अर्पित करनेसे एक तो धर्मके मार्गमे यदि कोई विपत्ति आजाय तो सहन करी जाती है, और सरा लोकलाज, कुललाज, धर्म मार्गसे पीछे नही हटने देती, धन अर्पित करनेसे एक तो धनमे अत्यन्त प्रीति नही रहती कि जो लोभ और तृष्णाको बढाकर अनेक प्रकारके पापोको प्रगट करदेती है ॥

और दूसरा धर्मके उत्सवो और सामाजिक उत्साहोपर द्रव्य देना कुछ कठिन नही प्रतीत होता, इसमें धर्मकी वृद्धि और धर्मकी वृद्धिसे पुण्यकी प्राप्ति, पुण्यकी प्राप्तिसे अन्तःकरणकी शुद्धि होती है, और वह शुद्धि मोक्षके साधनोमेसे एक मुख्य साधन है, सो इस प्रकारसे प्रत्यक्ष फलोकी ओर मुख्यदृष्टि देकर तन, मन, धन ईश्वरमे अर्पित करके मनुष्य उपासक नामका अधिकारी होसकता है, जब उपासक उपासना करनेको स्थिर चित्त होकर बैठे तब जिस मन्त्र वा जिस नाम का स्मरण करे तब उसी का जप और उसी की भावना करनी चाहिये यथा—

तज्जपस्तदर्थभावनम् ॥ यो० अ० १ पा० १सू० २८

इसी का जप करो और अर्थ विचारो उपासना के समय जप करने और अर्थ के विचारने से ही उपासक उपास्यता को प्राप्त होता है और सम्पूर्ण क्लेशो से छूटजाता है ॥

ततःप्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यंतरायाभावाश्च ॥
यो. अ. १पा. सू.१ २८

परमात्मा की प्राप्ति और उसके अविद्यादि क्लेशो तथा व्याधि-आदिक विघ्नो की निवृत्ति होजाती है, व्याधि आदिक ९ विघ्न उपासना के मार्ग मे शत्रु है ।

व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रांतिदर्शनाल-ब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेन्तरायाः यो० अ० १ पा० १ सू० ३

१ व्याधि [ज्वरादिरोग] २ स्त्यान (सत्कर्मों मे अप्रीति) ३ संशय ४ प्रमाद (समाधि साधने मे प्रीति तो है परन्तु ग्रहण न हो सके) ५ आलस्य ६ अविरति [विषय सेवा मे तृष्णाका होना] ७ भ्रांति दर्शन (उलटा ज्ञान) ८ अलब्ध भूमिकत्व (समाधि का न जुडना) ९ अनवस्थितत्व (समाधि प्राप्त होजाने पर भी उसमे चित्त का स्थिर न होना) यह नौ विघ्न उपासना के मार्ग मे शत्रु है ।

उपासक पुरुषो को सांसारिक लोगो के साथ रहना इस प्रकार लिखा है कि—

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषया-णांभावनातश्चित्तप्रसादनम् यो०अ०१पा०१सू०३३

सर्वसाधारण के साथ मित्रता करना दुखियो पर दया रखना पुण्या-त्माओ के साथ प्रसन्नता पापियो के साथ उपेक्षा रखना अर्थात् न उनके साथ वैर न प्रीति इस रीतिपर उपासक का मन सदा स्थिर और शात रहता है ॥

उपासना के समय प्राणायाम की परमावश्यकता है, बिना प्राणायाम के उपासना का होना दुःसाध्य है, इस कारण प्राणायाम रूपी उपासना का वर्णन करते है भीतर से जब प्राणायाम बाहर को आवे तो उच्चा-रित मन्त्र के साथ कुछ २ उसको बाहर रोकै और जब भीतर जावे तो उसी मन्त्रके साथ कुछ काल तक भीतर रोकै इसको प्राणायाम

कहते हैं, इसरीति के बारम्बार करने से प्राण वश मे होजाता है प्राण वश मे हुआ तो मन स्थिरता को प्राप्त करता है और फिर उसमे आत्मा स्वयं स्थिर होजाता है इन तीनो की स्थिरता हुए अपनी आत्मामे जो अन्तर्यामी परमेश्वर वर्त्तमान है उसके स्वरूप मे मग्न होजाना चाहिये वह परमानन्द का स्थान है ऐसा होजाने पर उपासक कहसकता है कि मै उपासना मे तत्पर हूँ ॥

इस उपासना योग के आठ अंग है कि जिनके ग्रहण करने से अज्ञान की हानि और ज्ञान की वृद्धि होजाती है फिर उसमे मोक्षरूपी सुख की प्राप्ति होती है ॥

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाध-योऽष्टावंगानि । यो० अ० १ पा० २ सूत्र २६ ।

१ यम २ नियम ३ आसन ४ प्राणायाम ५ प्रत्याहार ६ धारणा ७ ध्यान ८ समाधि यह योग के आठ अंग हैं ।

(१) यम पांच प्रकार का है अर्थात् अहिंसा सत्य अस्तेय [चोरी न करना] ब्रह्मचर्य्य और अपरिग्रह ।

(२) नियम यह भी पांच प्रकार का है अर्थात् शौच [पावित्रता] सन्तोष, तप, स्वाध्याय [वेद पढना] और ईश्वर प्रणिधान [परमात्मा मे प्रीति करना]

(३) आसन न ऊँचा हो न नीचा स्थिर शुद्ध आसन होना चाहिए कि जिसमे शीत उष्ण भी बाधा न करे और दृढ होना चाहिए

(४) प्राणायाम सो पहलेही कह चुके है ।

(५) प्रत्याहार मन और इन्द्रियो का जीतना ।

(६) धारणा मन को चञ्चलता से छुडाकर नाभि, हृदय, मस्तक, नासिका और जिह्वा के अग्र भाग आदिक स्थानो से स्थिर करके मन म मन्त्र को जपै और उसके अर्थ को विचारै ॥

(७) ध्यान पूर्वोक्तस्थानो मे व्यापक अन्तर्यामी परमात्मा के आनन्द स्वरूपको पूर्ण देखना ॥

(८) समाधि आत्मा की प्रकाश स्वरूप परमात्मा के आनन्द और ज्ञानसे परिपूर्ण करने को समाधि कहते है ॥

बस पूर्वोक्त रीति से उपासना करता हुआ अविद्या और अधर्माचरण से छूटकर शुद्धज्ञान और धर्म के अनुष्ठान से मुक्तिपद को प्राप्त होता है ॥

मय्यावेश्यमनोयेमांनित्ययुक्ताउपासते। श्रद्धयापरयोपेतास्तेमेयुक्ततमामताः ॥ भ०गी०अ० १२ श्लो०२

श्रीकृष्ण भगवान् अर्जुनसे कहते है कि हे अर्जुन जो मनुष्य सर्वदाही मेरे संयोगी की रक्षा करते है, वह मेरे को अत्यन्त प्रिय जानकर मुझ में अपने मन को लगाये हुए मेरी उपासना करते है अर्थात् सर्व लौकिक और वैदिक कर्म मुझमेही अर्पण करते है वे उत्तम उपासक हैं। फिर भी भगवद्गीता के १२ अध्याय के दूसरे और चौथे श्लोक में कहा है कि–

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यञ्च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥
सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥

जो मनुष्य सम्पूर्ण इन्द्रियो के समुदाय को स्वाधीन करके सबको अभेद दृष्टि से देखने वाले और सम्पूर्ण प्राणियो के हित करने मे निरत होकर जो पुरुष विनाश रहित अनिर्देश्य (अर्थात् देव मनुष्यादि शब्द के निर्देश करने के अयोग्य)अव्यक्त [चक्षु–आदि इन्द्रियो से अग्राह्य] सर्वव्यापक चिन्तवन करने को अशक्य, कूटस्थ [अर्थात् सब

कालमे एकही रूपसे स्थित] निश्चल और सदा एक रस ऐसे मेरे रूप की उपासना करते है वे उपासक भी मुझको प्राप्त होते है, यह भगवान का वाक्य है, इत्यादि वाक्योसे निःसन्देह सिद्ध होगया कि मनुष्यको ईश्वरकी उपासना अवश्य करनी चाहिये। कारण कि प्राचीन उपासको ने यह सिद्धान्त किया है कि मनुष्य के अन्तःकरणमे जो एक विक्षेप दोष है उपासनाके बिना उसका नाश नहीं होता अर्थात् उपासना का फल विक्षेप दोष को नाश करता है । "ईश्वरोपासना" के जितने ग्रन्थ है, सब मे ही उपासना मार्ग दो प्रकार से प्रकाशित है इस कारण यहा भी दो प्रकारकी उपासना कही गई है, परन्तु फिर भी सम्प्रदायो और महर्षियोकी इस बातमे यह सम्मति है कि पुरुषको प्रथम साकारोपासना करनी मुख्य कर्त्तव्य है चिरकालतक साकारोपासनामे मनकी वृत्ति को लगावे तभी निराकारोपासनाका अधिकारी होसकता है ।

जो पुरुष साकारोपासना को पाखण्ड कहकर निराकारोपासना का झण्डा झुला रहा है आशा है कि वह मोह माया कीहवा मे उडा हुआ अवश्य उभयतःभ्रष्टमण्डली का आचार्य बना दिखाई देगा, हे प्रिय-पाठकगण ! यदि तुम्हारा ईश्वर मे सच्चा प्रेम है यदि तुम उस जग-दीश्वर को सच्चे प्रेम से भजते हो तो यह सत्य मानना कि बिना सा-कारोपासना के निराकारोपासना करनेके लिए जो लोग तैयार होते है , वह ऐसे थोथे रहजाते है जैसे "कोई विना बीज के फलको नही पासकता, जैसे वर्णबोध के विना पुस्तक नही पढ सकता है मूर्ख से भी मूर्ख समझसकता है कि पहले अक्षरो का पहचान होगी तब पुस्तक पढने की भी लियाकत होगी जो कहे कि मै वर्णमाला को वाहियात समझता हूँ अक्षरो का सीखना टक्करां मारना है मैं झटपट किताब को पढना चाहता हूँ तो अब जरा कहिए कि उसको क्या कहना चाहिए इसका उत्तर हमारे पाठक स्वयं समझगए होगे अब हमारी अपने पाठकोसे यही प्रार्थना है कि सम्पूर्ण मनुष्यो को ही

साकारोपासना करनी कर्त्तव्य है अर्थात् प्रथम साकारोपासनाही करनी चाहिए क्योंकि वेदादि सच्छास्त्रो द्वारा सर्व सम्मत उपासनाका लक्षण यह किया गया है कि—

"तस्मिन्प्रीतिस्तत्प्रियकार्यसाधनं तदुपासना"

इसका अर्थ यह है कि ईश्वर मे ही प्रीति और उसके प्रिय कार्य करने का नाम उपासना है इस उपासनाके लक्षणसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस सच्चिदानन्द आनन्दघन परमेश्वर मे प्रेम बँधानेके लिए ईश्वर की प्रसन्नता के अर्थ काम करते रहना उस परमात्माको प्रसन्न करनेके काम यही है कि पूजन करना हरिमन्दिरोमे जाना, उत्सवोका देखना ईश्वर के चरित्रोका देखना उसके गुणानुवाद करना ईश्वरके नामार्थ दानोका देना उसके स्वरूपको देखनेके लिए लीलाओ का देखना इत्यादि वार्त्ताओ के देखते २ ईश्वर के सच्चे आनन्दरूप मे लीन होने का ही नाम उपासना है।

विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र.

॥ अवतार ॥

मत्स्यादिभिरवतारैरवतारवतावता सदा वसुधाम्।
परमेश्वरपरिपाल्यो भवताभवतापभीतोऽहम् ॥

इस समय जैसे और विषयो पर अनेक प्रकार के तर्क वितर्क होरहे ह इसी प्रकार अवतार विषय में भी नानाप्रकार के सन्देह उठने लगे है आज हम उन सन्देहो को क्रम से दूर करते हुए अवतार विषय मे कुछ लिखेगे।

ईश्वर के अवतार लेने म प्रथम उसका जन्म होता है वा नहीं इस विषय मे विचार करते है, तो पहले यह विचार कर्त्तव्य है कि जिस प्रकार ईश्वर को अज पढा है इसी प्रकार जीव को भी अज पढा है जैसे—

नजायतेम्रियतेवाविपश्चिन्नायं भूत्वाभवितावानभूयः । अजोनित्यःशाश्वतोयंपुराणो नहन्यतेहन्यमानेशरीरे । कठवल्लीउपनिषद् ० ॥

अर्थात् यह जीव मरता जन्मता नही न हुआ है न होगा, यह अजन्मा शाश्वत पुरातन है शरीर के नष्ट होने मे नष्ट नहीं होता, जब कि जीव भी अजन्मा होकर जगत् मे प्रादुर्भाव तिरोभाव को प्राप्त होता है तब ईश्वर जो सर्व शक्तिमान है उसके आविर्भाव तिरोभाव मे कन दोष आसकता है जो लोग ईश्वर के अवतार मे शंका करते है उनका प्रथम प्रश्न यह है कि सर्व शक्तिमान् ईश्वर को अवतार लेने की क्या आवश्यकता ह ? अब यहा यह देखना चाहिए कि सर्वथा पूर्ण काम सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा का क्या अटका था जो उसने सृष्टि रची और किस आवश्यकता के पराधीन हो उसने इतना जाल रच इसके नियम का भार अपने सिर पर लिया। इस प्रकरण मे जितने ईश्वर वादी है सब आवश्यकता बतलाने के लिए चुप है और यदि बोलते है तो सब मिलके एकही उत्तर देते है कि यह भगवल्लीला है । देखिए सर्व प्रमाण शिरोभूत उपनिषद् में रमणेच्छा अर्थात् लीला ही कही है । बृहदारण्यक चतुर्थ ब्राह्मण श्रुति ३ मे लिखा है ।

सवैनैवरेमे तस्मादेकाकीनरमते सद्वितीयमैच्छत् ॥

अर्थात् वह रमण नही करते थे अकेले रमण न किया, दूसरे की इच्छा की तो जिस पूर्ण काम षडैश्वर्य संपन्न जगदीश्वर ने कोटी २ ब्रह्माण्डों की रचना केवल लीलाके लिए करडाली है उसने यदि उस लीला मात्र के लिए अवतार भी धारण किये हो तो क्या असम्भव है । अतएव पूर्वाचार्य्य भी यही अवतार का कारण स्थिर करते आये है जैसे श्रीमद्भागवत के गर्भ स्तुति म देवताओ ने कहा है ।

नतेभवस्येश भवस्य कारणं विनाविनोदं बततर्कयामहे। भा० स्कं० १० अ० २ श्लोक० ३९ ॥

आपके प्रादुर्भाव का कारण हम लोग विनोद के सिवाय और कुछ नही सोच सकते और—

क्रीडनेनेहदेहभाक्। भा० स्क०१० अ० ४० श्लो०१६।
"यानियानीहरूपाणिक्रीडनार्थं बिभर्षिहि"।

अर्थात् आप जो २ रूप क्रीडा के लिए धारण करते है। इस प्रकार अवतारो मे लीला मूल कारण रहते भी अवतारोंके प्रायः तीन उद्देश्य और भी देखे जाते है (१) दुष्टो को दमन पूर्वक सत्पुरुषो की रक्षा, तथा (२) धर्म की रक्षा पूर्वक जगत् का मङ्गल और (३) सगुण लीला द्वारा उस समयके प्रत्यक्ष उपासक तथा भविष्यत काल के उपासकोका सौकर्य साधन।

परित्राणायसाधूनां विनाशाय चदुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगेयुगे। गीता० अ० ४ श्लो०८
गोविप्रसुरसाधूनां छन्दसामपिचेश्वरः। रक्षामिच्छंस्तनूर्धत्तेधर्मस्यार्थस्यचैवहि। भा० स्कं० ८ अ० २४ श्लो० ५ बिभर्षिरूपाण्यवबोधआत्मा क्षेमायलोकस्य चराचरस्य। सत्त्वोपपन्नानि सुखावहानि सतामभद्राणि मुहुः खलानाम्। भा० स्क० १ अ० २॥

इन सब वचनोसे जीवो का उद्धार करना अवतार का उद्देश्य प्रगट होता है, यो अवतार के समकाल जीवो के उद्धार मे तो समस्त अवतार चरित ही प्रमाण है।

दूसरा प्रश्न यह है सर्व्वव्यापक का अल्प परिमाण में परिच्छिन्न होना कैसे सम्भव है।

(२) ऐसे संशय पर परमात्मा के विषय मे भी ऐसा पूर्व पक्ष करना बहुत ही आश्चर्य्य है। जब उदाहरण स्वरूप आकाश से पञ्च

भूत की उत्पत्ति नहीं और भगवान सर्व सृष्टि कर्त्ता सर्व शक्तिमान हैं और मन वाणी से अगोचर है, जैसे कि–

"जानन्तएवजानन्तुकिंबहूक्त्यानमेप्रभो। मनसोवचसोवाचोवैभवतवगोचरः" भा० स्क० १० अ० १४ श्लो० ३८ "यतोवाचोनिवर्त्तन्तेअप्राप्यमनसासह" इत्यादि-

श्रुति भी प्रसिद्ध है, तब उन पूर्ण पुरुषोत्तम के विषय में यह प्रश्न कैसे होसकता है। और यो तो आकाश काल आदि मे व्यापकत्व सहचरित चेतनत्वाभाव देखके कदाचित् ईश्वर मे चेतनत्वाभाव का भी अनुमान कोई कर डाले। परन्तु यह सब निरर्थक है। क्योंकि जब परमात्मा सर्व शक्तिमान और जगत् विलक्षण है तो आकाशादि पदार्थ की समान उनका स्वभाव नहीं समझा जासकता वास्तव में तो सर्वव्यापक सच्चिदानन्द परमात्मा कहीं अपने आकार को प्रगट कर देते हैं। और सर्व व्यापकही रहते हैं और एक देश मे आकार रहता है इसमे बाधक क्या है?

अवतार रूप में प्रधान आकार एक देशमे रहतेभी भगवान ने अन्यत्र अपने अनेक रूप दिखलाए हैं जैसे अक्रूर को जलमे दिव्य रूप दिखलाया (भा० स्कं० १० अ० ३९) गोपियो को रासलीला में अनेक रूप दिखलाए(भा० स्कं० १० अ० ३३ श्लोक ३ और२०) और ब्रह्मा को नाना प्रकारके भिन्न २ आकार तथा रूप दिखलाए (भा० स्क० १० अ० १३) फलितार्थ यह हुआ कि आकार मात्र अवच्छिन्न होते है कुछ ब्रह्म का अवच्छिन्नत्व नहीं होता किन्तु परब्रह्म परमात्मा सर्वव्यापक ही है। कभी एक स्थानमे एक दिव्याकार प्रगट करते हैं कभी अनेक दिव्याकार प्रगट करते हैं कभी उस दिव्याकार को भी अंतर्हित करते हैं (भा० स्क० १० अ० ३०)

अन्तर्हितेभगवतिसहसैवव्रजांगनाः।
अतप्यंस्तमचक्षाणाःकरिण्यइवयूथपम्॥

और कभी फिर प्रगट करते है (भा० स्कं० १० अ० ३२)

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः ।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ॥

और यजुर्वेद सहिता अ० १६ मन्त्र ३० मे लिखा है–

नमोह्रस्वायचवामनायच नमोबृहतेचवर्षीयसे च ।

इत्यादि प्रमाणो से जब कि परमात्मामे ह्रस्वत्व भी सिद्ध ही है तो विवाद क्या ?।

(३) तीसरा प्रश्न यह है कि अलौकिक लीला विशिष्ट परमेश्वर को मानवलीला शोभित नही ।

१–परमेश्वर को मानवलीला का अशोभित होना ही इस प्रश्न तथा संशय का मूल है सो पहिले इसको तो निर्णय किया जाय कि परमेश्वर को कौन सी लीला सजती है और कौनसी नहीं । परमेश्वर के लिए यह कौनसी अच्छी बात है कि बार बार सृष्टि करैं और बार २ प्रलय करै । पूर्ण काम के लिये सृष्टि लीलाही किस युक्ति से सजती है ? और सृष्टि लीला सजी तो लीलान्तर्गत दूसरी अवतार लीला क्यों नही सजती ? इससे यह सिद्ध हुआ कि जब परमात्मा लीलाही करने लगे तो उनको सब लीलाही शोभित है, इस कारण मनुष्य लीला भी ईश्वर के अवतारो के विरोध मे नहीं है ।

२–जो सर्वशक्तिमान है उनको मानवलीला धारण की शक्ति है और इस लिए भगवान् क्रीडा करनेके अर्थ उसी शक्तिका उद्भव करैं तो आश्चर्य क्या है ?

३–भगवान् का यह स्वभाव ही है कि जो सच्चे प्रेम से जेसी उपासना करते है उनके लिए वैसाही रूप धारण करके उनका उद्धार करना जैसा कि मण्डल० ब्रा० और गी० मे लिखा है–

यथा यथोपासते तदेव भवति तद्धेनान्भूत्वा भवति ।
ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ॥

इत्यादि, तो जिन नन्द यशोदा वसुदेव देवकी आदि ने तपकर यही वर मागा था कि आप हमारे पुत्र हो, उसी के अनुसार आपको मानवरूप लेना पडा है, और उस स्वरूपादि की प्रकृति के अनुसार और २ लीला भी हैं।

इसी स्थानमे यह भी समझने की बात है कि अवतार लीला के प्रयोजक तीन है १ प्रार्थना २ प्रकृति और ३ इच्छा ।

प्रार्थनानुसार जैसे नन्दादि की प्रार्थना के अनुसार आपने अवतार ग्रहण किया, और गोपी आदि की जन्म जन्मान्तर की प्रार्थनानुसार अनेक लीला करी । और ऋतुग्रामादि की प्रकृति के अनुसार भी विविध लीला करी तथा केवल जगत् के उद्धार की इच्छा से भी विविध लीला करी, अर्थात् कोई लीला भक्तो की प्रार्थनानुसार और कोई अपनी प्रकृतिके अनुसार होती है । जिस समय चारो ओर जलही जल भरा है वह प्रकृति किरीट कुण्डलादि सुशोभित रूप नही चाहती किन्तु मत्स्यरूप ही उसके अनुकूल है । जब जल मे निमग्न मन्दर को धारण करना है तब कठिन पृष्ठवाला कच्छपावतार ही प्रकृतिके अनुसार है, कीचडमे घुसकर पृथ्वी निकालने के लिये शूकरावतारही प्रकृति के अनुकूल है । इस प्रकार प्रकृतिआदि के अनुकूल भगवान को पशुलीला पर्यन्त शोभित होती है, फिर मानवलीला मे क्या सन्देह है ? यह भी जानना अवश्य है कि भगवदवतार की लीला लौकिक और अलौकिक भाव से भारी होती है । अलौकिक भाव अद्भुत रससे भरा होता है और अलौकिक भाव के प्रगट होने से देखने सुननेवालो के हृदय मे अवतार स्वरूप का साक्षात् ईश्वर होना जम जाता है । फिर जब भगवान् लौकिक लीला का प्रादुर्भाव करते है तब कुछ ईश्वरभाव की प्रभा रहते लौकिक भाव मिलने से एक

अपूर्व माधुर्य्य होता है । उलूखल बन्धन मुख मे त्रिलोकी दर्शन आदिक आनन्द वही लोग जानते है जो अधिकारी हैं । इन लीलाओं का माधुर्य्य लोकोपकारार्थ होजाता है क्योंकि सुनते कहते लोग करते है जैसा कि भा० स्क० १० अ० २ श्लो० ३७ मे लिखा है ।

शृण्वन् गृणन् संस्मरयंश्च चिन्तयन् नामानि रूपाणि च मङ्गलानि ते ॥ क्रियासु यस्त्वच्चरणारविन्दयो- राविष्टचित्तो न भवाय कल्पते ।

और इससे निर्लेप सच्चिदानन्द की कोई हानि नही है जैसा कि भा० स्कं ८ अ० २४ श्लोक ६ । मे लिखा है कि-

उच्चावचेषु भूतेषु चरन् वायुरिवेश्वरः ।
नोच्चावचत्वं भजते निर्गुणत्वाद्धियोगुणैः ॥

इस रीति से अधिक माधुर्य्य संपादक मनुष्य लीला परमेश्वर को सदा शोभित है ।

(४) प्रश्न यह है, कि अवतारो मे जीव से अधिक प्रताप क्या है ?

१ यदि बिचार के देखो तो जीवो से बहुत ही विलक्षणता अव- तारो मे है । पहिले तो प्रगटता के समयही से अद्भुत रस उमग उठता है जैसे श्रीकृष्णचन्द्र ने जन्म समयही मे किरीट कुंडलादि से भूषित चतुर्भुजी मूर्ति दिखाई । जैसा कि भा० स्कं० १० अ० ३ मे लिखा है--

तमद्भुत बालकमंबुजेक्षणं चतुर्भुजं शंखगदाद्युदायु- धम्॥श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं पीतांबरं सांद्रप- योदसौभगम् ॥

महार्हवैदूर्यकिरीटकुण्डलत्विषा परिष्वक्तसहस्रकुन्तलम् । उद्दामकाञ्च्यङ्गदकंकणादिभिर्विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत ॥

इत्यादि । और फिर प्रायः ऐसा कोईभी अवतार नही है जिसकी आदिसे अन्त तक सब लीलाओंका अद्भुत रस न हो । जैसे मत्स्यका बढना, कच्छका मन्दर धारण, वाराहका पृथ्वीका उद्धार, नृसिह का स्तम्भसे प्रगट होना, वामनका बढना इत्यादि । और श्रीकृष्णावतार तो अद्भुत लीलाओ का भाण्डारही है ।

और दूसरे चित्ताकर्षण रूप माधुर्य्य की पराकाष्ठा अवतारो मे परम विलक्षण है । यह बात जीवो में होही नही सकती कि जहा खडे हो वहां के तिर्यक् पर्य्यन्त चेतन तथा जड लता वृक्षांकुरादि परवश से ही स्तम्भित हो जायें । और साक्षात् होतेही सब के अन्तःकरण तद्रूप हो जाय । यह अपूर्व माधुर्य्य और वशीकरण आकर्षण केवल प्रभु ही मे है । श्री० भा० स्कं० १० अ० २१ देखो ॥

(५) प्रश्न यह है कि पूर्णावतार और अंशावतार मे क्या भेद है ?

वास्तव मे तो ब्रह्मता की दृष्टि मे सभी पूर्णावतार हैं, परन्तु जो अवतार एकही उद्देश्य से हुआ और एकही अथवा थोडेही उद्देश्यो का साधन कर तिरोहित हुआ वह मत्स्य कच्छपादि रूपवाला अंशावतार कहलाता है और जो अवतार अनेकानेक उद्देश्यो से हुआ है तथा असंख्यात नाना लीला कर अन्तर्हित होता है वह पूर्णावतार कहलाता है जैसे रामावतार कृष्णावतार ।

श्रीकृष्णावतार मे तो चारोओर से पूर्णता बरसी पडती है । इधर बाललीला पूर्ण, कौमार पूर्ण, वीरता पूर्ण, दयापूर्ण योंही अद्भुत शृंगारादि रसो की भी पूर्णता भगवान् के पूर्णावतार होने को प्रगट करती है । विरुद्ध धर्माश्रयत्व भी परब्रह्म का स्वभाव है ऐसा शुद्धाद्वैत का सिद्धान्त है, और अलौकिकता के कारण विरुद्ध धर्माश्रयत्व ही

होसकता है यह सभी भक्तिकाण्डवालो का आग्रह सिद्धान्त है सोही श्रुति सम्मत भी है जैसे कि श्रुति—

"अणोरणीयान्महतोमहीयान्" ।
"नमोह्रस्वायच वामनायचबृहतेच "
"नमोज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च"।"तदेजतितन्नैजति"

इत्यादि । विरुद्ध धर्म भी कृष्णावतार मे भगवान् ने पद २ मे दिखलाये है । जैसे अशक्ति और अंग की कोमलता इतनी कि बच्चे की पूछ पकडते तो बच्चा खेच लेजाते। शक्तिमत्ता इतनी कि गोवर्द्धन धारण किया शैशवता इतनी कि अपनी क्रीडा मे समस्त ब्रज को फसाया । और प्रमाणिकता इतनी कि केवल अपने उपदेश के बल से इन्द्र पूजा फेर के गोवर्द्धन पूजा करादी । एक समय ऐसे हलके कि यशोदा खिला रही हैं और एक समय ऐसे भारी कि तृणावर्त्त को भी लेपडे । और ब्रह्मा को उसी क्षण एकत्व तथा अनेकत्व भी अपने स्वरूपही मे दिखलाया और द्विभुजत्व तथा चतुर्भुजत्व दिखलाया इत्यादि विरुद्ध धर्म्माश्रयत्व परब्रह्महीं के चिह्न है सो श्रीकृष्ण की पूर्णता के सूचक है ॥

'एकोऽहं बहुस्यां प्रजायेय' यह ब्रह्म की इच्छा है और भगवान् ने भी रास मे ब्रह्मा के आगे, तथा श्रीद्वारका रनवास मे एक से अनेक होना दिखलाया । यह भी पूर्णता के सूचक है । परमात्मा अपनी इच्छा से अपनेही मे प्रपञ्च का प्रादुर्भाव करते है यह ब्रह्म की पूर्ण शक्ति है सो भगवान् कृष्ण ने भी दो बार तो यशोदा को मुखारविन्द मे त्रिभुवन दिखाया था ॥

(६) प्रश्न यह है कि अवतारो के शरीर पांचभौतिक है अथवा अलौकिक ?

अवतारो के लीला प्रकरण देखने से पाचभौतिक की अपेक्षा अपांचभौतिक अलौकिक धर्म्मही अधिक मिलते है। जैसे कृष्णावतार के जन्म

के समय चतुर्भुज रूप से दर्शन देना पुनः द्विभुज होना, इच्छामात्र से सब को निद्रित करना, पूतना तृणावर्त्तादि वध, कालीयमर्दन गोवर्द्धनोद्धारण, रास मे तथा ब्रह्मा के सन्मुख नानारूप धारण, अन्तर्धान प्राकट्यादि, कुवलयापीड नाशन, प्रजा सहित मथुरा वासियो का द्वारका मे प्राप्त करना, अर्जुन को विश्वरूप दर्शन इत्यादि सहस्रशः ऐसे अलौकिक धर्म मिलते है, तो अब निष्पक्षपात होके परीक्षा करनी चाहिये कि यह दोनो प्रकार के धर्म्म पाचभौतिक मे सम्भव है कि अलौकिक दिव्य मे। पांचभौतिक पाषाण वनस्पति आदि पदार्थों मे तो जो गुण नियत है सो है वोह न बढते है न घटते हैं? इन पदार्थों मे नियत गुण युक्तत्वही एक प्रकार का लौकिकत्व है।और एकपाषाण खण्ड भी यदि गुरुत्व श्यामत्व कठोरत्वादि यावत् पाचभौतिक गुण विशिष्ट हो परन्तु देखते २ अन्तर्हित होजाय फिर नानारूप से प्रगट हो फिर सूक्ष्म बृहत् आदि नाना आकार धारण करे फिर ज्यो का त्यो होजाय तो पूर्वोक्त लौकिक गुण रहते भी वह अलौकिकही माना जायगा अर्थात् लौकिक धर्म अलौकिक धर्म के बाधक नही होते किन्तु एकभी अलौकिक धर्म हो तो अलौकिकता का बाधक होजाता है अलौकिक धर्म का लौकिक धर्म बाधक होना ऐसा पामर लोगो में प्रसिद्ध है।कि कोई मरा हुआ पुरुष फिर कही देखपडे तो उसका रङ्गरूप आकार स्वभाव बोल चाल सब पूर्ववत् हो तो भी दग्ध होने के पश्चात् फिर आना यह एकही ऐसा प्रबल अलौकिक धर्म माना जाता है कि उसको प्रेत भूत देव कह बैठते हैं। यह नही विचारते कि नाना धर्म तो वेही पूर्ववाले है एक नया हुआ तो क्या। अर्थात् लौकिकत्व का बाधक अलौकिकत्व है। सो कृष्णावतार में लौकिक धर्म रहतेभी अलौकिकता के प्रधान होनेसे उन दोनोंका अलौकिकत्व ही सिद्ध होता है। कतिपय लौकिक धर्म भी दिखलाना उस अलौकिकता का भूषण ही दूषण नही। फिर लौकिकता पूर्वपक्षी ने जैसी समझी है वैसी नही है जैसा श्री० भा०

स्कं० १० 'ततोजगन्मङ्गलमच्युतांशम्' इस श्लोक मे स्पष्टही कहा है कि मनस्तःदधार' अर्थात् जैसे और स्त्रिये उदर मे गर्भ धारण करती है वैसे देवकी ने धारण नही किया किन्तु देवकी ने मन मे धारण किया ऐसेही जन्म समय मे भी श्रीशुकाचार्य्य ने स्पष्ट कहा है कि 'आविरासीद्' अर्थात् भगवान् प्रकट हुए। इसी से जाना जाता है कि भगवान् ने और बालकों की तरह जन्म नही लिया किन्तु जैसे खम्भेसे प्रगट हो नृसिहावतार धारण किया वैसेही कौशल्या और देवकी के गर्भ से प्रकट हो राम कृष्णावतार धारण किये। और गौर होना, श्याम होना, बडे होना यों सबही धर्म न होते तो अवतारही क्या हुआ तब तो निर्गुण स्वरूपही रहा सो भेद यही है कि परब्रह्म महानारायण पुरुषोत्तम की तो यह महिमा है कि अपनी अव्याहत शक्ति स्वरूप इच्छा से सृष्टि स्थिति संहाररूप लीला करते रहते है और वही भगवान् वैकुण्ठनाथ तथा शेषशायी स्वरूप से भक्तो का उद्धार तथा जगत् का पालन करते हैं इनका मानव लीलापर आग्रह नही है किन्तु दिव्य विभूति तथा दिव्य लीला मे विराजमान रहते है और अवतार तो प्रधानतः मृत्युलोक में मानव लीला के अनुकरण मे ही है। सो कौमार पौगण्डादि वयोभेद से रूप भेद दिखलाना और हर्ष शोकादि तथा युद्धो मे रुधिर क्षतादि दिखलाना मानव लीला है ऐसेही क्षुधा पिपासा निद्रा आलस्य क्रोधादि भी मानवलीला के ही अङ्ग है। प्रभु जब चाहते हैं तभी अपने दिव्य शरीर को अदिव्य पाच भौतिकवत् दिखलाते है यह उन लौकिक शरीरो की अधिक अलौकिकता है।

[७] प्रश्न यह है कि ईश्वर अवतार लेते हैं इसमे प्रमाण क्या ?

प्रतद्विष्णु स्तवते वीर्य्येण मृगोनभीमः कुचरोगिरिष्ठाः।
यस्योरुषुत्रिषुविक्रमणेष्वधिक्षयन्तिभुवनानिविश्वा॥
ऋ० मं० १ अ० २१ सू० १५४ मं० २

मृगवत् नृसिंह रूपधारी परमेश्वर अपने पराक्रम से स्तुति को प्राप्त होता है, पृथ्वी मे विचरता है नृसिंहादि रूप से और कैलास मे शिवरूप से निवास करता हुआ त्रिविक्रम अवतार मे तीन पद न्यास से चतुर्दश भुवनो को कम्पायमान करता है।

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् समूढमस्य पांसुरे

ऋ० मं० ३ प्र० १ अ० मं० ९।

अमरेश त्रिविक्रमावतारी वामन जी इस विश्व को उल्लंघन करते है तीन पग धरते है एक भूमि दूसरा अन्तरिक्ष तीसरा स्वर्ग मे इन के चरण मे चतुर्दश भुवन ब्रह्माण्ड सम्यक् अन्तर्भूत होते है॥

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमारो उतवाकुमारी।
त्वंजीर्णो दंडेन वंचसि त्वंजातो भवतिविश्वतोमुखः॥

अथर्व कां० १० अ० ४ मं० २७

हे भगवन्! आपही भारती भवानी श्रीरूप वा मोहिनी रूप अवतारोसे स्त्री रूप है तथा परशुरामादि अवतारो से पुमान् है वामन अवतार से कुमार है वा सनत्कुमारादि रूप से, और वैष्णवी दुर्गादि रूप से कुमारी है और आपही वृद्ध ब्राह्मण रूप होकर दण्ड करके (वञ्चसि) गमन करते हो आपही कृष्णावतार मे विश्वरूप होके प्रतीत होते हो॥

इस मन्त्र मे सबही इतिहास पुराण प्रतिपाद्य अवतारो की सूचना की है इस कारण यह मन्त्रही सबका मूल है। अब रामावतार को सुनिये।

भद्रोभद्रयासचमानआगात्स्वसारंजारोअभ्येतिपश्चात्
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्नशद्भिर्वर्णैरभिराममस्थात्॥

सामवेदे उत्तरार्चिके १९ अ० २ खं० १ सू० ३

भद्र राम भद्रा सीताजी के साथ प्रगट हुए तब जार रावण ने ऋषियो के रुधिर से उत्पन्न होने के कारण अपनी भामिनी की स-

मान जानकी को हरण किया पीछे अन्तकाल में क्रोध से प्रज्वलित रावण ने सन्मुख होकर कुम्भकरण आदि के जीवात्माओं के साथ श्रीरामजीकी सामीप्यता को पाया ॥

हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोतावेदिषदतिथिर्दुरोणसत् नृषद्वरसदृतसत् व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् यजु॰ अ॰ १० मं॰ २४

वह भगवान् (हंसः) अहङ्कार हारी [शुचिषत्] आदित्य रूप से दीप्ति मे रहने वाले [वसु] मनुष्यों के प्रवर्त्तक [अन्तरिक्षसत्] वायु रूप से आकाश मे रहने वाले [होता] देवताओं के आह्वान करने वाले (वेदिषत्) अग्नि रूप से वेदिमे बैठने वाले (अतिथिः) अतिथि रूप से सब के पूजनीय (दुरोणसत्) आहवनीय से यज्ञ मे बैठने वाले (नृषत्) रामकृष्ण वा प्राण रूप से मनुष्यों मे होने वाले (वरसत्) उत्कृष्ट स्थान क्षेत्रादि मे बैठने वाले (ऋतसत्) यज्ञ वा सत्य मे स्थित होने वाले (व्योमसत्) मण्डल रूप से आकाश मे स्थित होने वाले (अब्जः) मत्स्यादि रूप से जल मे होने वाले (गोजः) पृथ्वी मे चतुर्विध भूत ग्राम रूप से होने वाले (ऋतजः) सत्य मे होने वाले (अद्रिजः) पाषाण मे मूर्त्ति और अग्निरूप से होने वाले वा मेघ जल रूपसे होनेवाले (बृहत्) महान् परब्रह्म हो ॥

इस एकही मन्त्र मे अवतार और मूर्ति मे भगवदाराधन सब कुछ सिद्ध होता है, तथा और भी बहुत से मन्त्र है जिनमे राम कृष्णादि के चरित्र स्पष्ट विदित होते है विस्तार के भय से केवल थोडेही लिखेहै।

इस विषय मे हम अपने पाठकोको एक दृष्टांत भी सुनाते है—

एक राजा ने अपने मन्त्री से यह प्रश्न किया कि ईश्वर स्वयं अवतार क्यो लेता है? भक्तो के कार्य के निमित्त दूसरे देवताओं को आज्ञा देदेनी चाहिये उनके द्वाराही कार्य्य होजायगा। मन्त्री ने कहा

इसका उत्तर मै कुछ दिनो मे दूँगा, राजा ने कहा अच्छी बात है, तब मन्त्री ने राजा के छोटे पुत्र की सूरत समान एक मोम की मूर्ति बनवाई, और राजकुमार को कुछदेर पहल राजा ने जो पोशाक पहरे देखा था, वही पोशाक उस मोम के बालक को पहराकर धाय से कहा कि जिस समय हम और राजा दोनो नावपर जल विहार करने को बैठे, उस समय तुम इस बालक को लाना । ठीक उसी समय पर जब कि सरोवर मे राजा और मन्त्री नाव मे बैठे विहार कररहे थे धाय उस कृत्रिम बालक को लेकर आई।राजा ने मन्त्री से कहा हमारे पुत्रको लेलो मन्त्री ने नाव किनारे करके धाय के बालक को लेलिया, और चतुराई से राजा को देते समय उसको जल मे छोडदिया । ज्योही बालक जल मे गिरा कि राजा साथमेही उसको निकालने को कूदे । तब साथ मे मल्लाह भी कूदे, और राजा तथा बालक दोनो को निकाला । तब राजा कृत्रिम बालक को देखकर लज्जित और क्रोधित होकर मन्त्री से बोले कि यह क्या ? तब मन्त्री ने कहा महाराजा ! इतने मल्लाह पैरैये आदिकों के होते भी आप स्वयं क्यों कूदपडे।राजा ने कहा पुत्र स्नेह के कारण मे किसी को पुकार न सका स्वयंही कूदपडा । तब मन्त्री ने कहा इसी प्रकार ईश्वर भी भक्तो के स्नेह के कारण स्वयही आता है उसे और से कहने का अवकाश कहा ? यह उसी प्रश्न का उत्तर है जो आप ने पूँछा था कि ईश्वर स्वयं अवतार क्यो लेता है राजा यह सुनकर मौन हुए । अब इस विषय मे हम अधिक लिखना नही चाहते कारण कि बुद्धिमान् को इशाराही काफी है ॥

विद्यावारिधि प० ज्वालाप्रसाद मिश्र ।

॥ मूर्ति पूजा ॥

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात् पीताम्बरादरुणबिम्ब-फलाधरोष्ठात् ॥ पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात् कृष्णात्परं किमपितत्त्वमहं न जाने ॥

इस समय भारतवर्ष मे एक बडी कठिन समस्या उठ खडी हुई है जहा देखो वहा इस बात की चर्चा रहती है कि प्रतीक उपासना नहीं है निराकार का प्रतीक मे पूजन नही होसकता आजतक ईसाई मुसलमानादि कई एक विधर्मियो के इस धर्मपर इसी विषय के आक्रमण होते रहते थे यद्यपि मुसलमान भी मक्के मे संग अस्वतको बोसा देते ईसाई रोमन कैथलिक ईसाकी मूर्त्ति पूजते दूसरे सलीव का चिह्न लगाते बाइबिल चूमते ग्रन्थो के आगे शिर नवाते इत्यादि सब कुछ करके भी वैदिक धर्मावलम्बियो को प्रतीक उपासना मे कटाक्ष करके पुकारते थे पश्चिम की ओर मुख करके ही निमाज पढना क्या एकदेशी उपासना नही है ? । अस्तु इन बातो से कुछ भी हमारी हानि नही थी, कारण कि जिनका हमारा व्यौहार देश धर्म एक नही उन की बातो से हमारी कुछ भी क्षति नही थी, परन्तु अब थोडे समय से एक दयानन्दी पन्थ चला है उसकी भी यही घोषणा है कि प्रतिमा मे भगवत् का अर्चन वैदिक सिद्धान्त नहीं है कारण कि ईश्वर का कोई आकार नही है यद्यपि उपासना विना आकार के नही होसक्ती है, यह सिद्धान्त है, कारण कि वेदान्त दर्शन मे लिखा है कि(ब्रह्मदृष्टिरुत्कर्षात्, व्या०सू०) अर्थात् प्रतीक मे ब्रह्मदृष्टि करनी, बिना इसके उपासक किसके समीप होकर उपासना करै,और सम्पूर्ण यह मूर्त्तिमान जगत् अमूर्त्त को किस प्रकार जानसक्ता है कारण कि वह मन वाणी का विषय नहीं है, यदि केवल हम यह कहे कि वह सर्वथा निराकार है अनीह है तो इस निराकार से साकार जगत् किस प्रकार हुआ है कारण कि जो सर्वथा कुछ नहीं है उससे कभी कुछ नही होता है परन्तु ईश्वर ऐसा नहीं वह तो—

अणोरणीयान् महतोमहीयान् उपनि० । नमो ह्रस्वाय च वामनाय च । यजु०

अर्थात् अणु और महान् से महान् है उस बडे छोटे के निमित्त नमस्कार है और दूसरे उपनिषद् भी कहते हैं कि द्वावेव ईश्वरस्य

रूपे मूर्त्तश्चामूर्तश्चेति ईश्वर के मूर्त्त अमूर्त दो रूप है और उपासना मे (सपर्य्यगात्) के मन्त्र मे उसको अकाय कहकर भी वेद स्वयम्भू कहता है तथा दूसरे स्थान मे भी वेदही कहता है कि-

प्रजापतिश्चरतिगर्भेऽन्तरजायमानोबहुधाविजायतेयजुः

अर्थात प्रजापति गर्भ के अन्तर विचरण करता हुआ अजायमान होकर भी अनेक प्रकार से प्रगट होता है, और अवतार प्रकरण मे उसके अनेक अवतार प्रतिपादन करचुके है, तो इस समय जो प्रतिमा निर्माण की जाती है वह सगुणब्रह्म की है उपासना के फल प्रदान को ही वह स्वयम्भू है, और संसारी पुरुषो से विलक्षण रूप होकर वह दिव्य-शरीर से प्रगट हो भक्तिरसको पूर्ण करता और उपासको की परलोक गति सुधारता है । ध्यान रहे ! कोई निराकार वस्तु विना साकार हुए कार्य नही करसकती जैसे अग्नि काष्ठादि सब स्थानो मे व्याप्त भी है परन्तु विना प्रकट हुए जलाने को समर्थ नही है, जगत् मे वेद मर्य्यादा स्थापन को प्रभु ने प्रकट होकर अनेक लीला करी, भक्तजन उसी अवतार की प्रतिमा को बनाकर भक्तिभाव से अर्चन करते है पत्थरकी पूजा कोई सनातनधर्मी नही करता यदि पत्थरकी पूजा करता तो पत्थर की स्तुति भी करता कि, हे पत्थर ! पहाड से तुम आये कारीगर ने तुमको गढा है, इत्यादि परन्तु हम लोग तो मूर्ति मे उस को "नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये" आदि स्तोत्र पाठकर ईश्वर का अर्चन करते है, मूर्ति कभी बनाये से नही बनती तोडे से नही टूटती, वह नित्य सिद्ध है । एक छोटे पत्थर के खण्ड मे कारीगर क्या नही निकाल लेता ? सभी कुछ निकालसक्ता है परन्तु जो आवरण मूर्ति को घेरे हुए है केवल उनको ही अलग करता है मूर्ति पर तो हाथ भी नही लगाता और यदि कहो कि मूर्ति तोडी जाती है, टूटजाओ उसके खण्डित होनेसे उपास्य देव तो नही टूटता, हम दूसरी आकृति से उपासना करेंगे कारण कि वह सर्वव्यापक है यदि कहो माता पिता

चैतन्यादिमे क्यो नही पूजते तो इन चैतन्य शरीरोमे ईश्वरके सिवाय कामक्रोधादि भी व्याप्त है और मूर्ति मे तो केवल ब्रह्म ही व्याप्त है, इस कारण यह निर्विकार उपासना है, जैसे क, ख, ए, बी, सी, डी, अलिफ बे, ते, से इत्यादि जो शब्द हमने एक आकार मे कर लिए है तब कोई कहै कि असली क बतावो तो क्या कोई बता सक्ता है कभी नही और (क) ऐसा लिखनेसे क्या कभी कोई विद्वान् यो कहेगा कि कागज के ऊपर स्याही का कुछ चीत मकोडा है कभी नही बल्कि देखतेही कह उठेगा कि 'क' अब कहिये कल्पित अक्षरोसे लिखी हुई चिट्ठी मनका सब भाव प्रगट करसकती है या नही जब करसकती है तो ब्रह्म जो सर्वव्यापक है उसकी मूर्ति मे उपासना क्या न हमारे मनोरथ पूरा करेगी, जैसे विद्वान्को वह अक्षर 'क' दीखता है इसी प्रकार भक्त उपासक को मूर्ति ब्रह्म रूप दीखती है जैसे मूर्ख को अक्षर चीत मकोडा दीखता है इसी प्रकार अज्ञानियो को पत्थर दीखता है, निराकार कहतेहुए आज कल के असभ्य पाखण्डी निन्दा मे रत रहते है और साकार उपासक मंदिर के दर्शन करते ही 'जयराम-नारायण' आदि नाम उच्चारण करते और वहा ईश्वर की विशेष सन्निधि आदि मानकर दुष्कर्म से बचते है । तथा अवतारादि की प्रतिमा देखकर उनके चरित्र स्मरण कर गद्गद होजाते है, जो भगवदाराधन मूर्ति मे नही करते उनसे पूछो कि तुम अपने मा बाप का फोटो देखकर क्यो उनका स्मरण करते हो और क्यो आपके नेत्र आसुओ से डबडबा जाते है, साफ कहना चाहिए कि वह कागज और स्याही है तथा दयानन्द सरस्वती जो एक साधारण पंडित हुआ है उसकी तसबीर समाजी क्यो बॅटवाते है क्यो नही उसे कागज और स्याही समझते। पर यह तो सब कुछ किया परन्तु जहा कहीं ईश्वर का अर्चन आवे वहा शिर हिला उठे धन्य है नाम उच्चारण भी तो वाणीका विषय है ॐकार भी एक प्रकारसे लिखा जाता है और उससे ॐकार

ही का बोध होता है, अब यह तो युक्तिसंगत होगया कि मूर्तिसे ईश्वरही का बोध है, अब यह देखना है कि वेदमें कहीं ईश्वर को सावयव मानकर स्तुति की है वा नहीं तथा उसको प्रतिमारूप लिखा है वा नहीं तब प्रथम ऋग्वेद—

कासीत् प्रमा प्रतिमा किं निदानं नमाज्यकिमासीत्परिधिः। कआसीच्छन्दः किमासीत प्रउगंकिमुक्थंयद्देवा-देवादेवमयजन्तविश्वे। ऋ० अ० ८ अ० ७ मं० १८०

सबकी यथार्थ ज्ञानबुद्धि कौन है और प्रतिमामूर्ति कौन है और जगत् का कारण कौन है और घृत के समान सार जानने योग्य कौन है और सब दुःखोंका निवृत्ति कारक और आनंद युक्त प्रीतिका मारापारिधि [सीमा] कौन है और इस जगत् का पृष्ठावरण कौन और स्वतन्त्र वस्तु और स्तुति करने योग्य कौन है यहांतक तो इसमे प्रश्न है, अन्तमे सबका उत्तर इसमें है कि जिस परमेश्वर मूर्त्ति को इन्द्रादिकोने पूजा की है पूजते है और पूजेंगे वोह परमेश्वर प्रतिमारूप से जगत् मे स्थित है और वोही सार-भूत घृतवत् स्तुति करने के योग्य है तो अब कोई नही कहसकता कि मूर्तिपूजन वेद मे नही है क्योंकि यह ऋग्वेद का मन्त्रही कहता है कि वोह प्रतिमारूप है बस यही अर्थ है कि उस परमेश्वरकी समान कोई नही है और देखो—

अरंदासो नमीढुषेकराण्यहं देवायभूर्णयेऽनागः। अचेतयदचितोदेवोऽअर्य्यो गृत्सरायेकवितरोजुनाति

ऋ० मं० ७ अनु० ५ सूक्त० ८६ मं० ७

मन्त्रार्थः—अनागा अहं भूर्णये मीढुषे देवाय अरं कराणि दासो न दासइव निषिद्धाचरण वर्जित मे दासवत् देव के अर्थ अलंकार करता हूं (भूर्णयेमीढुषे) वो देव बहुतसी धन की वृद्धि करनेवाले हैं जैसे

स्वामी का सेवक स्रक् चन्दन वस्त्रादि से अलङ्कार करता है तद्वत् मैभी बहुत धन देनेवाले देव को अलङ्कार करता हूँ इस मन्त्र मे दास की उपमा अहं शब्दार्थ करता को दीगई है और दास शब्द से परे नकार है तिससे उपमार्थ मेंहै इस मन्त्र मे देव को अलङ्कार करना लिखा है. और विना समीप हुए अलङ्कार नहीं होसकता समीपस्थ होना उपासना से युक्त है और निराकार मे अलङ्कारादि करना असम्भव है,इससे प्रतिमारूप आधार मे ही देव परमात्मा के अलङ्कारादि है और उपासना भी तभी होसकती है [प्रश्न] इस मन्त्र मे तो आचार्यादि देवता मानकर उनका अलङ्कार कहा है कुछ प्रतिमा मे अलङ्कार नहीं कहा (उत्तर) इसका उत्तर यह श्रुतिही देती है (अचेत यदचितो देवो अर्य्य) स्वामी देव अचेतनो को चेतन करता है अपने जीव रूप से प्रवेश करके (रायेगृत्सं कवितरो जुनाति) इस प्रकार धन की प्राप्ति के अर्थ प्राण के भी प्राणरूप देव को अत्यन्त बुद्धिमान् [जुनाति] आश्रय करता है इस मन्त्र मे प्रतिमा मे परमेश्वर पूजन की काम्य कर्मता प्रतीत होती है। इन वेद के प्रमाणो से यह सिद्ध हुआ कि वह शृङ्गार कियाजाता और जगत् की प्रतिमा है, शतपथ मे भी लिखा है कि–

अथैतदात्मनः प्रतिमामसृजद्यज्ञम्। श० प० ११।१।८।३ ॥ यज्ञो वै विष्णुः इति श्रुतेः ।

उसने अपनी प्रतिमा प्रगट की जिसको यज्ञ कहते है(सहस्रस्य प्रतिमासि यजु०) हे ईश्वर ! आप सहस्रो की प्रतिमा हो तथा "याते रुद्र शिवातनुः यजु०" और "बाहुभ्यामुततेनमः" हे रुद्र ! जो आपका कल्याणकारी शरीर है तथा आपकी भुजाओ को प्रणाम है, रुद्राध्याय मे और भी अनेक मन्त्र ऐसे है जो शिव का पूजन करते है (बिल्मिने गिरिशन्त) इन दो पदो से बेलपत्र के धारण करने वाले पर्वत पर शयन करने वाले यह स्पष्ट ही है, इत्यादि इन्हीं

प्रमाणो से मूर्ति मे भगवत् की आराधना स्पष्ट है परन्तु और भी कहते है पाणिनि का सूत्र है 'जीविकार्थे चापण्ये' ॥ ५ । ३ । ९९ कनो लुक् स्यात्, अर्थात् जो प्रतिमा जीविका के निमित्त हो पुजारियो की जीविका जिससे चलती हो और वह बेची न जाय वहा कन् प्रत्यय का लोप हो इस पर भाष्यकार ने शिव स्कन्धः आदि उदाहरण दिये हैं इस मे स्पष्ट है कि शिवके कहने से शिव की पूजनीय मूर्ति होगई, यही बात यहा भी लगती है। 'नमः शिवाय च शिवतराय च' यजु० पूजनीय शिव के निमित्त प्रणाम है जब कि उसकी प्रतिमा है उसने अपनी प्रतिमा प्रगट की इत्यादिक प्रमाण विद्यमान है तब फिर किसी प्रकार भी मूर्त्ति में आराधन अनुचित नही । इस समय प्रसग अज्ञाता एक मन्त्र उच्चारण करते फिरते है जिस मे वह कहते है कि प्रतिमा पूजन का निषेध है-

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाममहद्यशः । यजुः ।

उसकी प्रतिमा नही जिसका नाम बडे यशवाला है, इस मन्त्र मे प्रतिमा शब्द का अर्थ मूर्त्ति का नही है कारण कि ऊपर से ईश्वर की अनन्तता का प्रसंग चला आता है यहां उपासना का प्रकरणही नही है यदि उपासना प्रकरण मे आता तो कथञ्चित् मूर्त्तिका अर्थ आभी जाता पर उपासना मे तो अग्नि सूर्यादि भी उसीको लिखा है जैसे (तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः) अग्नि आदित्य वायु चन्द्रमा वही है फिर प्रतिमा मे क्या रहा यहा तो उसका यह अर्थ है कि उसका उपमान कोई नही प्रतिमा मे अर्चन का निषेध नहीं है कारण कि इसी मन्त्र मे आगे 'हिरण्यगर्भइत्येषः' ऐसा पाठ है अर्थात् वह हिरण्यगर्भ, जब हिरण्यगर्भ ब्रह्मारूप वही है, फिर आकार मे सन्देह क्या है ? इस से इस मन्त्र से निषेध नही आता यदि प्रतिमा का निषेध होगा तो 'ब्राह्मणोस्य मुखमासीत्' और 'सम्वत्सरस्य प्रतिमासि' ।

और ब्राह्मण वाक्य शब्द मे विरोध आवेगा इससे वहा अर्थ उपमान का है कारण कि उपासना का प्रसङ्ग नही है यदि प्रतिमा का अर्थ यहां मूर्त्ति का करोगे तो यह निषेध किस प्रकार का है क्या उसकी प्रतिमा थी जिसका ईश्वर ने निषेध किया इससे यहां उपमान का अर्थ है । उसको धूप, दीप, चन्दन, पुष्प चढाय हम अपने हृदय का भाव प्रगट करते है जैसे अभी महारानी की जुबली मे सर्वत्र रोशनी की गई जिले के हाकिम महारानी के स्थान मे सत्कृत किए गए नजरे दिखाई गई महारानी को इसमे से किसी बातकी भी आवश्यकता नही थी कारण कि सब उसी का है, परन्तु अपनी भक्ति दिखाने को सब ने भेटादि दे अपने हृदय का उत्साह पूर्ण किया इसी प्रकार हरिपूजन मे हम सब अपने हृदय का भाव प्रगट करते है वही स्वरूप हृदय मे प्राप्त होकर पाप दूर करता है यह बहुतही संक्षेप से लिखा है इतिहास पुराण मे तो उपासना की कमी नही है और (तमितिहासश्च पुराणञ्च इति अथर्व०) अथर्व वेद में भी इतिहास और पुराण का प्रमाण मिलता है तब भगवत की पूजा वेदविहित होने मे सन्देह नहीं विशेष विस्तार दयानन्द तिमिरभास्कर में देखना चाहिए वाल्मीकि मे लिखा है कि—

एतत्तु दृश्यते तीर्थं सागरस्य महात्मनः ।
सेतुबंध इति ख्यातं त्रैलोक्यन च पूजितम् ॥
एतत्पवित्रं परमं महापातकनाशनम् ।
अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः ॥

अर्थात् हे जानकी ! महात्मा सागर का यह सेतुबन्ध तीर्थ दीखता है जो त्रिलोकी मे पूजित होगा, यह परम पवित्र और महा पाप दूर करने वाला है पूर्व काल में इसी तीर्थ पर [मेरे स्थापन करने से] विभु महादेवजी ने मुझपर कृपा की थी। आगे उत्तरकाण्ड में भी लिखा है कि—

यत्रयत्र स याति स्म रावणो राक्षसेश्वरः ।
जाम्बूनदमयं लिङ्गं तत्रतत्रस्म नीयते ॥ १ ॥
वालुकावेदिमध्ये तु तल्लिङ्गं स्थाप्य रावणः ।
अर्चयामास गन्धैश्च पुष्पैश्चामृतगन्धिभिः॥२॥

अर्थात् रावण राक्षसेश्वर जहा जहां जाता था वहां वहां जाम्बूनद-मय लिङ्ग साथ जाता था ॥ १ ॥ रावण उस लिङ्ग को बालूकी वेदी के मध्य में स्थापन करके अमृत गन्धवाले पुष्पोंसे पूजन करता था॥२॥ इत्यादि बहुत स्थानों मे मूर्ति पूजन विद्यमान है, केवल दिग्दर्शन मात्र यहा लिखदिया है ॥

विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र.

॥ श्राद्ध ॥

ज्ञातंकाणभुजं मतंपरिचितैवान्वीक्षिकीशिक्षिता
मीमांसाविदितैव सांख्यसरणिर्योगे वितीर्णामतिः॥
वेदान्तः परिशीलितः सरभसं किन्तुस्फुरन्माधुरी
धाराकाचननन्दसूनुमुरलीमच्चित्तमाकर्षति ॥ १ ॥

जब तक इस भारतवर्ष मे वैदिक कर्मकाण्ड का यथावत् प्रचार था तबतक किसी प्रकार की वैदिक कर्म में शङ्का नही थी, पर जब से वह क्रियायें छूटगई तब से भिन्न २ प्रकार के सन्देह होनेलगे, उनमें से आजकल एक यह भी प्रश्न उठनेलगा है कि श्राद्ध कर्म वैदिक है या अवैदिक और वह किस कर्म का नाम है, और पितरों के उद्देश्य से जो किया जाता है तो वह जीतों के निमित्त किया जाता है या मरों के निमित्त किया जाता है और किस प्रकार पहुँचता है आज इन्हीं कितनी एक बातों की मीमांसा करनी है जिस समय हम श्राद्ध को

विचारने बैठ तो पहले हमको यही सोचना चाहिये कि श्राद्ध का उद्देश्य क्या है ? तो यही कहना होगा कि ' श्रद्धयाक्रियतेतच्छ्राद्धम् ' अर्थात् पितरो के उद्देश्य से जो श्रद्धापूर्वक कियाजाय उस को श्राद्ध कहते है जब पितरो के उद्देश्य से करने का नाम श्राद्ध है तब यह वैदिक कर्म है या नही इसका निर्णय करते है ॥

मातृदेवोभव पितृदेवोभव आचार्यदेवोभव तै० ॥
देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम् तैत्तिरी ० ॥

अर्थात् माता पिता आचार्य की उपासना करनी चाहिये देवता और पितृ कर्म मे प्रमाद नहीं करना चाहिये ।

कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेनवा । पयोमूलफलैर्वापि पितृभ्यः प्रीतिमावहन् ॥ मनु ० अ ० ३ श्लो ० ८२
एकमप्याशयेद्विप्रंपित्रर्थे पांचयज्ञिके ॥

पितरो से प्रीति चाहने वाला तिल यव इन करके और पय मूल फल जल इससे श्राद्ध करै, पितर के अर्थ एक ब्राह्मण को भोजन करावै ।

आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः । यजुः १९ । ५८

अग्नि कर्म को प्राप्त हुए हमारे पितर देवयान मार्गसे आवे । यजुर्वेद ।

इन मन्त्रो से यह स्पष्ट प्रतीत होगया कि पितृ कर्म वैदिक है इसी के विस्तार मे और भी बहुत से मन्त्र है । अब इस बात का विचार करना चाहिये कि यह जीतो के निमित्त है वा मरे के । इसमें नीचे लिखे वेद के मन्त्र प्रमाण दिए जाते है ।

येसमानाःसमनसःपितरोयमराज्येतेषांलोकःस्वधानमो यज्ञोदेवेषुकल्पताम् । अ० १९ मं० ४५

जो सपिण्ड मनस्वी पितर यमलोक में हैं स्वधा नामक अन्न उनके दृष्टिगोचर हो पितृयज्ञ वसु रुद्र आदित्य देवताओं में वास करो ।

येसमानाःसमनसोजीवाजीवेषुमामकाः ।
तेषांश्रीर्मयिकल्पतामस्मिंल्लोकेशतंसमाः ॥ ४६ ॥

जो प्राणियों के मध्य समदर्शी मनस्वी हमारे सपिण्ड पितर हैं उनकी धन सम्पत्ति सौ वर्ष तक हमारे पास निवास करो ॥ ४६ ॥

द्वेसृतीअश्रृणवम्पितॄणामहन्देवानामुतमर्त्यानाम् । ताभ्यामिदंविश्वमेजत्समेतियदन्तरापितरम्मातरञ्च॥४७॥
प्रजापतिर्ऋषिःत्रिष्टुपछन्दःदेवयानपितृयानमार्गौदेवते

मैंने मनुष्यों देवताओं और पितरों के दो मार्ग को सुना जो कि स्वर्ग और पृथिवी के मध्य वर्त्तमान हैं यह क्रियावान विश्व उन देवयान पितृयान मार्गों से जाता है उन मार्गों के लिये श्रेष्ठ होम हो ॥४७॥

उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः । असुंयईयुरवृकाऋतज्ञास्तेनोऽवन्तु पितरोहवेषु ऋ० मं० १० अ० १ सू० १५ मं ० १ ।

जो पितर अवर अर्थात् पृथ्वी में स्थित हैं वे ऊपर गमन करो और जो स्वर्ग लोकमे स्थित हैं वे प्रच्युति रहित होवैं, अथवा अधिकार की क्षणिता से मुक्त होवैं और जो॰ मध्यस्थान मे स्थित हैं वे उत्तम लोक का आश्रय करैं, वे पितर सौम्य हैं, अर्थात् कर्म्ममें अंगभाव को प्राप्त होकर सोमको संपादन करते हैं और स्थूल शरीर को त्यागकर प्राणमात्र मूर्तिवाले हैं (अवृकः) अर्थात् शत्रुभाव रहित यथावत् सत्य वा यज्ञ के ज्ञाता हैं वे पितर आवाहन स्थान में आगमन करो, माध्यमिक यम है इस कारण पितरों को माध्यमिक ही मानते हैं क्योंकि यमराज मध्यस्थान में स्थित हैं और तदनुवर्ती पितर भी मध्यस्थान में स्थित हैं, यम को पितृराज्य होने में नीचे लिखा मन्त्र प्रमाण है:-

वैवस्वतंसंगमनं जनानां यमं राजानं हविषादुवस्य
ऋ० मं० १० अ० १ सू० १४ मं० १

प्राणीमात्र का यम के प्रति गमन होता है तिस यमराज को हवि से परिचरण कर।

ये अग्निष्वात्ता ये अनग्निष्वात्ता मध्येदिवःस्वधया मादयन्ते। तेभ्यःस्वराडसुनीतिमेतां यथावशन्तन्वं कल्पयाति ॥यजु० अ० १९ मं० ६०

जो पितर अग्नि से दग्ध हुए और्ध्वदेहिक कर्म को प्राप्त है और जो पितर अग्नि मे दग्ध नही हुए अर्थात् श्मशान कर्म को प्राप्त नहीं किया और स्वर्ग मे अपने कर्मोपार्जित अन्न से तृप्त रहते हैं जिस कारण ईश्वर उन पितरो के लिए इच्छानुसार इस प्राणयुक्त शरीर को देता है ॥ ६० ॥

पुनन्तुमापितरः सोम्यासः पुनन्तुमापितामहाःपुनन्तु प्रपितामहाः पवित्रेणशतायुषापुनन्तु मापितामहाःपुनन्तु प्रपितामहाः पवित्रेणशतायुषा विश्वकर्मायुर्व्यश्नवै। य० अ० १९ मं० ३७

सोम के योग्य पितर पूर्णायु के दाता पवित्रता से मुझको शुद्ध करो पितामह मुझ को पवित्र करो, प्रपितामह पवित्र करो, पितामह पूर्णायु के दाता पवित्रतासे मुझको शुद्ध करो, प्रपितामह शुद्ध करो, पूर्ण आयु को प्राप्त करूं।

येनिखातायेपरीप्तायेदग्धाये चोद्धृताः।
सर्वांस्तानग्न आवहपितॄन्हविषेअत्तवे । अथर्वकां० १८। २ मं० ३४

हे अग्ने ! जो पितर गाडे गये जो पडे रहे जो अग्निसे जलाये गये जो उद्धृत (फेके गये) हैं उन सबको हवि भक्षण करने को सम्यक् प्रकार से लेजा ।

यास्तेधानाअनुकिरामितिलमिश्राः स्वधावतीः । तास्तेसन्तुविभ्वीः प्रभ्वीस्तास्तेयमोराजानुमन्यताम् ॥ अ० कां० १८ अ० ३ मं० ६९ ॥

जो मैं तिलामिश्रित धान यह जल सहित देता हूँ वह इस मृतक को सुख कारक हो और राजा यम इसको माने ।

अब यह बात तो ठीक होगई कि मृतको के निमित्त जो काम किया जाय उसका नाम श्राद्ध है, अब यह विचार है कि वे पितर किस २ स्थान मे स्थित है तब यही निर्णय वेद के अनुसार करते है ।

अथ त्रयो यावल्लोका मनुष्यलोकः पितृलोको देवलोक इति श० १४ । ३ । २४

तीन भोग भूमियें हैं मनुष्यलोक, पितृलोक, देवलोक इनमे जीव कर्म्म के अनुसार प्राप्त होता है । और केवल निषिद्ध कर्म्म का कर्त्ता जीव नरक को ही प्राप्त होता है । (विधूर्ध्वभागे पितरो वसन्ति सिद्धान्तशिरोमणौ) अर्थात् चन्द्रमा के ऊर्ध्वभाग मे पितरो का निवास है जब कि यह वार्त्ता स्फुट हुई तो सन्देह नहीं रहा, किन्तु और भी प्रमाण लिखते हैं ।

स्वधा पितृभ्यः पृथिवीषद्भ्यःस्वधापितृभ्योन्तरिक्षषद्भ्यःस्वधापितृभ्योदिविषद्भ्यः । अथर्व० ॥

इन प्रमाणो से पृथिवी अन्तरिक्ष और स्वर्गलोक मे भी पितरो की स्थिति लिखी है, अब यह विचार करना चाहिए कि पितरों को हमारा दिया पहुँचता है या नहीं, या सब कोई अपना दियाही प्राप्त करते हैं और पहुंचता है तो कैसे (श० १४ । ७ । २ । ७) मे लिखा

है कि (यत्कर्म कुरुते तदभिसम्पद्यते) जो यह पुरुष कर्म्म करता है उससे अपूर्व उत्पन्न होरता है और वह अपूर्वही कर्त्ता को फल प्राप्त कराता है और उस अपूर्व के साथही यह जीव परलोक को गमन करता है और सायं प्रातः जो हवन मे आहुति दीजाती हैं उनका सूक्ष्म भूत परिणाम अन्तःकरण मे हर्ष उत्पन्न करता है, और सूक्ष्मभूत मात्राओ से सूक्ष्मरूप होकर अदृष्ट फल के हेतु फल पर्य्यंत अवस्थायी रहता है और यह अपने फलके साथ जीव का सम्बन्ध करनेवाला होता है। यथाः—

तेवाएत आहुती हुते उत्क्रामतस्तेअन्तरिक्षमाविशतस्ते अन्तरिक्षमेवाहवनीयं कुर्वातइत्यादि० श०११।६।२।६।

मरण समय मे इस प्राणी की तीन गति होती है, देवलोक, पितृलोक, अधोलोक उस मे पितृलोक का गमन कहते है कि—

अथयेयज्ञेनदानेन तपसालोकजयन्तितेधूममभिसम्भवन्ति धूमाद्रात्रिंरात्रेरपक्षीयमाणपक्षमपरपक्षान्यान्षण्मासान्दक्षिणादित्यएतिमासेभ्यः पितृलोकमित्यादि० श० ।

यज्ञ दानादि कर्म्म करनेवाले धूप से रात्रि मे कृष्णपक्ष उससे दक्षिणायन और वहां से पितृलोक को गमन करते हैं, और जो सत्कर्म्म नही वे कीटादि योनि को प्राप्त होते है, इससे यह सिद्ध हुआ कि जो मनुष्य कर्म करता है उससे कोई अदृष्ट उत्पन्न होता है जो परलोक मे साथ जाता है, अब यह देखना है कि और प्राप्त करसकता है वा नही। तो इसका यही उत्तर है कि अवश्य मिलता है जैसे बन्धन में पडे हुए के निमित्त उसके कुटुम्बी उसके मुक्त करने का उपाय कर उसे छुडाते हैं इसी प्रकार पुत्र पिता को परलोकके दुःखसे छुटाता है, पुत्र के पिता के निमित्त किए कर्म का अदृष्टही परलोक मे प्राप्त होता है। सा० ब्रा० मे लिखा है कि—

अङ्गादङ्गात् सम्भवसि हृदयादधि जायसे ।
आत्मासि पुत्रमाभृथाः सजीव शरदां शतम् ॥

अर्थात् हे पुत्र तू मेरे अंग २ और हृदय से उत्पन्न होता है, आत्मा रूप है, सौ वर्ष जी ।

पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः । यजुः ॥
मानो वधीः पितरम् मातरम् । ऋ० ॥

दादा परदादा मुझे पवित्र करें, हे ईश्वर हमारे पिता माता को मत मार इत्यादि प्रमाण से एक की प्रार्थना दूसरे को लाभ पहुँचाती है, और ऊपर की श्रुति से पुत्र पिता का रूपही है और उस पुत्ररूप धन का जो द्रव्य है वह भी उसीका है इससे जो कुछ क्रिया करता है, वह पिता के उद्देश्य होने से उसी को प्राप्त होती है, इसी प्रकार पोता पुत्रका रूप है यह तीन पीढी का विशेष संबन्ध होने से इनका भाग पितरो को विशेष प्राप्त होता है जैसे चंपा के फूलो का पात्र चंपा के फूल चले जाने पर भी सुगँधित रहता ह इसी प्रकार जीव के निर्गत होजाने पर भी यत्किंचित् संबन्ध शेष रहता हे पंचाग्नि विद्या के द्वारा जैसे जीव की गति उर्ध्वगामी होकर चन्द्रलोक मेघ सूर्य्य की किरण भूमि मे होती है और उसका पुण्यरूप अदृष्ट उसके साथ रहता है, वही उसे ऊपर नीचे भ्रमाता है और जो उसी का संबन्ध आत्मारूप पुत्र उसके निमित्त कुछ करता है उसका पुण्य अदृष्ट रूप से पितर को प्राप्त होता है, कारण कि वह उसी का धन है और जो अपने हाथो के किए कर्म से नीचे गिरता है वह बेटे पोते परपोते के छः हाथो के किए सुकृत से निरन्तर पितरलोकमे सुख भोगता है जैसे मनुष्यलोक मे मानवी शक्ति है ऐसेही देव और पितरलोक मे उनकी पृथक् शक्ति है वह भाग होने से अनेक रूप धारण कर सकते हैं, आत्मा ही इनका रथ आदि होता है बुलाने पर

प्राप्त होते हैं जिस प्रकार शहद की मक्खी पुष्प मे से मधु लेजाती है और पुष्प मे कोई विकार नही आता इसी प्रकार ब्राह्मणो के निमित्त जो दिया हुआ अन्न है उसका सार भाग दिव्य पितर लेजाते है बहुत क्या शुद्धिवालो को दर्शन भी होता है, भीष्मजी को पिता के हाथ का और जानकी महारानी को मुनियोंके मध्यमे राजा दशरथ का दर्शन हुआ था, पिण्डदान जो किया जाता है वही मानो पितरो के आकर्षण पूजन का प्लानचेट है, यदि कहीं किसीका जन्मभी हुआ है तो दिव्य पितर उसको यथार्थ रूप से जानते है वह पितरो के उद्देश्य से दिया हुआ दिव्य पितरो के समीप उपस्थित होता है अपनी सर्वज्ञता से उस पुण्य के फल को उस जीव के निमित्त प्राप्त करते हैं और वह जीव को सुख देने के निमित्त प्राप्त होता है इसी कारण अथर्व वेद मे तीन स्थान भूमि अन्तरिक्ष और दिव्य इन तीन लोको मे पितरो का निवास कहकर तीनो स्थान मे अन्न को स्वधा रूप लिखा है, उस फल से दिव्यलोक के पितर दीर्घकाल तक निवास करे, अन्तरिक्ष के ऊर्ध्वलोकको जांय और भूमि के सुख पावे इसमें वेदही प्रमाण है कारण कि परोक्षका ज्ञान वेदसे होता है जिस प्रकार दिया हुआ तार वहीं रहता है और खटका उस स्थान के तारघर मे पहुँचता है जहा को तार दियाजाय वहांसे भेजा द्रव्य कोई चपरासी वहा पहुँचाता है जहां पानेवाला स्थित है इसी प्रकार वैदिक धर्मका तार सब लोको मे प्राप्त है वह शब्दात्मक संकल्प होतेही उसका फल पितृलोक म उपस्थित है कागज की भाति यह अन्नादि यहीं है पर फल वहा उपस्थित होजाता है उस फल को उस जीवके निमित्त दिव्य पितर प्रदान करते है प्रथम तो शास्त्र की विधि के अनुसार जिसका आर्ध्वदैहिक कर्म हुआ है उसकी कभी दुर्गति नहीं होती, दशगात्र क्रिया से उसका शरीर सम्पादन होता है और यदि दैवात् किसी के अतिशय कुत्सित कर्म हुए तौ भी वह यदि कहीं कुत्सित योनि मे जन्म पावे तथापि उसको

अनेक प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं, एक पशु दिन भर दुःख पाता और एक सौ प्रकार से सुखो से पूर्ण है, इत्यादि, परन्तु वेदकी आज्ञा से जो दिया जाता है, हवन किया जाता है, वह सब पितरो को प्राप्त होता है, यदि कोई कहे ब्राह्मणो को जिमाये हुए अन्न का कौनसा भाग प्राप्त होता है तो यही उत्तर है कि हमारे यहा तो पुण्य का फल प्राप्त होता है, पर तुम जो किसी भूखे को खिलाते हो इसमे तुमको कौनसा भाग प्राप्त होता है इत्यादि अब श्राद्ध विधायक वेद मन्त्र लिखे जाते है ॥

यौतेश्वानौ यमरक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ । ताभ्यामेनंपरिधेहिराजन्त्स्वस्तिचास्माअनमीवंचधेहि।

ऋ० मं० १० अ० १सू० १५ मं० ११

हे राजा यम ! जो तुम्हारे दोनो कुत्ते है उनको इस प्रेत की रक्षा करने को भेजो वे श्वान कैसे है कि यमराज के ग्रह के रक्षक है चार आक्षियो से युक्त है मार्ग के रक्षा करने वाले है मनुष्य जिनकी बड़ाई करते है सो इन कुत्ता को भाग देते है इस प्रेत का कल्याण और रोगाभाव संपादन करो ।

येचेहपितरो येचनेह यांश्चविद्मयां उचन प्रविद्म । त्वंवेत्थयतितेजातवेदः स्वधाभिर्यज्ञं सुकृतं जुषस्व ॥

यजुः अ० १९ मं ६७

(च) और (ये) जो (पितरः) पितर (इह) इस लोक मे देह को धारण करके वर्त्तमान है (चये)और जो (इह) इस लोक मे (न) नही है अर्थात् स्वर्ग में हैं (चये) और (यान्) जिन पितरो को [विद्म] हम जानते है[च] और [यान्] जिन पितरों को (न)नही (प्रविद्म) जानते है स्मरण न होने से [जातवेदः] हे सर्वज्ञअग्ने ! (ते) ते वे पितर [यति] जितने है (त्वम्)तुम (उ) ही (वेत्थ)उनको जानते

हो (स्वधाभिः) पितरों के अन्नोंसे [सुकृतं] शुभ यज्ञ को (जुषस्व) सेवन कर ६७१ यहा इह शब्द से जीते पितरो का ग्रहण नहीं होता किंतु जिन्हो ने कर्म वश इस लोक म देह धारण किया है अन्यथ न अविद्म इसका शब्दार्थ नहीं घट सक्ता विद्म का अर्थ यह ह कि जिनको मै अपना पितर जानता हूँ परन्तु कहा हैं यह नहीं जानता हूँ अथवा जिनको जानता हूँ बाप दादे परदादे जिनको नहीं जानता इक्कीस पीढी तक यह तात्पर्य है।

यमाय सोमः पवते यमाय क्रियते हविः।
यमंह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः।अथ।०१८।२।१

यमके अर्थ सोम कियाजाता यम के वास्ते हवि किया जाता और मंत्रद्वारा अग्नि दूत ही यज्ञ से यम के प्रति हवि लेजाता है।

इत्यादि प्रमाणो से सिद्ध है कि श्राद्ध मृतक पितरो का होता है और उनके निमित्त ब्राह्मणादि को सत्कार पूर्वक दिया जाता है यह दक्षिण मुख से किया जाता है वेद कार्य्य से भिन्न है, यह संक्षेप से कहा है बुद्धिमान इस का विस्तार कर सकते है॥

विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र.

॥ पातिव्रत धर्म्म ॥

दोर्भ्यांदोर्भ्यां व्रजन्तं व्रजसदनजनाह्वानतः प्रोल्लसन्तं।
मन्दं मन्दं हसन्तं मधु मधुरवचो मेति मेति ब्रुवन्तम्॥
गोपालीपाणिपालीतरलितवलयध्वानमुग्धान्तरालं।
वन्दे तं देवमिन्दीवरविमलदलश्यामलं नन्दबालम्१

प्यारे सभासद् बृन्द! यह श्रेष्ठ जाति जिस प्रकार अनेक सद्गुणो और सुन्दर धर्मों से परिपूर्ण है, इसी प्रकार इस जाति मे स्त्रियो को पातिव्रत धर्मका पालन करना ही सर्वोत्तम धर्म है, पति परायण

पति की सेवा मे दक्ष पति की इच्छानुसार कार्य करने वाली धर्मनिष्ठ लक्षो महिलाओ की कीर्ति से आज तक भारतवर्ष की प्रजा सम्पूर्ण देशो मे जगमगारही है, पतिव्रतपालन वह धर्म है कि स्त्री को इसके अतिरिक्त दूसरा कर्तव्यही नही है, देवता ब्रह्मा, विष्णु, महादेव जो कुछ है स्त्री के निमित्त सब पतिही है, पति की सेवाही देवाराधनाहै, जिस स्त्री पर स्वामी प्रसन्न है, मानो उसपर सबदेवता प्रसन्न है तपस्विनी अरुन्धती पतिव्रत धर्मके कारणही, सप्तऋषि मण्डल मे महर्षि वासिष्ठ के समीप वर्त्तमान है, अब तक विवाह के मध्य में उन श्रेष्ठ अरुन्धती का दर्शन कराया जाता है पतिव्रता स्त्री का अलौकिक प्रभाव होता है, चन्द्र, सूर्यही क्या सम्पूर्ण ब्रह्मांड के धारण म पतिव्रता समर्थ होती है, भारत मे लिखा है कि एक महर्षि तपकरते थे, उनके ऊपर चिड़ियाने बीट करदी, ज्योंही उन्होने क्रोधकर उसकी ओर को देखा कि वह वैसेही जलकर भस्म होगई, तब यह अपने मनमे विचारने लगे कि अब हम प्रसिद्ध होगए, ऐसा विचार तपसे बिरत हो विचरते हुए एक नगर मे आये और किसी गृहस्थी के द्वारपर कुछ याचना की. ज्योंही वह स्त्री भिक्षा लेकर आई कि वैसेही उसके स्वामी ने उसको पुकारा जिससे वह बीच में से ही लौट गई और स्वामी के कार्यसे निवृत्त होकर पश्चात् वहां आई तब यह उससे पूछने लगे कि हे अबले ! तू किस कारण से लौट गई, उस स्त्री ने उत्तर दिया कि महाराज ! स्वामी का कार्य करने चली गई थी तब यह ऋषि क्रोध कर बोले कि अतिथि का इतना निरादर किया ? तब वह इनकी क्रोध भरी दृष्टि को देख कर बोली कि महाराज मै बन की चिडिया नहीं हूँ जो दर्शन मात्र से ही भय भीत हो जाऊं, महर्षि बडे आश्चर्य मे हुए और उस से पूछने लगे कि तुमको यह ज्ञान कहा से प्राप्त हुआ, इस पर वह स्त्री कहने लगी कि यह सब पति के चरणकमल सेवन का ही प्रताप है मै स्वामी की सेवाही परम धर्म जानती

हूँ इस प्रकार कहकर उस स्त्री ने उस ब्राह्मण को बहुत सा धर्म सिखाया, पातिव्रत धर्म के पालन से ही स्त्री सर्वोत्तम गुणो को प्राप्त होती है अधिक क्या भूत, भविष्य, वर्तमान का ज्ञान पति रक्षा कल्याण कुटुम्ब सन्तानादिकी प्राप्ति यह सब इस एकही धर्म से होती है अनुशासन पर्व के १२३ अध्याय मे कथा आती है कि सुमना नामक केकय राजाकी पुत्री ने देवलोक मे सर्वज्ञा शाण्डिलीसे पूछा कि तुम किस पुण्य चारित्र और आचरण से इस लोक मे आई हो और किस पुण्यके प्रभावसे तुमने सम्पूर्ण ऐश्वर्य पाया है इसपर शाण्डिलीने कहा था कि मै गेरुआ वस्त्र धारण करने वाली नहीं हूँ, मैने शिर मुडाने वा जटा धारण करनेसे स्वर्गलोक नही पाया है, परन्तु मैने सावधान रहकर कभी भी अपने पतिसे कठोर बचन नही कहा है, देवता पितर ब्राह्मणोकी पूजामे सावधान रहकर अप्रमत्त चित्तसे सास श्वशुरकी सेवा की थी, कभी किसी की चुगली न ही की, घरसे बाहर कभी निवास नही किया, न बहुत समय तक किसी के साथ वार्ताही की, किसी असत् कर्म अथवा हास्य कार्यसे आहित गुप्त प्रगट किसी बातके जाननेमे भी मै व्यग्र नही हुई, कार्यको बाहर जाकर जब हमारे स्वामी घर आते तब उन्हे बैठाय सावधान हो उनकी पूजा करती थी हमारे पति जिस अन्नको उत्तम नही जानते वा जिससे प्रसन्न न होते ऐसी भोज्य वस्तुओ को त्याग करती थी, कुटुम्ब के निमित्त जो वस्तु लाई जाती थी तथा जो कुछ घरका काम काज था प्रातःकाल ही उसको करलेती थी तथा दूसरे से कराती थी, किसी कार्यसे यदि मेरे पति परदेश जाते थे तब उस समय मै मङ्गलसूत्र धारण व्रतसे रहती थी, पतिके बिदेश जाने पर उत्तम व्यञ्जन माला धारण महावरकी रचना उबटन श्रृङ्गारादि नही करती थी पतिके सुखसे शयन करने पर मैं दूसरे कार्य रहने पर भी उन्हैं छोड उठकर नही जाती थी, उनसेही मेरा मन सन्तुष्ट रहता था, कुटुम्बके कार्यके निमित्त स्वामी को सदा क्लेश नही देती थी, छिपाने योग्य बातों को

सर्वदा छिपाकर प्रसन्न रहती थी, जो स्त्री सावधान होकर इस धर्म पद्धति का पालन करती है वह स्त्रियोंके बीच अरुन्धती की समान सदा स्वर्ग में निवास करती है ।

हा, ऐसे २ रत्न उपदेश और आख्यान रहते भी आज नये २ समाजोमे इस पतिव्रत धर्मका मार्ग नष्ट किया जारहा है, एक २ स्त्रीके ग्यारह २ पति सुनाकर भारतको रसातलमे पहुँचाने का प्रयत्न किया जाता है यही कारण है कि अकाल मृत्यु आदि के कठिन उपद्रवो ने भारतवर्ष को सब ओर से घेर लिया है इस कुलटाचार से कितन पाप का प्रचार होगा, इस को विचारवान्ही जान सकते है, अथर्ववेद पुकार कर कहता है कि—

इयं नारीपतिलोकम्वृणाना धर्मपुराणमनुपालयंती ।

पुराना धर्म पतिव्रत के पालन करने से ही यह स्त्री पतिलोक मे गमन करती है, पतिव्रताओ की महिमासे अब तक भारत का शिर ऊँचा होरहा है, आज भी उनके समय का ही इतिहास है कि एक समय एक स्त्री अपने पति की सेवा मे तत्पर थी, पति उसकी जंघा पर शिर धरकर सोगए थे उस समय उसका छोटा लडका खेलता २ अग्निहोत्र के प्रज्वलित कुण्ड मे जा पडा स्त्री पति की निद्रा भग होजाने के भयसे बालकको उठाने न गई परन्तु अग्निमे क्या सामर्थ्य थी कि जो पतिव्रताके पुत्रको भस्म करती ! उसी समय चन्दनकी समान शीतल होगई, राजाकी समस्या देने पर पंडित प्रवर कालीदास ने इस की समस्या इस प्रकार पढी थी ।

सुतंपतन्तंप्रसमीक्ष्यपावके न बोधयामासपतिंपतिव्रता । पतिव्रताशापभयेनपीडितो हुताशनश्चन्दनपंकशीतलः ॥

इस एक बात से ही प्रगट होता है कि पतिव्रत धर्मका कैसा चमत्कृत प्रभाव है स्त्रियोंके निमित्त इससे अधिक और क्या होसक्ता है,एक बार परम तपस्विनी अनुसूया जी ने महारानी जानकी से इस प्रकार पतिव्रत धर्म का उपदेश किया था, कि हे जानकी ! जो गति जप, तप, से भी किसी को प्राप्त नही होसकती, वह गति केवल पतिके चरणारविन्दोकी सेवासे प्राप्त होती है ।

मात पिता भ्राता हितकारी । मित सुखप्रद सुनराजकुमारी ॥ अमितदान भर्त्ता वैदही । अधम नारि जो सेवनलेही ॥ वृद्ध रोगवश जड धनहीना । अन्ध बधिर क्रोधी अतिदीना ॥ ऐसेहु पतिकर किये अपमाना। नारि पाव यमपुर दुख नाना ॥

अर्थात् माता पिता भ्राता यह सब परिमित सुख देनेवाले है परन्तु हे जानकी ! स्वामी अपरिमित सुख देता है वह स्त्री अधम है जो स्वामी की सेवा नही करती है, स्वामी चाहै बूढा, रोगी, मूर्ख, धनहीन, अन्धा, बहरा, क्रोधी, दीन, कैसा भी हो ऐसे पति का अपमान करके भी स्त्री यमपुर मे अनेक दुःख पाती है ।

एकै धर्म एक व्रत नेमा। कायबचन मन पतिपद प्रेमा ॥ जगपतिव्रता चारविधि अहहीं । वेद पुराण सन्त सब कहहीं ॥

एकही धर्म और एकही व्रत नियम स्त्रियो के निमित्त कहा गया है कि मन बचन कर्म से पति के चरणो मे प्रेम करैं, संसार मे उत्तम मध्य नीच लघु यह चार प्रकार की पतिव्रता वेद पुराणो मे कही है यथा—

उत्तमके अस बस मनमाही । सपनेहु आनपुरुष जग-नाहीं ॥ मध्यम परपति देखहिं कैसे । भ्राता पिता पुत्र निज जैसे ॥ बिनु अवसर भयते रह जोई । जानहु अ-धमनारि जगसोई ॥ पति वंचक परपतिरतिकरहीं । रौरव नर्क कल्पशत परहीं ॥ क्षणसुखलागि जन्मशत कोटी । दुखनसमुझतेहिसमकोखोटी ॥ बिनुश्रमनारि परमगति लहई । पतिव्रतधर्म छांडिछलगहई ॥ पतिप्र-तिकूलजन्म जहां जाई । विधवा होय पाय तरुणाई ॥

अर्थात् उत्तम पतिव्रता जानती है कि मेरे पति के अतिरिक्त दूसरा कोई पुरुषही संसार मे नही है और मध्यम पतिव्रता दूसरे पतियो को बडाई छुटाई के कारण भ्राता पिता पुत्र की समान देखती है, जिन-का चित्त चल जाता है परन्तु अपने कुल और धर्म को विचार कर स्थित रहती है वे स्त्रिये निकृष्ट है, जो बिना अवसर भय से चकित रह-ती है उसे अधम स्त्री जाने जो अपने पतिको वञ्चित कर पर पति से रति करती है वह रौरवनरक मे जाकर पडती है, जो क्षण सुख के निमत्त अनेक जन्मो का सुख नही समझती उस की सम न और खोटी कोन है, यदि छल छोडकर स्त्री अपने पति के चरणो की सेवा करे तो बिनाही आश्रय के उसकी परमगति होती है और पति से प्रति-कूल जहां जाकर जन्मेगी, वहां तरुणाई मे विधवा होगी, कैसी भी अपवित्र स्त्री हो पति के चरणो के पूजन से परमगति होती है। महा-राणी जानकी ने पतिव्रत धर्म की मानो शिक्षा सर्व साधारण को करदी है उन्होने अन्तिम परीक्षा समय कहा था ।

वाङ्मनःकर्मभिः पत्यौ व्यभिचारो यथा न मे ।
तथामेमाधवीदेवी विवरं दातुमर्हसि ।वाल्मीकीरामायण

यदि मेरा मन वचन कर्म से पति मे व्यभिचार नहीहै तो यह भूमि फट जाय और मै उस मे समाऊं कैसी धर्म की माहिमा है कि महारानी का प्रेम ऐसे बनवास मे उनसे पृथक् नही था. वह वह उठी थी कि यदि मेरा जन्म फिर हो तो रघुनाथ रामचन्द्र ही मेरे पति हो।

इस ऐसे उज्ज्वल धर्म को नष्ट करने को आज दिन श्रुतिस्मृति के अर्थ बदले जाते है, पतियो से प्रेम छुडाने का प्रबन्ध किया जाता हैं कलियुग की विचित्र महिमा है जिसको अग्नि की साक्षी कर ग्रहण किया गया है,जो वेदमन्त्रो की सामर्थ्य से दूधपानी की समान एकरूप और शिव गौरी की समान अर्द्धाङ्गी होचुकी है वे किसी प्रकार भी पतिका त्याग नही कर सकती। न शास्त्र मे वे अन्य पुरुष गामिनी होसकती है, मन मे अन्य पुरुष का भाव प्राप्त होतेही पतिव्रत धर्म नष्ट होजाता है सहवास की तो कौन कहे पति के परलोक गमन मेभी उन्ही के निमित्त सत्कर्म करती हुई अपना समय बितावे, कारण कि जाया (स्त्री) पति के अर्द्धाङ्ग रूप से वर्त्तमान है। मनुजी कहते हैं—

कामंतुक्षपयेद्देह कन्दमूलफलैःशुभैः।
नतुनामापिगृह्णीयात्पत्यौ प्रेतेपरस्यतु ॥

चाहे कन्दमूल फल खाकर अपने शरीर को पात करदे परन्तु स्वामि के परलोक गमन में दूसरे का तो नाम तक भी न लेना चाहिये यहा अप्रसङ्ग होने से इस बात का विस्तार नही करते कारण कि यहा केवल पतिव्रत की यह महिमा पर थोडासा कुछ कहना है, पुरातन रीति है तथा शास्त्रो मे भी लेख है कि रजःस्नान पर स्त्री अपने स्वामी कोही दर्शन करै यदि वह न होतो देवता सूर्य वा अपना मुखही दर्पणमे देखले उस सन्तान में बिगुणता नही आती, पतिव्रता स्त्री जिस घर में विद्यमान है वह घर देवरूप जानना चाहिये वह स्त्री सम्पूर्ण कुटुम्ब के तारने मे समर्थ है मनुजी कहते है कि—

पतियानाभिचरतिमनोवाग्देहसंयता । साभर्तृलोकानाप्नोतिसद्भिःसाध्वीतिचोच्यते॥मनुस्मृतिः ।

जो मन वाणी देहको नियम मे रखती है कभी पतिके प्रतिकूल आचरण नही करती वह धर्म परायणा स्त्री स्वामी के लोको को प्राप्त होती है ॥

और भी लिखा है कि-

कुरूपोवाकुवृत्तोवा सुस्वभावोथवैपतिः ।
रोगान्वितः पिशाचोवा क्रोधिनोवाथमद्यपः ॥
वृद्धोवाप्यविदग्धोवा मूकोंधोबधिरोऽपिवा ।
रौद्रोवाथदरिद्रोवा कदर्य्यःकुत्सितोऽपिवा ॥ २ ॥
कातरः कितवोवाऽपि ललनालंपटोऽपिवा ।
सततंदेववत्पूज्यः साध्व्यावाक्कायकर्म्मभिः ॥ ३ ॥

अर्थात् पति कुरूप, दूराचारी, उत्तम स्वभाव का, रोगी, पिशाच, क्रोधी, मद्यप, वृद्ध, बुद्धिहीन, गूङ्गा, अन्धा, बहिरा, बिकराल, दरिद्री, कदर्य्य, निन्दित, डरपोक, कपटी, अथवा पर स्त्री लम्पट हो तथापि पतिव्रता स्त्री मन वचन कर्म्म से उसका देव के समान पूजन करै ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

पुरुषं सेवतेनान्यं मनोवाक्कायकर्म्मभिः ।
लोभिताऽपिपरेणार्थैः सासतीलोकभूषणा ॥ ४ ॥

पर पुरुष के द्रव्य का लोभ देने पर भी मन वचन और कार्य से जो पर पुरुष का सेवन नही करती वह स्त्री इस लोक की शोभा देनेवाली सती जाननी चाहिये ॥

देवोमनुष्योगन्धर्वः सतीनां नापरः प्रियः ।
अप्रियं नैवकर्त्तव्यं पत्युः पत्न्याकदाचन ॥ ५ ॥

सती स्त्री को अपने पतिके सिवाय परपुरुष देव गन्धर्व के सदृश हो तो भी प्रिय नही लगता । इस कारण स्त्री को किसी प्रकार भी पतिका अप्रिय नही करना चाहिए ॥

भुंक्तेभुक्तेतथापत्यौ दुःखितेदुःखिताचया ।
मुदिते मुदितात्यर्थं प्रोषिते मलिनाम्बरा ॥ ६ ॥
नान्यं कामयते चित्ते साविज्ञेयापतिव्रता ।
भक्तिं श्वशुरयोः कुर्य्यात्पत्युश्चापि विशेषतः॥७॥

पति जो भोजन करे वह उसे करे । पतिके दुःख और उसके सुख को सुखमाने, पति विदेशगया हो तो उत्तम वस्त्रको न पहरै, मनमे पर पुरुषकी कामना न करै, सास श्वशुर की भक्ति करै और स्वामी की भक्ति विशेष करके करै, उसे पतिव्रता जाननी चाहिए ॥

मित्र ! शोक है कि ऐसे २ रत्न उपदेश रहते भी आज पतिव्रता-ओ का मार्ग नष्ट किया जारहा है । कलिकाल के प्रभाव से आज उन सती स्त्रियो को पर पुरुष मे नियुक्त करते है, विस्तार के भय से हम अब अधिक लिखना नही चाहते कारण कि बुद्धिमान् को इशाराही बहुत है ॥

कूर्मांचल भूषण पं० दुर्गादत्त पंत

❋ तीर्थ ❋

मातः शैलसुतासपत्नि वसुधाशृङ्गारहारावलि
स्वर्गारोहणवैजयन्ति भवतीं भागीरथीं प्रार्थये ।
त्वत्तीरे वसतस्त्वदम्बु पिबतस्त्वद्वीचिषुप्रेंखत-
स्त्वन्नामस्मरतस्त्वदर्पितदृशः स्यान्मे शरीरव्ययः॥ १॥

प्रिय पाठकगण ! आजकल कराल कलिकाल की विशाल महिमा से कैसे कैसे कपोल कल्पित कुतर्क वागजाल रचकर बहुधा छाद्मिक लोग हमारे सच्चे सनातन धर्म्म के प्रत्येक मर्म्मस्थान पै कठोर प्रहार कर रहे हैं उन्हें देख कौन ऐसा सत्य धर्म्मानुरागी है कि जिसको रोमाञ्च और कम्पके साथ २ मनोवेदना न होती हो । महाशय ! आप जानतेही है कि इस समय मे सतयुग के समान तपश्चर्य्या नहीं होसकती और न त्रेतायुग की तुल्य ज्ञान की आशा है ? और न द्वापर के समान राजसूय आदि यज्ञो की सम्भावना है केवल कलिकालमे भगवद् भजन पाठ पूजन, श्राद्ध तर्पण और तीर्थ सेवनादि धर्म्माचरणही इस असार संसार से पार होने का उपाय शेष रहा है ।

यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो उक्त कार्यों में तीर्थ सेवाही सबकी मूलै भूल प्रतीत होती है । क्योंकि प्रायः गृहस्थी लोग घर में रातादिन लौकिक कार्यो मे लगे रहते हैं और स्त्री पुत्रादि के निमित्त मिथ्या महा मोह मे निमग्न हो हाहाकार करते है और अपने वास्तविक कर्त्तव्य से सर्वथा भ्रष्ट होकर अपने उद्धार का स्मरण मात्र भी नही करते । यदि करे भी तो अनेक लौकिक गृह सम्बन्धी कार्य कलाप की निकटता से स्वल्पही करसकते है । और उतन म चित्त एकाग्र नही होता है ।

इस कारण जब मनुष्य तीर्थयात्रा आदिको जाता है तब "मैं इन कार्यो को फिर आकर करूँगा" इस आशासे कुछ काल तक लौकिक कार्य व्यवहार आदिसे मन हटा लेता है, और केवल धर्माचरण मे तत्पर होकर बहुत कर्त्तव्य को थोडे समय मे ही करलेता है क्योंकि वहा (तीर्थ आदि मे इस जीव) को बिना धर्मानुष्ठान के और कुछ भी कर्त्तव्य नही होता । इस कारण जितना समय धर्माचरण के लिए तीर्थयात्रा में मिलसकता है, घर मे उसका दशांश निकलना भी कठिन होता है प्रायः पवित्र क्षत्र म महात्मा धर्मात्मा विद्वान् और साधुजनो के सत्सङ्ग से समस्त काल स्नान, दान, भगवद्भजन पाठ पूजन आदि सत्कर्मो म ही व्यतीत करना होता है अतएव इस समय मे तीर्थ सेवाही सनातन धर्मका मूल कारण है ।

परन्तु शोक की बात है कि किसी प्रकार से बची बचाई "तीर्थ सेवा" पर भा काल क प्रभाव आधुनिक कल्पित कुतर्क वागजाल लग चला है । और कई भोले भाले हमारे ही भइयो ने सहसा उस जाल मे फँसकर निज धर्म कर्मको तिलाञ्जलि दे वैदिक कर्मो और आर्य धर्मी होने की शुष्क आशा से मन माने लड्डू खानेके लोभ म वृथा पडकर समस्त भूमण्डल के शिरोमणि पवित्र क्षेत्र भारतवर्ष के मध्य शुद्ध चातुर्वर्ण्य कुल मे अति दुर्लभ अमूल्य रत्न मनुष्य जन्म को बिना दाम खो देना ही परम लाभ समझ लिया है ।

वास्तव मे उन लोगो का भी दोष नही किन्तु यह कलिकाल राज्य का तेज, और अविद्या महारानी का प्रताप है, तथा कपोल कल्पित कुतर्क वागजाल का फल है ।

इसी से उस आधुनिक मिथ्या कपोल कल्पित कुतर्क वागजाल लख का पोल दिखाना और नदियो तथा तीर्थो की सनातनता को वेदादि सच्छास्त्रो के प्रमाणो से सिद्ध करनाही अपेक्षित है । इस कारण मै भी अपनी बुद्धि के अनुसार "तीर्थनिरूपण "विषयक एक

व्याख्यान आप लोगो की सेवा मे समर्पण करता हूँ और आशा करता हूँ कि सज्जन धार्मिक यथार्थ भावसे सत्य स्वीकार और असत्य परित्याग की दृढ प्रतिज्ञासे सत्यसार का ग्रहण कर मुझे भी अनुगृहीत करेगे और आप भी शुद्ध सनातन धर्म्म से कभी विचलित न होगे प्रत्युत यथासाध्य मुग्ध और वंचित पुरुषो को भी प्रेरणा करके सत्यमार्ग मे प्रवृत्त करावेगे ।

प्रथम आपकी सेवा मे सर्व शिरोधार्य्य वेद के मन्त्र निवेदन किय जाते है ।

इमं मे गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रिस्तोमं सचतापरुष्ण्या । असिक्न्यामरुद्वृधेवितस्तयार्जीकीये शृणुह्यासुषोमया ॥ ऋ० ८० । ३० । ६० । ५० ।

अर्थात् हे गङ्गे ! यमुने ! सरस्वति! शुतुद्रि ! (सतलज) परुष्णी [ऐरावती–रावी] और असिक्नी नदीके साथ हे मरुद्वृधे ! (चन्द्रभागा=चिनाव) वितस्ता [झेलम] के साथ और सुषोमा [सिन्धु सिन्ध]के साथ हे आर्जीकीय ! [विपाशा=व्यासा] इस मेरे यज्ञ को आकर सेवन करो और स्तुति को सुनो । इसी प्रकार यजुर्वेद का भी एक मन्त्र है जिस मे पाच नदियो को सरस्वती के नाम से लिखा है ।

पंचनद्यःसरस्वतीमपियन्तिसस्रोतसः ।
सरस्वतीतुपचधासोदेशेऽभवत्सरित् ॥
य० वा० सं० अ० ३४ । मं० ११

अर्थात् जो दृषद्वती (घाघरा) से आदि समान प्रवाह वाली नादये सरस्वती मे मिलती है वे पांचो सरस्वती ही बन जाती हैं ।

सरस्वतीसरयुः सिन्धुरूर्म्मिभिर्महोमहीरवसयंतुवक्षणी॥दवीरापोमातरःसूदयित्न्यो घृतवत्पयोमधुमन्नो अर्च्चत ॥ ऋ० सं० १० । ५ । ६ । ४ ।

अर्थात् लहरो से युक्त बडी से बडी सरस्वती सरयू और सिन्धु नदिये रक्षा करने के कारण आवे और प्रकाशमान, माता की समान पालने वाले तथा पापो के नाश करने वाले उनके जल हमे घृत और मधुयुक्त जल देवे। और देखिये—

महो अर्णः सरस्वतीप्रचेतयतिकेतुना।धियोविश्वाविराजति। ऋ० सं० मं० १ अ० १ सू० १४ मं० १२

अर्थात् सरस्वती दो प्रकार की है एक देवतारूप दूसरी नदीरूप। उन मे से पहली दो ऋचाओ से देवता रूप सरस्वती का प्रतिपादन किया है अब इस ऋचा से नदीरूपा सरस्वती का प्रतिपादन करते हैं।

वैसी [नदीरूपा] सरस्वती अपने प्रवाह से बहुत जल को जतलाती , और देवतारूप से अनुष्ठाताओ की बुद्धियो को प्रकाश करती है॥

इसी प्रकार निरुक्त मे भी सरस्वती के दोनो स्वरूप दिखलाए हैं—

सरस्वतीत्येतस्य नदीवद्देवतावच्चनिगमा भवंति॥
नि० अ० २ पा० ७ खं० १

अर्थात् सरस्वती के निगम नदीवत् और देवतावत् होते हैं, अर्थात् दोनो स्वरूप होने से दोनो प्रकार के निगम होते है। फिर देखो—

इयं शुष्मेभिर्विसखाइवारुजत्सानुगिरीणांताविषेभिरूर्मिभिः। पारावतघ्नीमवसेसुवृक्तिभिःसरस्वतीमाविवासेमधीतिभिः॥ ऋ० सं० अ० ५० ऋ० २ सू० ६१

अर्थात् सरस्वती देवतारूपा और नदीरूपा है। देवतारूप की स्तुति की अब नदी रूप की स्तुति करता है। यह सरस्वती नदी अपने सुखाने वाले बलो और बडी २ लहरो से तीरवर्ति पर्वतो के सानुओ को

बिसखानक (बिस=मे उखाडने वाले) की समान तोडती है । उस पार उरार (दोनो किनारो को) तोडने वाली सरस्वती नदी को हम स्तुति और कर्म (यज्ञ आदि) से रक्षा करने के निमित्त परिचर्य्या करते है ।

और देखिए कि ऋ० सं० के ३ मं० ३ अ० १३ मन्त्रो का ३३ वां सूक्त है जिस मे कथा है कि कुशिक राजर्षि का पुत्र विश्वामित्र ऋषि जब पैजवन सौदास राजा का पुरोहित बनकर उससे बहुत सा धन लाया तब आतेहुए मार्ग मे शतलज और व्यासा दोनो नदियोंके सङ्गम मे आया और वहां से तैरने की इच्छा से विश्वामित्र ने उन (दोनो नदियों) की स्तुति कर के कहा कि तुम एक मुहुर्त्त भर अपने प्रवाह को रोकलो तो मैं तैरजाऊँ तब नदियो ने कुछ सम्वाद और इन्द्र की स्तुति करके ऋषि को मार्ग दिया और ऋषि ने पार होकर फिर उन [नदियो] की स्तुति की और फिर वैसाही पूर्ववत् उन [नदियो] का प्रवाह होगया इत्यादि वर्णन मन्त्रो मे ही है जिनका प्रथम मन्त्र यह है कि—

प्रपर्वतानामुशतीउपस्था दश्वेइवविषितेहासमाने ।
गावेवशुभ्रेमातरारिहाणे विपाट्छुतुद्रीपपसाजवेते ॥
ऋ० सं० मं० ३ अ० ३ सू० ३३ मं १

अर्थात् विश्वामित्र कहता है कि जैसे अश्वशाला [तबेले] से निकल कर दो घोडिये जिह से दौडती है वा जैसे शोभायमान दो गौएं अपने बच्चे को चाटने की इच्छा से दौडती है वैसेही पहाडो की गोद से निकल कर बिपाशा और शुतुद्री अर्थात् व्यासा और शतलज दौडकर समुद्र को जाती हैं ।

महाशय ! अब आपही कहिए कि इन सब वेद मन्त्रो मे कैसा साफ २ नदियों का वर्णन है, और किस प्रकार नदियोंके सनातनता

मे परम मान्य श्री वेद पुरुष के मन्त्रोंही का प्रमाण विद्यमान है। अब आप की सेवा मे और भी प्रमाण समर्पण किए जाते हैं जिन से तीर्थों मे जाकर स्नान और दान का करना तथा उन से धन और सन्तान की प्रार्थना करनी और त्रिविध (अर्थात्) मानासिक, वाचिक, और कायिक पापो की निवृत्ति और मोक्ष तक की प्राप्ति सिद्ध होती है ।

समुद्रंवाएतेप्रतरंतिये संवत्सरायदीक्षन्ते तस्य तीर्थमेव प्रापणीयः। त्रिरात्रस्तीर्थेनहि प्रस्नांति लद्यत्प्रापणीयमतिरात्रमुपयन्तियथा तीर्थेन समुद्रंप्रस्नायुस्तादृक्तत् ॥ श० का० १२ अ०२ ब्रा० १ कं० १

और भी ब्राह्मण मे लिखा है-

देवाहवैसत्रंनिषेदुः अग्निरिंद्रःसोमोमखोविर्विश्वे देवाविनैवाश्विभ्याम् १ तेषांकुरुक्षेत्रं देवयजनमास तस्मादाहुः कुरुक्षेत्रं हि देवानां देवयजनमितितस्माद्यत्रक्वचकुरुक्षेत्रस्यनिर्गच्छति तदेव मन्यतेइदंयजनमितितद्धिदेवानां देवयजनम् ॥ श०का०१४ अ० ब्रा०१ कं० १

और भी-

ऋषयोवैसरस्वत्यां सत्रमासत तेकवषमैलूषं सोमादयन् दास्याः पुत्रः कितवोऽब्राह्मणः कथं नोमध्ये दीक्षिष्टेति,तंवहिर्धन्वोदवहन्नत्रैनंपिपासा हंतु सरस्वत्या उदकं मापिबदिति, सवहिर्धन्वो

इढः पिपासया वित्त एतदपोन प्रोयमपश्यत् प्रदे वत्रा ब्रह्मणे गातुरेत्विति, तेनापां प्रियं धामोपागच्छत् तमापोऽनूदाढांस्त सरस्वती समंतं पर्य्य धावत्तस्माद्धाप्य तर्हि परिसारकमित्याचक्षते ॥ ऐ०ब्रा०२ पं०३अ०१९ कं० पुनरपि ब्राह्मणम्-

अष्टासप्ततिं भरतो दौष्यन्तिर्यमुनामनु ।
गङ्गायां वृत्रघ्ने बध्नात् पञ्च पञ्चाशतंहयान् ॥
ऐ० ब्रा० ८ पं० ४ अ० २३ कं०

अन्यच्च ब्राह्मणम्-

अथैतद्धोम देवयजनं यत्रायस्तिष्ठति यत्र स्पन्दंति प्रंतद्धहत्युद्धहन्ति तदेव यजनम् ॥ गो० ब्रा० पू० १३ भा० प्र० २ कं०

अर्थात् जो सम्वत्सरकी दीक्षालेते हैं वे समुद्र को तरते हैं और उनका आतिरात्रि यज्ञ ही तीर्थ होता है जैसे तीर्थ मे स्नान है वैसे ही वह (यज्ञदीक्षा) है ।

देवताओ ने यज्ञ किया था जिसमे अग्नि, इन्द्र, सोम, मख (यज्ञपुरुष) और विष्णु थे परन्तु विश्वदेवा नही थे उनका देव यजन स्थान कुरुक्षेत्र था इसी से कुरुक्षेत्र को देवयजन कहते है और जहां कही कुरुक्षेत्र का निगमन आता है वही मानते है कि यह देवयजन है । ऐतरेय ब्राह्मण मेभी लिखा है कि ऋषियो ने सरस्वती पर यज्ञ रचा और उन्हो ने कवष ऐलष को सोम से बाहिर किया कि यह क्यो हमारे मे दीक्षित हुआ इसे यही प्यास लगे और यह सरस्वती का जल न पीवे, तब वह बाहर गया हुआ प्यास से खिन्न होकर जलायन को (प्रदवत्राब्रह्मणे गातुरे तु०)

इस मन्त्र को देखता हुआ और उसी से जलो के परमधाम को पहुँचा और सब जल उसे आन मिले, सरस्वती उसके चारोओर से सरकी उसी से अबतक भी उस (स्थान) को परिसारक कहते हैं ॥

ऐसेही और भी है कि दुष्यन्तराजा के पुत्र भरतराजा थे यमुना के किनारे २८ अट्ठाइस और गङ्गा पर ५५ पचपन घोडो को बांधा अर्थात् वहां (गङ्गा यमुना) पर यज्ञ किया। और भी ब्राह्मण कहता है कि इसी पृथ्वीपर देवयजन (यज्ञस्थान) है जहा जल ठहरते है बहते हैं स्रवते और उछलते है अर्थात् ऐसे स्थानो मे देवताओ का पूजन करना चाहिये ॥

पाठक महाशय ! इस शतपथ, ऐतरेय और गोपथ ब्राह्मण की श्रुतियो से भी तीर्थ कुरुक्षेत्र की कैसी प्राचीनता सिद्ध है। अब संहिता के कुछ मन्त्र लिखते हैं जिन से तीर्थो पर जाकर स्नान दान आदि की सिद्धि होती है देखिये—

आदान्मेपौरकुत्स्यः पञ्चाशत्त्रसदस्यूर्वधूनाम्। मंहिष्ठोअर्य्यः सत्पतिः ऋ० सं० ६१, ३५, ६ और—

उत्तमेप्रियियोर्वयियोः सुवास्त्वा अधितुग्वनि।विस्तूर्णां सप्ततीनां श्यावः प्रणेताभुवद्वसुर्दिशानाम्पतिः ॥

ऋ० सं० ६, १, ३५, ७।

अर्थात् कण्ववंशीय, सौभरि ऋषि कहता है कि शत्रुओ को डराने वाले बडे पूज्य, भगवान्, सत्पालक पुरु, कुत्स्य राजा से पुत्र ने सुवास्तु नदी के तीर्थपर पचास कन्या, दो सौ दस गौएँ और श्यामवर्ण बैल तथा बहुत घोडे और वस्त्रादि मुझे दान दिया है। इन मन्त्रो से तीर्थों पर दान देने की सनातनता सिद्ध होती है। और भी मन्त्र लिखते है जिनसे धन और सन्तान की प्राप्तिके लिये सरस्वती से प्रार्थना है।

अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति । अप्रशस्ता इवतस्मसि प्रशस्तिमम्बिनस्कृधि ऋ० सं० १।८।१०।२। ४।१।१६।

अर्थात् माताओं मे, नदियो मे, देवियो मे श्रेष्ठ हे सरस्वति ! हम धन के न होने से असमृद्ध हैं हे माता सरस्वति ! हमारी धन समृद्धि को कर अर्थात् हमे धन दे। इस अगले मन्त्र में अन्न और सन्तान के लिये सरस्वती से प्रार्थना है ॥

तेविस्वासरस्वति श्रिनायूंषि देव्याम् । शनहोत्रेषु मत्स्वप्रजां देवि दिदिड्ढिनः । ऋ० सं० २।८।१०। २।४।१७।

अर्थात् हे सरस्वति देवि ! तेरे दीप्त होने परही सब अन्न आश्रित होते है और वह तू हमारे विषय मे अमृत पान से तृप्ति हो और देवि सरस्वति हमे प्रजा (पुत्रों) को दीजिये ॥ १७ ॥

अब पाप निवृत्ति के लिए प्रार्थना सुनिए।

इदमापः प्रवहत यत्किञ्चदुरितं मयि । यद्वाहमभिदुद्रोहयद्वाशेपउतानृतम् । ऋ० सं० अ० १ अ० २ व० १२ मं० १ अ० ५ सू० २३ मं० २२ ।

अर्थात् मुझ यजमान मे जो पाप अज्ञान से हुआ है वा, जो कुछ मैंने जान कर सब से द्रोह किया है वा जो किसी साधू को मैने शाप दिया है वा जो मैने झूठ बोला है इन सब पापो को हे आपः (जलो) मुझ से दूर करो ॥ २२ ॥ और भी देखिए—

इदमापः प्रवहतावद्यंचमलंचयत्। यच्चाभिदुद्रोहानृतंयच्च शेपे अभीरुणम् ॥अ० वे० सं० कां० ७प्र०१७अ०८

अर्थात् हे जलो ! जो निन्दित मल मेरे शरीर मे है और जो मैने द्रोह किया है और जो मैने झूठ कहा है और जो मैंने अपराधी को शाप दिया है इन सब पापो को मुझ से दूर करो । और भी देखिये–ऋग्वेदका परिशिष्ट भाग,

यत्र गंगा च यमुना यत्र प्राची सरस्वती ।
यत्र सोमेश्वरो देवो तत्र मामामृतं कृधि ॥

अर्थात् हे सोम! जहा गंगा है जहां यमुना है जहां सरस्वती है और जहां सोमनाथ है वही मुझे अमृत (अमर) कर ॥ और भी देखिये—

सितासितेसरितेयत्रसंगते तत्राप्लुतासोदिवमुत्पतंति ।
येवैतन्वां२विसृजंति धीरास्तेजनासोअमृतत्वंभजन्ते॥

अर्थात् जहा श्वेत और कृष्ण (गंगा यमुना) नदिये मिलती हैं उस स्थान (प्रयागराज) मे स्नान करनेवाले पुरुष स्वर्ग को जाते हैं, और जो लोग वहा शरीर छोडते हैं वे अमर होते है ॥ और भी–

इदंते अन्याभिरसमानमद्भिर्याः काश्चसिंधुंप्रवहंतिनद्यः।
सर्पोजीर्णामिवत्वचं जहाति पापं स शिरस्कोभ्युपेत्य ॥

अर्थात् हे सिन्धो ! यह तेरा जल उन नदियो के समान नही है जो कि तेरे म गिरती हैं किन्तु उनसे उत्तम है, इसमे सिर समेत गोता लगाने से पुरुष पाप को ऐसे छोडदेता है जैसे सांप जीर्ण त्वचा को छोडता है ॥ फिर मनुजी ने भी तीर्थों से पाप दूर होना लिखा है कि—

यमो वैवस्वतो देवो यस्तवैषहृदिस्थितः ।
तेनचेदविवादस्ते मागंगां माकुरून्गमः ॥
मनु० अ० ८ श्लो० ९२

यम वैवस्वत देव जो तेरे हृदय मे स्थित हैं यदि उनके साथ तेरा विवाद नही है, अर्थात् अधर्म्म करने के कारण भय नही है तो गंग

और कुरुक्षेत्र के जाने की आवश्यकता नही । परन्तु तीर्थो पर जाकर किस प्रकार वर्त्तना चाहिये सो सुनिये ॥

परस्त्रियं योऽभिवदेत्तिर्थैरण्येवनेपिवा ।
नदीनां वापिसंभेदे स संग्रहणमाप्नुयात् ॥
मनु० अ० ४. ८ श्लो० ३५६

अर्थात् जो पुरुष तीर्थ, वन, और नदी संगम मे पराई स्त्री को बुलावे सो संग्रहण (सहस्र पण दण्ड) को पावे ॥ महाशय ! यदि आप यथार्थ दृष्टि से विचारे तो निःसन्देहही मनुजी के वाक्यों मे श्रीगंगा, कुरुक्षेत्र तीर्थ और नदी संगम आदि पदो से प्रत्यक्ष प्रतीत होता है कि यह सब तीर्थक्षेत्र मनुजी के समय से भी प्राचीन है ॥

इन सम्पूर्ण प्रमाणो से निस्सन्देह हमारे प्राचीन तीर्थो मे त्रिविध (मानसिक, वाचिक और कायिक) पापो की निवारक शक्ति का प्रमाण मिलता है, और प्राचीनता स्पष्ट सिद्ध होरही हैं, अब आप लोग सरल स्वभाव और सत्य प्रभाव से निष्पक्ष-पात होकर विचारे कि केवल कपोल कल्पित कुतर्क वाग्जाल के विना हमारे शुद्ध सनातन वेदानुकूल तीर्थ विषय की कितनी गूढता है अतएव अब सनातन धर्मानुरागियो को उचित है कि अपने परम धर्म्म तीर्थ सेवन पुण्य कर्मसे कदापि विरत न हो। किसी की उक्सावट मे आकर अपने धर्म्म से वंचित हो लोक परलोक से निराश हो अमूल्य रत्न शुद्ध चातुर्वर्ण्य जन्म को खोकर हाथ धोते रहजायें । तीर्थोंका फल ऐसे पुरुषो को मिलता है—

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम् ।
विद्यातपश्चकीर्तिश्च सतीर्थफलमश्नुते ॥ १ ॥
प्रतिग्रहादपावृत्तः सन्तुष्टोयेनकेनचित ।

अहंकारनिवृत्तश्च सतीर्थफलमश्नुते ॥ २ ॥
अकलंकोनिरारम्भो लघ्वाहारोजितेंद्रियः।
विमुक्तःसर्वपापेभ्यः सतीर्थफलमश्नुते ॥ ३ ॥
अक्रोधनश्चराजेन्द्र सत्यशीलोदृढव्रतः।
आत्मोपमश्चभूतेषु सतीर्थफलमश्नुते ॥ ४ ॥

अर्थात् जिसके हाथ पैर और मन भली प्रकार से नियम मे स्थित है, और जिसमे विद्या तप और कीर्त्ति है, वही तीर्थों के फल को प्राप्त होता है ॥ १ ॥ प्रतिग्रह को छोडकर थोडेमें सन्तुष्ट रहनेवाला, और जो अहङ्कार रहित है, वही तीर्थके फलको प्राप्त होता है ॥ २ ॥ कलंक रहित कर्त्तव्य हीन, स्वल्पाहारी, जितेन्द्रिय तथा जो मनुष्य पाप रहित है वही तीर्थके फल को प्राप्त करता है ॥ ३ ॥ क्रोधहीन, सत्य-शील, दृढ प्रतिज्ञावाला तथा सम्पूर्ण प्राणियोंमे जो अपनी समान देखता है, वही तीर्थके फलको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

प्रियवर ! कैसे शोक की बात है, कि आजकल के असंस्कृत मूर्ख सभ्याभिमानी उन हमारे प्राचीन तीर्थोंके माहात्म्यको अपनी प्रमाण शून्य युक्तियोमे उडाना चाहते है, परन्तु मित्र ! ध्यान रहे पींजरेमे पडे हुये विकराल सिंहको यदि कोई खिजावै तो ऐसा करनेसे क्या सिंह का अपमान हो सकता है। हमारा सनातन धर्म मलीनावस्थामे होने परभी कभी नष्ट नही होसक्ता। अन्त मे हमारी सहृदय सज्जन पुरुषोसे प्रार्थना है कि आलस्यको त्यागकर अपने सनातन धर्ममे तत्पर होजाओ। और अपने वर्णके अनुसार कर्मो को करो ॥

महामहोपदेशक गोविंदरामजी शास्त्री।

❀ सनातनधर्म की महिमा ❀

नाथ शरणं देहि मां भक्तं शरणागतम् ।
सर्वाद्य सर्वनिलय सर्वबीज सनातन ॥
सर्वाधार गिराधार साक्षिभूत परात्पर ।
दुष्पारासारसंसारकर्णधार नमोऽस्तुते ॥

हे प्रिय सभासदो ! मैं आपके सन्मुख जिस गहन और महान् विषय पर व्याख्यान देनेवाला हूँ, उस विषय मे प्रवेश करने के लिए मैं,आज केवल भूमिका मात्र धर्म–सम्बन्धी कई प्रकरणो को लेकर उन्ही के विषय मे संक्षेप के साथ कुछ कहूँगा ।

इस सभा रूपी बगीचीमे जनसमूह रूप भिन्न २ सुगन्धित पुष्प लताओ पर विहार करनेवाले सुख रूपी पक्षी का मनोहर शब्द सुनकर मनोरूप माली प्रेमाश्रुओ से सींच रहा है ऐसी दशा देख कर मैं भी हरिनाम रूप जल को छिडककर उस बगीचे को अधिक प्रफुल्लित करने का उद्योग करता हूं एकबार भक्ति के साथ कहो–

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

पहले इस आर्यावर्त मे सनातन धर्म सब प्रकार से जागरहा था, सब लोग बड धर्मात्मा और निष्ठावान् थे, अधर्म को प्रवेश करने का किंचिन्मात्र भी अवसर नहीं मिलता था । उस समय युधिष्ठिर नल मान्धाता दिलीप आदि धार्मिक शिरोमणि राजे प्रजापालन मे तत्पर रहते थे और वसिष्ठ वामदेव आदि महर्षि भी धर्म को जागृत रखने और उसकी वृद्धि करने मे रातदिन तत्पर रहते थे । जैसे किले मे के राजमहल की उत्तमता से दृढता की जाती है वैसेही सनातनधर्मरूपी महल, उपरोक्त धर्मात्मा राजे और महर्षि आदिकों से सुरक्षित था । परन्तु

वह दशा उलट कर कालवश क्षय होते २ इस समय किसी अतिजीर्ण महल की समान उस धर्म रूप महल की दुर्दशा होरही है, कहीं २ पुरानी गिरी पडी दीवारे रहगई है। यदि कहो कि-वह दीवारे कौनसी है ? तो सुनिये, हमारे पवित्र और विद्वत्ता से भरे हुए बचे बचाये धर्म ग्रन्थ है। हमारा प्राचीन पुस्तको का भाण्डार इतना बालिष्ठ थ कि—औरङ्गजेब बादशाह ने हमारे ग्रन्थभण्डार को जला देने की आज्ञा दी तो छः मास तक बराबर ग्रन्थो के जलते रहने पर भी वह निबडा नहीं, अन्त मे जो ग्रन्थ बच गए उनका बहुमूल्यपना इतना है कि-वह जगत् भरके अन्य मनुष्यो के ग्रन्थो को और विद्याओ की अब भी नीचाही दिखावेगा। नवीन फिलासफर (तत्त्वज्ञानी) भी उन ग्रन्थो मे की एक पंक्ति को बाचकर चकित होजाते हैं और 'हमारी बुद्धि काम नही देती' ऐसा स्पष्ट कह देते है, अस्तु यह जो हीन दशा प्राप्त हुई है यह हमारे धर्म का बुढापा है। जैसे मनुष्य को बालकपन, तरुणाई और बुढापा आता है तैसेही धर्म के विषय मे भी समझना चाहिए, तिस पर कलियुग महाराज की अमलदारी !! जिस प्रकार बुढापे मे मनुष्य की गर्दन कांपने लगती है, तैसे ही इस धर्म की भी गर्दन कांपने लगी है, अर्थात् यदि कोई हमसे बूझै-ब्रह्मचर्य्य कैसी क्या बस्तु है ? तो ॲहः (नहीं) सूचित करने के लिए गर्दन हिलने लगती है। सत्य नही, धैर्य्य नहीं क्षमा नहीं, अहिसा नही इन सबही शब्दो के साथ गर्दन हिलाई जाती है, यही धर्म के बुढापे का चिह्न है परन्तु ऐसी दशा होजाने के वास्तविक कौन २ कारण है, यह खोज करना हमारा कर्त्तव्य है। यद्यपि उन सब कारणो के वर्णन मे बहुत समय लगेगा परन्तु सबसे बडा कारण संस्कृत की अवनति है। संस्कृत ही हमारे धर्म ग्रन्थो और अनेकों शास्त्रो की उस समय की भाषा है तथा जगतभर की सभी भाषाये इसके ही शब्दोका उच्चारण बिगडते २ बनगई है ऐसा कहना कोई

अनुचित बात नही है । उदाहरण के लिए कुछ शब्द कहते है उनसे इस बात का निश्चय होजायगा ।

संस्कृत	लाटिन	अङ्ग्रेजी	पर्शियन.	जर्मन.	ग्रीक
मातृ	मेटर्	मदर्	मादर्	मातेर्	मातेर्
पितृ	पेटर्	फादर	पिदर्	पातेर्	पिटर्

इसी प्रकार—

संस्कृत	लाटिन	अङ्ग्रजी	पर्शियन
सुवन	सन्	सन्	.
दुहितृ	.	डाटर	दुखतर

संस्कृत	अरबी
अङ्कवर ..	अकबर
अंतकाल	इंतकाल

इसी प्रकार—

संस्कृत ...	.अङ्ग्रेजी
सर्प	सर्पेंट
पथ	पाथ
त्रिपथ	ट्राय ड्र

संस्कृत	पाशयन
अस्ति	अस्तं
नास्ति	नेस्त
किमस्ति	कीस्ती

इसी प्रकार और भी अनेको शब्दा की समता दिखाई जासकती है । परन्तु उतना अवकाश न होने से आगे को चलते है ।

ऐसे सूक्ष्म रीति से देखने पर जगत्भर की सकल भाषाओ की जननी निःसन्देह यह संस्कृत ही है । मूल स्थान भारतवर्ष से उसका प्रचार जैसे २ दूर देशों में होता गया तैसे तैसे उसका अपभ्रंश होकर उसके द्वारा और लोगो की भाषा बनती गई, यह दशा होते हुए भी जिनको इस संस्कृत की गन्धभी नहीं मिली है वह इसको डेड लैगवेज [मृत भाषा] और मूर्ख लोगो की भाषा है ऐसा कहते हैं और इस मे ऐसेही विचार भरे होगे ! इस प्रकार कहकर तिरस्कार करते है। संस्कृत सीखना मानो भीख मागने की विद्या सीखना है, वह तो हरामडील भिखमँगो को पढनी चाहिए, हमको उससे क्या लाभ है ? ऐसी वृथा बकवाद करते हैं।परन्तु रत्न के मोल को कूंजडा क्या जाने ? मित्रो! केवल शब्दो की समताही नही है, किन्तु अनेको नए शास्त्र भी इस

ग्रन्थ से ही लिए गए हैं, यह बात ग्रन्थों से और व्यवहार से स्पष्ट समझ मे आजायगी। सूर्य की ऊष्णता से पानी की भाफ बनकर उसके मेघ होकर फिर वर्षा होती है यह खोज नवीन नही है, किन्तु उपनिषद् मे कहाहै।

'आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः।'

जिस विद्युत्शास्त्र ने आजकल सब जगत् को चकित कर डाला है, उसका प्रचार पहिले हमारी और ही था, यह बात एक छोटे से उदाहरण से आप समझ सकेगे। उत्तर हिन्दुस्तान मे जब बरसात आती है तब बादलोंमे बिजली चमकने लगती है तब साधारण दासी भी आगन मे पडे हुए कासी आदि धातु के पात्रों को शीघ्रता से उठाकर घर को लेजाती है। धातु मे बिजली गिरकर घुसजाती है यह बात हमारे यहा की तुच्छ दासियो को भी मालूम है, तात्पर्य यह है कि–नई चलाई हुई मालूम होनेवाली अनेको विद्याएँ पहिले हमारे पास थी परन्तु अब पूर्वोक्त कारण से ग्रन्थो का नाश होजाने पर वह सब स्वप्न की समान होरही है।

जैसे ग्रन्थो की और संस्कृत की ऐसी अधोगति होगई तैसे ही हमारी गुरु शिष्य प्रणाली भी बिगड गई है। आजकल अधिक तो क्या, बहुत से गुरुनामधारी भी इस बात को नहीं जानते कि–सन्ध्या प्राणायाम आदि शास्त्रानुकूल किस रीति से करने चाहिये! बस केवल नाक कानको हाथ लगाया सो प्राणायाम होगया!! जब गुरुओ की यह दशा है तो शिष्यो की तो बात ही क्या? हा कभी कहीं सच्चे गुरु मिल भी जाते है, परन्तु दिनोदिन गृहस्थो की श्रद्धा घटती जाने के कारण उनसे भी दोनो को कुछ लाभ नही पहुंचता। उत्सव त्योहार आदि के समय किसी वेश्या का, आने के विषय मे तार आया कि–कोई गाडी भेजता है, कोई सेवक भेजता है और आजानेपर अञ्जीर, अंगूर, अनार, सन्तरे, केला, आम, पकवान आदि की तश्तरियें नजर

करके बार २ प्रश्न किया जाता है कि—कहिए सरकार आपकी तबियत कैसी है ? और उनही के पास कहीं से यदि गुरुवर्य का आने के विषय मे तार या पत्र आवे तो सब नाक सकोडने लगते है । यदि गुरु महाराज आही जांय तो उनको किसी घुडसाल, गोशाला या कबूतरखाने मे ठहरा देते हैं और कही से आये हुए सडे पडे फल अर्पण कर देते हैं यदि गुरुजी ने बूझा तो कहदिया कि—महाराज ! आप परमहंस है आपको भला बुरा क्या ? जहां ऐसी दशा हो तहा धार्मिक उन्नति की क्या आशा है ? ।

ऐसी दशा होते हुए भी हम हिन्दुओ की स्त्रियो में अब भी धर्म का अंश अधिक है, यद्यपि आजकल के नवशिक्षित लोग हिन्दुओं के घरो की लक्ष्मी स्वरूपिणी ऐसी स्त्रियो को अज्ञान मे पडी हुई समझते हैं परन्तु सनातनधर्म के मतसे यह अज्ञान नही है उदाहरण। देखिए, एक हिन्दूनारी प्रातःकाल के समय उठकर पति की सेवा करके पतिकी आज्ञानुसार गंगा तटपर स्नान करने को जाती है स्नान के अनन्तर श्रीगंगा का पूजन करके सिन्दूर, अगर, कुंकुम को गंगा का प्रसाद जानकर अपने भाल मे लगाय उसको सौभाग्य दर्शक चिह्न समझती है । तदनन्तर पीपल के वृक्ष मे सिन्दूर की बिन्दी लगाकर आम के वृक्षपर टीका काढती है,फिर चलते २ गौ मिलती है तो उसके सिन्दूर का टीका लगाती है, तदनन्तर खेत मे हल से खुदे हुए ढेले के टीका लगाती है, जहा चौराहा होता है तहा सिन्दूर चढाती है, तदनन्तर अपने घर आकर कोलीपर और दीपक रखने के स्थान पर तथा पलहुण्डी पर टीका लगाती है, जरा विचार कर देखो इन सब वस्तुओं पर टीका लगाने का प्रयोजन क्या है ? सनातन धर्म का जो रहस्य है कि—ब्रह्म सर्वत्र समभाव से प्राप्त है, यही स्त्रियो के उस कार्य से दिखाया गया है, इतनाही नही किन्तु सिदूर, अगर, कुंकुम यह स्वामी के विद्यमान होने के चिह्न है, तिसी प्रकार जगत भर का स्वामी इन सब काठ पाषाण आदि वस्तुओ मे ओतप्रोत भररहा है ऐसा जो

१ सर्वं खल्विदं ब्रह्म इत्यादि ।२ ईशावास्यमिदꣳसर्वं यत् किंचित्० । ३ तत्सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत्।

इत्यादि श्रुतियो को मथकर निकला हुआ अर्थ है, उसको हिन्दू स्त्रियें भिन्न २ वस्तुओं पर कुंकुम का टीका लगाकर प्रकट करती है।

ऐसा उपदेश और तदनुसार आचरण इन दोनो पर अमल केवल सनातन धर्म मे ही देखा गया है इस कारण यह अन्य सब धर्म्मों की अपेक्षा श्रेष्ठ है सनातन धर्म मे वृक्ष पशु आदिको की पूजा कही है उसको बहुत से भिन्नधर्मी मूर्खता बताते है, परन्तु ऐसा कहने वालो ने सनातन धर्म का रहस्य कुछ भी नही समझा है, वृक्ष पशु आदि की पूजा करना मूर्खता नही है। किन्तु सनातनधर्म का महत्व दिखाने वाला उदाहरण है।क्योकि देखो—दूध,दही,माखन मलाई आदि से बालको से लेकर बूढ़ों पर्यन्त उपकार करनेवाली परममित्र गौ की पूजा करने के लिये जैसी सनातनधर्म में आज्ञा है तैसेही प्राणघातक परमशत्रु सर्प की भी श्रावणशुक्ला पञ्चमी को पूजा करने की आज्ञा दी है। इस प्रकार 'समः शत्रौ च मित्रे च' इस उच्च तत्त्व का केवल उपदेश ही किया है, किन्तु तदनुसार प्रत्यक्ष आचरण भी सनातन धर्म ने दिखाया है, ऐसे उदार उपदेश और आचरण का फोटो क्या और किसी धर्म मे ढूंढने से भी मिलसकता है ? कदापि नहीं। इससे सनातन धर्म की योग्यता, व्यापकता और महत्ता को सब सहज मे ही समझ सकते है। ईश्वर सर्वत्र व्यापक है, इसका यथार्थ विचार जिस मे है ऐसा एक सनातनधर्मही है, इसको अन्यधर्मी लोग तथा हम मे के सुधारक चाहे जो कुछ कहे परन्तु ईश्वर की यथार्थ व्यापकता के रहस्य को एक सनातन धर्मियो ने ही समझा है ।

हमारे अठारह पुराण है और वह मानो पृथ्वीपर के प्रत्यक्ष प्रमाणाकी समान ही १८ प्रत्यक्ष प्रमाण है, वह किसी विशेष कारण से

सत्तरह या उन्नीस नहीं रचे गये है इस बात को हम और किसी समय विस्तार के साथ कहेंगे ॥

सनातनधर्म मे भक्ति को परम तत्त्व माना है, परन्तु गुरु शिष्य भाव की प्रणाली बिगड जाने के विषय मे मै आप से पहिले ही कह चुका हूँ उसके बिगडने से जैसा योगमार्ग का लोप हुआ है वैसाही भक्तिमार्ग का भी लोप होगया। गुरु की कृपा से और सत्समागम से ईश्वर की ओर को लौ लगकर भक्तिरस का द्वार कैसा खुलजाता है और फिर अनन्य भक्ति करने लगने पर, सङ्कट के समय श्यामसुन्दर प्रभु अपना दर्शन देकर कैसी सहायता करते है इस विषय मे उदाहरण रूप परम भक्तशिरोमणि तुलसीदासजी का चरित्र संक्षेप से कहता हूँ ॥

तुलसीदासजी का निवासस्थान बादा जिले के राजापुर ग्राम मे था और इन के पिता उधर के तहसीलदारी के काम पर थे और उन्होने बहुतसा धन सञ्चय करा था। इन की माता का नाम तुलसी था दुर्दैववश तुलसीदासजी के पिता इनको सात आठ वर्ष का बालक छोड कर परलोक को सिधार गये इकलौता पुत्र और लाडला होने के कारण १९। १६ वर्ष की अवस्था तक यह निरक्षर ही रहे, तदनन्तर एक श्रेष्ठ कुल की कन्या के साथ इनका विवाह होगया। स्त्री के परमरूपवती होने के कारण तुलसीदासजीका ध्यान रातदिन उधर को ही लगा रहता था। आठो पहर उसके पाससे हिलते भी नहीं थे,पिता का इकट्ठा कराहुआ धन खर्च होगया, सोता खुला हो तो जल का हौज कबतक भरा रहसकता है, तुलसदिास जी के ऐसे स्त्री मे आसक्त होने के कारण उनकी माता को बडा खेद हुआ और पुत्र को व्यापार धन्धा, नौकरी चाकरी आदि करने के लिये बहुत कुछ समझाया परन्तु तुलसीदासजीके ध्यान मे एक भी बात नहीं आई और उलटा यह उत्तर दिया कि–तूही हम दोनो का पालन कर, ऐसा उत्तर सुनकर

माता चित्त में दुःखित होती हुई मौन हो बैठी। पाच छः वर्ष ऐसेही बीत जाने पर बहू को लिवाने के लिये उसके पीहर से मनुष्य आये, उनको तुलसीदास ने निषेध करके लौटा दिया और स्पष्ट उत्तर दे दिया कि-मै अपनी स्त्री को नही भेजूँगा, इस पर उन की माता ने कहा कि-प्रातःकाल के समय तुलसीदास एक घण्टे तक स्नान आदि नित्य क्रिया करने को यमुनाजीके तटपर जाया करता है उस समय तुम डोला लेआना, मै बहू को विदा करदूँगी। दूसरे दिन जब तुलसीदास स्नान आदि करने के लिये यमुना जी को चले गये उसी समय उनकी माता के कहने के अनुसार तुलसीदास की सुसराल वाले आकर बहू को लिवा लेगये। इधर तुलसीदास जी स्नान आदि से निबटकर कन्धे पर धुली हुई धोती, हाथ मे जलकी झारी और एक पीताम्बर पहिने हुए आये सो पहिले तो उन्होने घर में सर्वत्र देखा, परन्तु जब स्त्री घर मे कही न दीखी तब माता से बूझा उसने पीहर के भेजदेने का वृत्तान्त सुनाया, इस बातको सुनते ही तिसी प्रकार नङ्गे धड़ङ्गे कन्धे पर धोती डाले और हाथ में जलकी झारी लियेही सासके घरको चलदिये, उनको इस बात का कुछ ध्यान नही था कि-मै मार्ग मे नङ्गा ही किस दशा मे जारहा हूँ और सपाटा लगाये हुए श्वशुर के घर की ओर को चलदिये। उन को प्रेम रूपी रस्सी ने ऐसा जकड कर बाध लिया था कि-लोक लज्जा और प्रतिष्ठा का कुछ भी ध्यान नही रहा। परन्तु इस निष्कपट प्रेम को देखकर परम दयालुभक्तवत्सल श्यामसुन्दर परमात्मा ने दयालु अन्तःकरण मे विचार किया कि इसका ऐसा यह निष्कपट प्रेम यदि मुझमे होजाय तो इसका कितना उपकार हो! अच्छा तो इसके इस प्रेम को अब अपनी ओर खेंचकर इसके ऊपर अनुग्रह करूँ, इधर तो भगवान् का ऐसा सङ्कल्प हुआ, उधर तुलसीदासजी के श्वशुर के घर पहुँचतेही, तहा सास आदि सब ने जामाता की ऐसी दशा देखकर विचारा कि-यह जो ऐसे नङ्गे ही चले आये हैं सो इनकी माता बूढी थी

वह कही परलोक को तो नही सिधारगई ! इस कारण लोक रीति के अनुसार वह सब अपने नेत्रोमे आंसु भर लाये । इधर तुलसीदास जीने भी देखा कि मुझे देखतेही इनके नेत्रों मे आंसू भर आये, सो कही मेरी प्रिय स्त्री का तो कुछ अशुभ नही हो गया ? ऐसा मन मे विचार कर रोने लगे,इस प्रकार एकाएक रोदन मच जाने पर दासी ने इनकी स्त्री को भी खबर करदी.वह तो पती की हानिकारक आति रूपा शक्ति को जानती ही थी सो उसने बात को छुपाने के लिये अपने माता पिता से कहला भेजा कि–मेरे पति को कभी २ ऐसा उन्माद हो जाता है तब वह ऐसेही नंगा रूप बनाए फिरते रहते है, अतः इसमे दुःखित होने की कुछ बात नही है, यह वृत्तान्त जान श्वशुर ने जामाता को वस्त्र आदि देकर घरमे स्त्री के समीप जाने की आज्ञा दी, तुलसीदासजी ने देहली मे पैर रक्खा कि–भगवान् की करुणा रूप उस स्त्री ने उसी समय निषेध करके समझाया कि हे स्वामिन् ! आप मेरे लिये इतना कष्ट सहकर और लोक लज्जा तथा प्रतिष्ठा को त्यागकर आये हो, परन्तु यह तुम्हारा प्रेम यदि परम कृपालु, भक्तवत्सल श्यामसुन्दर, कमलनेत्र, धनुर्धारी श्रीरामचन्द्र जी मे लगा होता तो कितना उत्तम और अक्षय सुख का देने वाला होता ? नाथ ! मेरा यह सुन्दर दीखने वाला शरीर वास्तव मे देखो तो मल मूत्र से भरा हुआ है, नाक, कान, मुख आदि मे अनेको प्रकार का मल है। और शरीर मे भी हाड मास रुधिर के सिवाय और क्या रक्खा है ? इस कारण ऐसे तुच्छ मलिन और नाशवान् मेरे शरीर पर के प्रेम को आप शामसुन्दर श्रीरामचन्द्र जी की ओर को अवश्य लगाओगे मुझे यह दृढ आशा है ! इतना उपदेश मय कथन सुनते ही तुलसी दास जी के विचार के नेत्र खुले और वह शान्त हो कर तत्काल मञ्जिल दरमञ्जिल चलते २ काशी जी मे आकर मणिकर्णिका पर ठहरे । घाट पर पडे हुए है बराबर मुख मे से राम राम की धुन

लगरही है और श्यामसुन्दर का दर्शन पाने के लिये किसी महात्मा को गुरु करने की उत्कट इच्छा होरही है, इतनेही मे नरहरि स्वामी प्रातःकाल का स्नान सन्ध्या करके लौटे हुए आश्रम को जारहे थे, उन्होने हृदय द्रावके राम नाम की रटना को सुनकर समझा कि-यह कोई आर्त्त, और प्रेमी पुरुष है तत्काल समीप मे गये और वृत्तान्त बूझा। तब तुलसीदासजीने आद्योपान्त अपनी सब कहानी सुनाई और प्रार्थना करी कि-इस शरीर को भगवान् श्याम सुन्दर का दर्शन कराने के विषयमे यदि आप निश्चय दिलाते हैं तब इस शरीर को रखता हूँ, नही तो अभी गङ्गार्पण करे देता हूँ यह सुनकर नरहरि स्वामी ने विचारा कि-जब भक्त के नेत्रो मे प्रेमाश्रु आजाते है तब परम कारुणिक परमात्मा अवश्यही सुध लेते है, फिर यह तो अत्यन्त आतुर और सकल शरीर अर्पण करने को उद्यत होरहा है तो क्या इसको भगवत्प्राप्ति नही होगी? ऐसा विचार कर कहने लगे कि उठ कुछ चिन्ता न कर,इस जन्म और इसी शरीर मे ही तुझको दर्शन होगा। तदनन्तर गुरुके चरणो पर मस्तक रखकर उनकी टहल सेवा करते हुए तुलसीदासजी ने ९। ६ वर्ष मे उत्तम रीति से वेद शास्त्रादि पढे और परम अनुरागरूप भक्ति का साधन किया। एक दिन नाव मे बैठकर नित्यक्रिया करने के निमित्त गंगा के परले पार गये तहा शौचक्रिया से निवट कर शेष बचे जलको फेंक देने पर उस अपवित्र जल से एक पिशाच की तृप्ति हुई, तब उसने आग्रह करके कहा कि-मुझ से कुछ सोना-हीरा-मोती आदि धन मागो, तुलसी दास जी ने कहा कि मुझको धन की आवश्यकता नही है, यदि शक्ति होतो मुझको श्री श्यामसुन्दर भगवान् का दर्शन कराओ, पिशाचने कहा-यह तो मुझसे होना कठिन है परन्तु मै तुमको एक उपाय बताता हूं, उसके अनुसार कार्य करिये निःसन्देह आपकी इच्छा पूरी होगी वह उपाय यह है कि-आजकल गंगा तटपर वाल्मीकी रामायण

की कथा होती है, तहा श्रोताओ मे एक ओर को, जिसका शरीर कोढ से गलरहा है ऐसा पुरुष आकर बैठता है, कथा समाप्त होने पर तुम उसके चरण पकड लेना छोडना मत, बस वह तुम्हे श्रीरामचन्द्र जी के दर्शन करादेगा । तिसी प्रकार तुलसीदास जी कथा समाप्त होने पर उसके पीछे २ जाने लगे, कुछ देर मे नगर के बाहर पहुँचने पर उस कोढी पुरुष ने बूझा कि–तुम मेरे साथ क्यो आते हो ? तुम को क्या चाहिये ? और मुझ ऐसे पुरुष से क्या मिलसकता है ? तब तुलसीदास जी ने चरण पकड कहा कि–महाराज ! मुझे श्रीरामचन्द्र जी के दर्शन करा दीजिये,तब उस कोढी ने यह समझ कर कि–अब यह मेरा पीछा नही छोडेगा, तत्काल कोढी का रूप त्यागकर अपना साक्षात् रूप धारण करलिया,वह साक्षात् पवनकुमार हनुमान् जी थे उन्होंने तुलसीदास के पूर्व भक्तिभाव और दृढ निश्चय को जानकर ढाढस दिया कि–तुमको श्रीरामचन्द्र जी का दर्शन होगा इसमे कुछ सन्देह न समझो और जब मेरा स्मरण करोगे तब मे भी तुमको दर्शन दूंगा । तिसके कुछ दिन पीछे तुलसीदास जी गंगातटपर रामायण की रचना करते समय लेखनी कान मे रखकर कुछ विश्राम ले रहे थे उसी समय गंगा के परलेपार घोडेपर सवार एक श्यामसुन्दर मूर्त्ति को देखा परन्तु चकित होकर मनमे विचारा कि यह कोई राजकुमार है, तदनन्तर वह मूर्ति तहां ही अन्तर्धान होगई इसके अनन्तर और कुछ दिन बीतने पर तुलसीदास जी सोचने लगे कि–देखो इतने दिन बीत गये परन्तु अभी तक श्रीरामचन्द्र जी का दर्शन नही हुआ और चित्त मे अकुलाकर पवनकुमार की स्तुति कर के स्मरण किया सो उसी समय हनुमान जी प्रकट हुए, तुलसीदास जी ने हाथ जोड कर विनय करी कि–भगवन् ! क्या कारण है जो आपने अभी तक दर्शन नही कराया तब महाबीर जी ने कहा कि–अमुक दिन गङ्गा के परले पार घोडे पर सवार श्यामसुन्दर की मूर्ति प्रगट हुई थी फिर तुम नही कैसे

कहते हो, तब तुलसीदास ने किसी राजपुत्र का सन्देह होना निवेदन करके बडे करुणास्वर से परमात्मा की प्रार्थना करी कि—हे श्याम-सुन्दर! परमकृपानिधे! मै कैसा अभागा हूँ कि आपने स्वयं दर्शन दिया परन्तु मुझे आपके दर्शन का पूर्ण लाभ नही हुआ मेरे रोम रोम मे पाप भरा है परन्तु हे दीनबन्धो! आपने अजामिल आदिका उद्धार करा है और शरणागत को नही त्यागते हो ऐसा वेद शास्त्र कहते है, सो हे कृपासिन्धो! मैं आपके चरणो की शरण मे आया हूं, इसलिये आप मुझे दर्शन देकर मेरा उद्धार करो ॥

तब महावीरजी ने उनको हृदय से लगाया और समझा बुझाकर कहा कि तुम धीरज धरेरहो, फिर साक्षात् दर्शन होनेका अवसर आवेगा। अब तुम चित्रकूट को जाओ और तहा प्रभुकी इसीप्रकार सेवा करते रहो बस थोडे ही दिनो मे श्यामसुन्दर भगवान् का दर्शन होगा।तिसी प्रकार चित्रकूट पर जाकर तुलसीदासजी को प्रभु सेवा करते हुए बहुत दिन बीत गए परन्तु दर्शन होने का अवसर न आया एकदिन चन्दन घिस रहे थे कि अन्तःकरण प्रभुका दर्शन करने के लिए आकुल व्याकुल होगया और नेत्रो मे से आंसुओ की धारा चलने लगी। जब योगी संन्यासियो को काठ की माला के दाने फिराने से प्रभुके दर्शन का योग प्राप्त होता है तब जो अपने आंसूरूपी दानो की माला को फेर रहा है इसको क्या प्रभु अपना दर्शन न देगे? ऐसे असीम प्रेम को जान कर भगवान् श्यामसुन्दर के मनमे करुणा का प्रवाह बहने लगा और अब इस भक्त शिरोमणि का अन्त देखने का समय नही है ऐसा विचारकर तत्काल आठवर्ष के बालक का परम मनोहर रूप धारकर तुलसीदासजी के समीप आये और बाबाजी कहकर उनको नमस्कार करा तथा पास बैठ गए। तुलसीदासजी उस सुन्दर बाल-स्वरूप को देखकर बडे प्रसन्न हुए, परन्तु फिर सन्देहग्रस्त होजाने के कारण तथा मन को व्याकुलता होने से उचित ध्यान नहीं हुआ। तब तो महावीर जी को चिन्ता हुई कि क्या यह सुअवसर भी योही

जायगा ? इस कारण आप तोता बनकर समीप के वृक्षपर बैठ गए, इधर बालरूपी श्रीरामचन्द्रजी ने तुलसीदासजी से बूझा कि—बाबाजी मैं अपने हाथ से तुम्हारे चन्दन लगादूं क्या ? तुलसीदासजी ने कहा अच्छा, उसी समय प्रभु श्यामसुन्दर अपने कोमल हाथों से उनके मस्तक पर चन्दन लगाने लगे, तब तोते के रूप मे बैठे हुए हनुमान् जी ने कहा कि—

चित्रकूट के घाट पर, भइ सन्तन की भीर।
तुलसिदास चन्दन घिसैं, तिलक देत रघुवीर॥

ऐसा कहने पर भी तुलसीदास का ध्यान उधर को नहीं गया तब फिर इस दोहे को पढा तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी ने कहा बाबाजी अब मैं तुम्हें दर्पण दिखाता हूँ दर्पण दिखाते मे तुलसीदासजी को भगवान् श्यामसुन्दर की तेजस्वी अँगुलिये दीख गई और इधर शुकरूप हनुमान जी ने उस दोहे को तिसरा कर पढा तब तो तुलसीदासजी को ज्ञान हुआ कि—यही साक्षात् श्यामसुन्दर कमलनेत्र भगवान् श्रीरामचन्द्रजी हैं और प्रार्थना करके साक्षात् दर्शन का दिव्यसुख पाया। सार यह है कि श्रीनरहरीस्वामी के उपदेश से तुलसीदासजी का भक्तिरस कैसा बढा जिससे वह परमप्रेमी भक्त बनकर प्रभु से मिल गये इसमें अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। तथा अपने प्रेमी भक्त के लिए परमदयालु परमात्मा का अनेकों रूपों में अवतार होता है यह भी प्रकट होगया।

आजकल के सायन्टिफिक [शास्त्रज्ञ] पुरुषो को यह असम्भव प्रतीत होगा परन्तु आत्मा क्या है और सन्ध्या, प्राणायाम, भक्ति आदि साधनो से आत्मा की उन्नति करके परब्रह्म की प्राप्ति किस प्रकार होती है, यह बात मै अपने दूसरे व्याख्यान मे कहूँगा। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

स्वामी हंसस्वरूप।

❀ ब्रह्मविद्यासे सन्ध्याका सम्बन्ध ❀

त्वमादिदेवःपुरुषःपुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्
वेत्तासि वेद्यश्च परञ्च धाम त्वया ततं विश्वमनन्तरूप॥

हे प्रिय सभासद गण ! सनातनधर्मरूपी रेलगाडी, सभारूप स्टेशन पर हर्षरूप सीटी बजाती हुई आरही है और उपदेशक रूप स्टेशन मास्टर उपदेश रूप टिकट देकर, ईश्वर के चरणारविन्दरूप सदर स्टेशनपर पहुँचाने के लिए तैयार है। तैसेही ध्यानरूपी तार कुण्ड-लिनी से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त खबर देने को तैयार है इस स्टेशन पर ८४ लाख योनिरूप भिन्न२ प्रकार के टिकट दिये जाते है और उन मे फर्स्टक्लास [१ दर्जे] का टिकट मनुष्य योनि है ! उसके आश्रय से धर्मरूप सर्वोत्तम गाडी पर चढने का उद्योग करना चाहिए, यदि यह गाडी हाथ से निकल गई तो फिर पछतावाही रह जायगा, इस लिए, आगे के विचार की ओर आप लोग सावधान रहे ।

इन विद्याओ मे ब्रह्मविद्या सर्वोत्तम विद्या है, वह अन्तकाल के लि-ए कल्याण करनेवाली है और इस विद्याको जाननेवाले ब्रह्मज्ञानी होते है। पूर्वकाल मे अग्निरूप गायत्री के कारण ब्राह्मण परमश्रेष्ठ हुए, अपने तेजोबल से सबके पूज्य हुए, अधिक तो क्या बडे २ राजा भी हाथ जोडे हुए उनके सामने खडे-रहते थे और उनको अपने राजसिंहा-सन पर बैठाते थे। राजा युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञमे भोजन कराने के लिए ब्राह्मणो को बुलाया, तब ब्राह्मणो ने स्पष्ट कहदिया था कि-हम ऐसे यज्ञ मे भोजन करने को नही आते, परन्तु अब वह समय और ब्राह्मणो का वैसा तेज नही है, ब्रह्मविद्या के न होने से ब्राह्मणो की हीन दशा होरही है। संन्यासी आदिको की भी यही दशा है। पहिले परम आदर सत्कार होता था, परन्तु अब कमण्डलु लेकर द्वार २ घूमने पर भी कोई नही बूझता ! क्षत्रियो की भी ऐसी ही दशा है,

जो क्षत्रिय अपनी क्षात्रविद्या के तेज से बेधडक शत्रुओ के ऊपर टूट पडते थे, और तोप की नाल मे भी हाथ देदेते थे, वह क्षत्रिय आज तेजोहीन होकर एक साधारण बन्दूक का शब्द सुनने पर भी अन्धेरी कोठरी मे छुपकर बैठने का उद्योग करते है, एक ब्रह्मविद्या के न होने से ही दोनो वर्णों की यह दशा हुई है। वैश्यो की भी यही दशा है, और शूद्रों मे तो सर्वथाही विपरीत भाव होगया है, वह शास्त्र आज्ञा की कुछ परवाह न करके अपनी बुद्धिसे उच्च वर्णों के आचार विचारो को ग्रहण कर अपनेको उच्च कहनेलगे है। देखो रेल म जब कोई ब्राह्मण बैठा होता है और उसके समीप कोई स्पर्श के अयोग्य शूद्र आकर बैठता है तब ब्राह्मण उससे अलग को बचेहुए बैठनेको कहता है तो इसके उत्तर मे वह कहता है कि-मैंने भी टिकट का मूल्य दिया है इसके सिवाय मैं भी मनुष्य हूँ तुम भी मनुष्य हो तब बिचारा ब्राह्मण अपना लोटा पुस्तक उठाकर एक कोनेम को जा बैठताहै, तब वह शूद्र महाशय ब्राह्मण की ओर को और भी चरण फैलाकर बैठने लगते है सार यह है कि-जैसे हम लोगो की पोशाक मे अन्तर पडगया है तैसे ही वर्णो मे भी गडबडी हुई है। पहिले चरणोतक लटकता हुआ अङ्गरखा और पैर के पंजेमात्र म भरकर आनेवाला जूता पहिना जाता था, वह रीति बदल कर जूता घुटनो तक का होते २ अब सब शरीर चमडे से ही बाधा जाता है, जघाओ तक जूता चमडे का कमर मे पेटी चमडे की कमर से कन्धों तक पतलून बांधने के तशमे चमडे के शिरपर बलायती टोपीमे चमडा और अङ्गरखा कोटका रूप पाकर कमर तक ही रह गया वर्णों मे भी ऐसे ही उलटी दशा होगई है। ऐसी शोचनीय दशा आने का कारण केवल हमारा कर्मलोप है। जैसे किसी वर्णमाला की लिपि मे का पहिला अक्षर फटकर या पुस्तक को कीडे के खालेने के कारण नष्ट होकर उसमे का दूसरा अक्षर "ख" ही उस पहिले के स्था-

न मे होजाय और ऐसा विपरीत ज्ञान होजाय कि— पहिले घ,ख है हुआ वह "का" यही है तथा इसी प्रकार आगे ' ग ' ख और ' घ ' ग मान लिया जाय तो केवल एक वर्ण की अव्यवस्था से भाषा मे सर्वत्र अव्यवस्था होकर अर्थ का अनर्थ होसकता है तैसे ही ब्रह्मविद्या को प्राप्त करने की आदि साधनरूप जो हमारी सन्ध्या तिससे विमुख होने के कारण हमारी सब प्रकार की व्यवस्थाओ मे गडबडी पडगई है । जैसे अङ्गरेजी भाषाके मूल २६ अक्षर है तैसेही ब्रह्म विद्या के भी १ अहिंसा २ सत्य ३ अस्तेय (चोरी न करना) ४ ब्रह्मचर्य ५ क्षमा ६ धृति (धीरज रखना) ७ दया ८ आर्जव [सरलपना अर्थात् अहंपने को त्याग कर सब से दीनता पूर्वक बर्ताव करना] ९ मिताहार [थोडा भोजन करना] १० शौच [शरीर और चित्त को पवित्र रखना] ११ तप १२ सन्तोष १३ आस्तिक्य (शास्त्र और गुरु के उपदेश मय वाक्यो पर विश्वास रखना) १४ दान १५ ईश्वर का पूजन १६ सिद्धान्त वाक्य श्रवण [उपनिषदादि को सुनते रहना] १७ ह्री [बुरे कार्यों मे लज्जा करना और सत्कार्यो मे किसी की भी लाज न करना] १८ मति(संसारिक सुखो का तो क्या स्वर्ग आदि ऐश्वर्य का भी लोभ न करके " ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है " ऐसी दृढ बुद्धि रखना) १९ जप २० हुत [तमोगुणी रजोगुणी पुरुष पशुओ का और फलादिको का हवन करते है परन्तु ज्ञानी पुरुष अन्तर्दृष्टि करके विषयोका इन्द्रियोमे और इन्द्रियों का अन्तःकरण मे हवन करते है]२१ आसन २२ प्राणायाम २३ प्रत्याहार (चित्त रुककर शब्दादि विषयो की ओर को चलायमान नही होता है तब इन्द्रिये भी रुक जाती हैं और अपने २ विषयो को ग्रहण नही करती है इसका नाम प्रत्याहार है) २४ धारणा [नाभि चक्र आदि विशेष स्थान मे चित्त को स्थिर करना] २५ ध्यान (जहा चित्त की धारणा करी हो तहा ही उसकी एकाग्रता करके दूसरी ओर को न जाने देना) और२६समाधि (ध्यान जब ध्येयके

स्वरूप का होकर अन्य पदार्थ का ज्ञान भिन्न रूप से कुछ नहीं रहता है और ध्यान तथा पदार्थ दोनों का एकाकार होजाता है तो उसको समाधि कहते हैं) यह छब्बीस ब्रह्मविद्या के मूल अक्षर हैं, भगवान् पतञ्जलि ने—"यमनियमासन प्राणायाम—प्रत्याहार—धारणा-ध्यान—समाधयोऽष्टावङ्गानि" इस प्रकार योग [ब्रह्मविद्या] के आठ अङ्ग कहे है इन मे पहिले दो अङ्ग यम और नियम का हठयोगप्रदीपिका आदि ग्रन्थो में विस्तार के साथ वर्णन करा है और यम अहिंसा आदि दश भेद तथा नियम के तप आदि दश भेद कहे है इस प्रकार दोनो मिलकर बीस अङ्ग होते है और शेष आसन आदि मुख्य छः अङ्ग इस प्रकार सब २६ अङ्ग है और ब्रह्मविद्या के मूल अक्षर अर्थात् कटकोडे है ॥

एक साथ जगत् भर के सब मनुष्यो से यदि बूझाजाय कि—तुमको क्या चाहिये ? तो सब यही कहेगे कि—हमे सुख, आयु, नीरोगता आर ब्रह्मप्राप्ति (मोक्ष) यह चार पदार्थ चाहिये । इन मे भी सब से पहिले आयु की विशेष आवश्यकता है, बिचार देखो कोई अत्यन्त आसन्नमरण होकर पडा हो और डाक्टर आकर कहे कि—तुझ अच्छा करने के लिये पहिले तेरी भुजा गर्दन मे शस्त्र से छेद किया जायगा फिर औषधि लगाई जायगी तो वह यही उत्तर देगा कि—महाराज मेरी भुजा को चाहे, चीर डालो परन्तु कृपा करके गर्दन को बचादो, न जाने कदाचित् गर्दन से मर्मस्थान मे शस्त्र लगने से मरण ही होजाय, सार यह है कि—बुढापे मे भी उसको जीवित रहने की ऐसी प्रबल इच्छा होती है, इस कारण मनुष्य की सब से पहिली प्रिय वस्तु आयुही है । इसी प्रकार शेष तीनो बातो की भी कौन भाग्यवान् इच्छा न करेगा ? यह चारो प्रकार के लाभ सन्ध्यावन्दन से होते हैं, सारांश यह है कि ब्रह्मरूपी हीरा हमारे पास ही है, परन्तु उसका बतानेवाला श्रेष्ठ गुरु चाहिये, इसमे

उदाहरण है कि-एक समय एक गडरिया भेड चराने को जङ्गल मे गया दैववश वहा उसने एक पडा हुआ हीरा पाया, परन्तु उसको हीरे की पहिचान नही थी, इस कारण उसने एक चमकीले कांच का टुकडा समझ के डोरे में बांधकर अपनी भेड के गले मे पहिरादिया। फिर कुछ दिनो मे वहा दुष्काल पडा और लोग अन्न के लिये तरसने लगे तो इस बिचारे की दुर्दशा की दुर्दशाका तो कहनाही क्या? पाव भर अन्न भी मिलना कठिन होगया, तब तो दीन हीन होकर घरमें पडरहा इसी अवसर मे उसके यहा परदेश से कोई सम्बन्धी आया, वह अपने संबन्धी की ऐसी दुर्दशा देखकर बडा दुःखित हुआ, इतने ही मे वह भेड उसकी दृष्टि के सामने आगई और उसके कण्ठ मे बँधा हुआ हीरा भी दीखा, तब उसने बूझा कि भाई! यह किसकी भेड है और इसके गले मे क्या बाधा है? गडरिये ने उत्तर दिया कि-यह मेरी भेड है और इसके गले मे मैने इस २ प्रकार से मिली हुई चमकदार कांच बाध दी है तब तो वह कहने लगा कि-भाई! यह छोटी वस्तु नही है यह हीरा है और तू बाजार मे लेकर जायगा तो तुझको सहज मे ही इसके२०।२५सहस्र की जगह आधी कीमत तो भी मिल जायगी, तब तो वह उसी वख्त बाजार को गया और उस हीरे को बेचकर बहुतसा धन लाया जिस से उसका सब कष्ट दूर होकर वह एक धनवान् बनगया। इसी प्रकार ब्रह्मरूपी रत्न हम सबो के कंठ मे बँधा हुआ है, परन्तु हम उस बहुमूल्य मणि को जानते नही है, इस कारण ही हमारी ऐसी दीन हीन दशा होरही है तथापि आशा है कि-सच्चे गुरु के मिलने पर हमे उस का सच्चा मूल्य मालूम होजायगा जिस से हमको ऊपर कहेहुए चार प्रकार के लाभ होगे। सार यह कि-संध्या ही ब्रह्मविद्या की प्राप्ति करानेवाली है और इसकी उत्तम रीति जानने के लिए हमको उद्योग करना चाहिए। अब हमारे सन्ध्या करने से यदि हमको यह चार लाभ होगे तो उसको उचित रीति से

करने के लिए, पहिले हमारे शरीर की कैसी रचना है, इस विषय में थोडासा विचार करते है।

यह स्थूल शरीर किलारूप है, पृथ्वी आदि पाच तत्त्व इसकी दीवारे है चमडा, रुधिर, मास, हड्डी आदि सात धातुएँ खाई है चतुर्दलचक्र षट्दलचक्र आदि सात मंजिले है साढे तीन लाख नाडियो का परकोटा बना है। सात मंजिले यह हैं (१) गुदा और मूत्रेंद्रिय के मध्य मे चतुर्दल चक्र है इस को (Pelvic plexus) अर्थात् आधारचक्र कहते है इसके अधिष्ठातृदेव भगवान् गणेश है। और इस चक्र मे ज्योतिष्मती भगवती कुण्डलिनी है। (२) नाभि के नीचे लिंगके पश्चिमभाग में षट्दलचक्र है इसको (Hypogastric plexus) अर्थात् स्वाधिष्ठानचक्र कहते हैं इसके अधिष्ठातृदेवता भगवान् ब्रह्मा है। (३) नाभि मे दशदलचक्र है इसके (Epigastric plexus) अर्थात् मणिपूरचक्र कहते है इसके अधिष्ठातृदेवता भगवान् विष्णु है। (४) हृदय मे द्वादशदलचक्र है इसको (Cardiac plexus) अर्थात् अनाहतचक्र कहते है इसके अधिष्ठातृदेवता भगवान् शिव है (५) कण्ठ मे षोडशदलचक्र है इसको (Carotid plexus) अर्थात् विशुद्धिचक्र कहते हैं इसके दाई ओर इडा और बाई ओर पिंगला तथा मध्य मे सुषुम्णा है इसके अधिष्ठातृदेवता रुद्र है (६) भृकुटिस्थान मे द्विदलचक्र है इसको (Medulla oblongata) अर्थात् आज्ञाचक्र कहते है और कोई इसको बिन्दुस्थान भी कहते है (७) मस्तक मे सहस्रदलचक्र है इसको (Brain) अर्थात् ब्रह्मचक्र कहते है इसमे संविद्रूप सच्चिदानंद है।

इस प्रकार यह ७ मंजिले है। किसी को शङ्का होगी कि शरीर के भीतर यह कमल और उनकी पखुरियें या चक्र है यह कैसे होसकता है? क्या सत्यही कमल और चक्र आदि है? इसका उत्तर यह है कि वह कमल आदि तालाव मे के कमल आदि की समान नहीं है, किन्तु उन स्थानो मे बहुत सी नाडिये इकठी होकर जो एक

जाल बनगया है उसका आकार कमठ की समान है । तरबूज के डंठल की समान मस्तक पर लटकती हुई शिखा केवल मूर्खता का दृष्टान्त है ऐसा कितने ही भिन्न धर्मी और नवशिक्षित कहते है,परन्तु सनातन धर्म मे यह एक मुख्य बात है जैसे किले मे राजमन्दिर के समीप वा रत्नमय खजाने के चारो ओर सिपाहियो के पहिरे का बन्दोबस्त होता है और ऊपर ध्वजा फडकती रहती है तैसे, ही ब्रह्म-रूपी रत्न व राजा मस्तक मे के सहस्रदल चक्र मे चारो ओर से प्रबन्ध होकर रहता है, और तहा उसको जतानेवाली शिखारूप ध्वजा फडक रही है । इस कारण ही उस राजारूप, वा रत्नरूप ब्रह्मको पाने के लिए हम जब सन्ध्या करनेको उद्यत होते है उस समय पहिले ब्रह्म सूचक गायत्री मन्त्र से शिखा को बाधना कहा है।

ऊपर वर्णन करे हुए शरीर रूपी किले मे परमात्मारूपी हीरा है उसको लेने के लिए मानो जीवरूपी चोर रातदिन उद्योग करता रहता है उसको एक के पीछे दूसरे खाई आदि मे रुकना पडता है हर-एक जीव इनके पार नही होसकता कदाचित् उसने थोडासा उद्योग किया भी तो उसकी दशा ठीक नही रहती है अर्थात उपरोक्त पञ्च-तत्वो की दीवारो मे अथवा रक्त मांसादि की खाइया मे ज्वर,खासी आदि से हानि पहुचने लगती है और इससे एक प्रकार की स्थिरता होकर कभी २ शरीर के नाश होने का भय होता है । पहिले समय वाल्मीक आदि ऋषियो के शरीर पर बमई आदि बन गई परन्तु वह उस की कुछ परवाह न करके ब्रह्म मे ही मग्न रहते थे वैसी शक्ति आज कल हममे नही रही है हममे ऐसी शक्ति न रहने का कारण क्या है? क्या पहिले पुरुष ईश्वर को लालच और रिश्वत देते थे और हम नही देते है, इस कारण वह हमारी ऐसी दुर्दशा करता है ? प्यारे सभासदो ! यह बात नही है परन्तु हमारे पूर्व पुरुष जिस निष्ठा मे रहते थे वह निष्ठा हम मे नही रही इस कारण ही ऐसी

हीन दशा हो रही है । यद्यपि दशा बहुत खराब है परन्तु उद्योग करने से हम अपना बहुत कुछ सुधार कर सकते है । अब, जैसे किसी राजा से मिलना होता है तो पाहिले द्वारपाल से मेल करने पर युक्ति से कार्य सिद्ध होता है, तैसे ही शरीररूपी स्थान के प्राणरूपी मुख्य द्वारपाल से हम को मेल करना चाहिए । सब इन्द्रिय आदिकों मे प्राण ही श्रेष्ठ है इस विषय पर छान्दोग्य उपनिषद् मे इस प्रकार का इतिहास है कि–

योह वै जेष्ठं च श्रेष्ठं च० ॥१–५॥ अथ ह प्राणा अहऽश्रेयसि व्यूदिरेऽहऽश्रेयानस्म्यहऽश्रेयानस्मीति ॥ ६ ॥ तेह प्राणाःप्रजापतिं पितरमेत्योचुर्भगवन् को नः श्रेष्ठ इति,तान्होवाच यस्मिन्व उत्क्रान्ते शरीर पापिष्ठतरमिवहश्येत स वः श्रेष्ठ इति ॥७॥ सा ह वा गुच्चक्राम सा संवत्सरं प्रोष्यपर्येत्योवाचकथमशकत- र्ते मज्जीवितुमिति यथाकला अवदन्तःप्राणन्तःप्राणेन पश्यन्तश्चक्षुषा शृण्वन्तःश्रोत्रेण ध्यायन्तो मनसैवमि- ति प्रविवेश हावाक् ॥८॥ चक्षुर्होच्चक्रा० ॥९–११॥ अथ प्राण उच्चिक्रमिषन् स यथा सुहयः पड्वीशशंकू- न्सांखिदेदेवमितरान् प्राणान्समखिदत्त ऽहाभिसमे त्योचुर्भवन्नेधि त्वं नःश्रेष्ठोसि प्रोत्क्रमीरिति॥१२॥ अथ ह० ॥ १३–१५ ॥

यह सम्वाद बहुत बडा है परन्तु इसका तात्पर्य यह है कि एक समय सब इन्द्रियो मे श्रेष्ठ कौन है इस बात का विवाद होकर यह निर्णय करने के लिये ब्रह्मा जी के पास गई तब ब्रह्मा जी ने

कहा तुम मे से हरएक एक २ वर्ष तक शरीर से बाहर रहो तब जिसके न होने से काम अटकेगा मै उसीको श्रेष्ठ समझूंगा, तिसी प्रकार सब इन्द्रिये बारी २ से बाहर निकल गई परन्तु काम न अटका नेत्र जाने पर अन्धे की समान, कान जाने पर बहिरे की समान इत्यादि सब व्यवहारो का काम निर्वाह होगया, परन्तु अन्त में " सोहम् सोहम् " करनेवाला प्राण ही श्रेष्ठ ठहरा, क्योंकि इसके जरा चल विचल होते ही सब इन्द्रियों का बन्द होनेलगा और शरीर पञ्च तत्त्व मे मिलनेलगा नष्ट होनेलगा तब सब इन्द्रियो ने प्रार्थना करी कि हे प्राण ! तू हमसे अलग न हो सार यह है कि प्राणही श्रेष्ठ ठहरा और उसको शरीर का द्वारपाल बनाया । यह केवल जागतेही मे अपना पहिरा नही देता है किन्तु सोते समय भी अपना काम करता रहता है, और उस समय चारो ओर सुनसान होने के कारण मानो चोरो का अधिक भय समझकर अपना काम बडे जोर से चलाता है। बस इस पहिरेदार से मित्रता करनेपर ही शरीररूप किले मे स्थित परमात्मारूपी हीरा सहजमें ही हाथ लगजायगा । प्राणायाम करनाही प्राणो से मित्रता करना है और वह प्राणायाम हमें सन्ध्या बंदन में ही सीखना पडता है इस कारण सन्ध्याही हमारे लिए ब्रह्मप्राप्ति का साधन है इसके द्वारा ही हमे ईश्वर की प्राप्ति होगी, अतः यह संध्या ठीक २ विधिपूर्वक होनी चाहिए, आजकल बहुत से लोग जैसे सटपट करके सन्ध्या कर लेते है वह ठीक नही, आजकल संध्या के समय प्राणायाम करनेवाले आसन या पटले पर नाक कान को हाथ लगा थोडासा पानी छोड पढते है गायत्री मन्त्र, ध्यान रहता है चूल्हे की ओर, दिखावे को परत्मा का ध्यान करते हैं परन्तु ध्यान होता है कच-हरी या व्यापार का, ऐसा करना केवल शुष्कवाद है इससे कुछ लाभ नहीं होसकता, अतः इस अन्धपरम्परा को छोडकर वास्तविक रीति से संध्या करने पर ही आत्मोन्नति होगी ।

परम हितकारिणी प्राणायाम की क्रिया को योग्य रीति से करने पर प्रारम्भ मे कठिनता प्रतीत होगी, परन्तु अभ्यास से सब कुछ सिद्ध होसकता है इस कारण जिस कार्य के प्रारम्भ मे कष्ट हो और परिणाममे सुख मिले उसको स्वीकार करना ही विचारवान् का लक्षण है, परन्तु अज्ञानी पुरुषो को उसका तत्व नही प्रतीत होता है। बालक को पाठशालामे भेजने पर जब गुरु अक्षर सिखाने लगते है उस समय वह सिखाना उस बालक को इतना कष्टदायक प्रतीत होता है कि वह उस सीखने से भागता है और चित्त मे पिता और गुरु को शत्रु के समान समझने लगता है, परन्तु अन्त मे जब बडी बडी परीक्षाओ के पार होकर बहुतसा धन पाता है तब परम आनंदित होता हुआ कहता है कि मेरे माता पिता और गुरु को धन्य है जिनकी कृपासे मै इस योग्य हुआ । ब्रह्मविद्या के विषय मे भी यही बात है प्रारम्भ मे यद्यपि यम नियम प्राणायाम आदि कार्य कठिन प्रतीत होते है परन्तु सब अभ्यास करते करते वह सिद्ध होजाते है तो अन्त मे उनसे सच्चा सुख मिलता है । पहिले कहा ही था कि ब्रह्मविद्या के २६ अक्षर है जैसे कोई भी भाषा सीखनी हो तो उसकी सम्पूर्ण वर्णमाला सीखनी पडती है और उस वर्णमाला का ज्ञान होने परही वह भाषा समझ मे आती है, तैसेही ब्रह्मविद्या को प्राप्त करने के लिये उसके अहिंसा सत्य आदि वर्ण भी सीखने चाहिये उन वर्णो मे अहिंसा स्वरो की समान है, उसके बिना व्यंजन रूप अन्य गुणो से कुछ काम नही चलसक्ता । मै एक व्याख्यान अहिंसा विषय मे ही विस्तारके साथ अलग कहूँगा, इस कारण अब इस ब्रह्मविद्या की वर्णमाला मे का दूसरा वर्ण जो सत्य है उसके विषय मे कुछ कहता हूँ ।

मनुष्य को सदा सर्वदा सत्यही बोलना चाहिये यदि सत्य न हो तो इस जगत् मे के व्यवहार कभी चलही नही सकते, और पद पद पर

अव्यवस्था होकर मनुष्य समाज और उन मनुष्यों के कुटुम्बों की दशा भी बिगड जाय इस कारण ब्रह्मविद्या के प्राप्त करने की इच्छा करने वालो को यह गुण अवश्य ही सम्पादन करना चाहिये श्री मनु भगवान् ने कहा है कि-

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।
प्रियञ्च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः॥

अर्थात् सत्य बोले, मधुर बोले, और सत्य भी ऐसा बोले जिसमे दूसरे को कठोर प्रतीत न हो, अर्थात् उससे किसी का चित्त न दुखे दूसरे के चित्त को दुखाने वाला सत्य भी दोषदायक होता है। समझ देखो कि-कोई पुरुष डेढ सेर भोजन करता है उससे यदि कोई कहे कि वाह आप तो १॥ सेर पर हाथ फेरते है? तो यद्यपि यह कहना सत्य है परन्तु ऐसा सुनकर दूसरे पुरुष को क्रोध आवेगा। इस कारण यदि ऐसा कहा जाय कि-महाशय! आप की पाचन शक्ति औरो की अपेक्षा श्रेष्ठ है, तब उसको असह्य प्रतीत न होकर अपनी प्रशंसा प्रतीत होगी, तिसी प्रकार जब कोई प्रवीण न्यायाधीश किसी फांसी के कैदी को हुकम सुनाता है तो वह सुनाने के अनन्तर फिर कहता है कि तेरे ऊपर मुझे बडी दया आती है और मेरी इच्छा थी कि तुझको इस दण्ड से मुक्त करदूँ परन्तु क्या करूँ? मै कानूनसे बँधा हुआ होने के कारण विवश हूँ, तो मरण काल मे भी वह कैदी उस न्यायाधीश को बुरा नही कहता है। सार यह है कि सत्य होने पर भी जो प्रिय प्रतीत हो उस वचन को ही बोलै, ऐसा होते २ कदाचित् अप्रिय होने के भय से मनुष्य असत्य प्रिय वचन न बोलने लगे। इस कारण मनु जी कहते है कि प्रिय होने पर भी जो असत्य हो उस वचन को कभी न कहै। यह सत्य बोलने के महत्त्व का नियम ध्यान मे रखना चाहिये इस विषय मे दृष्टान्त है कि-एक पुरुष को बैगनो का साग प्रिय लगता था। इस कारण उसने अपने सेवक से कहा कि परमेश्वर ने

यह साग मनुष्य के लिये बहुबही अच्छा बनाया है, तब वह सेवक स्वामी की मनसा देख कर कहने लगा कि हा साहब इस कारण ही परमेश्वर ने इस उत्तम फल के ऊपर छत्र रख दिया है। उस दिन उसने बैगनो का साग बनवाकर खूब खाया और दूसरे दिन उससे विकार होकर दुःख बढने लगा तब तो वह बोला कि यह बड़ा बुरा साग है। यह सुन उस खुशामदी सेवक ने कहा हां महाराज इस कारण ही परमेश्वर ने इस के मुख पर काटे छेद दिये है इतना सुन वह स्वामी अचम्भे मे होकर कहने लगा कि क्योरे कल तैंने बैगनो की प्रशंसा की थी और आज ऐसी निन्दा करता है इसमे तेरा कौनसा कहना सत्य समझा जाय ? उसने उत्तर दिया म बैगनो का नौकर नहीं हूँ! मै तो आपका सवक हूँ, इस कारण जो बाते आपको प्यारी लगे वही कहता हूँ, सार यह है कि ऐसी असत्य मिली मुँहदेखी सच्ची बात को त्यागना ही अच्छा है। परन्तु आज कल ऐसी मुँहदेखी बातो का प्रवाह अधिक बढगया है जिससे मनुष्य समाज की बडी हानि होती है, जहा तहां हरएक काम में पालिसी देखने मे आती है परन्तु जब यह कुचाल बन्द होगी तबही मनुष्य समाज का कल्याण होगा और ब्रह्मविद्या मे तो ऐसी कुचाल का लश भी ठीक नही। तथापि यह बात ठीक है कि जिसका ऐसा असत्य बोलने का स्वभाव पडगया है वह एक दिन मे दूर नही होगा परन्तु उसको उस कुचाल के त्यागने का हर समय ध्यान रखना चाहिये। आज बीस॰भाग असत्य और पाच भाग सत्य, बोलता है तो कल से उन्नीस भाग असत्य और छे भाग सत्य,आठ दिन के अनन्तर अठारह भाग असत्य और सात भाग सत्य बोले इस प्रकार बढातेर अन्तमे पचीसों भाग सत्य बोलने लगेगा। इस पर कोई शङ्का करे कि सन्ध्या मे पापो को दूर करने वाला मन्त्र कहा है उससे रात्रि के (My dear friend take glass for my love)

इत्यादि पापो का प्रक्षालन प्रातःकाल की सन्ध्या से और दिनभर झूठ बोलना जेब काटना झूठी दस्तावेज बनाना गरीबो की गरदन मरोडना इत्यादि पापों का प्रक्षालन सायं सन्ध्या से होता है, यदि कोई ऐसा समझता हो तो व्यर्थ है । सन्ध्या मे पाप नाशन का ऐसा विपरीत अर्थ नही किन्तु देखकर चलते म भी यदि अनजान मे पैर पडकर चींटी आदि कुचल जाय या किसी अपरिहार्य कारण से कोई पाप बनजाय तो उस पाप को दूर करने के लिये ही सन्ध्या म का अघमर्षण मन्त्र है ! जान बूझ कर लोगो की गर्दन मरोडने के लिये नही । तीसरा गुण अस्तेय है,दूसरे की बस्तु न चुराने का नाम अस्तेय है इस गुण का पालन भी ध्यान देकर करना चाहिये नही तो चाहे जिसकी वस्तु चाहे जो कोई लेने लगैगा तो जगत् म व्यवस्था न रहेगी मनुष्यो के व्यापार सर्वथा बन्द होजायेंगे और ऐसी हीन दशा मे भी अधिक दुर्दशा भोगनी पडेगी इस कारण दूसरे की बस्तु लेने की इच्छा को सर्वथा ही त्यागना चाहिए, ब्रह्मवित्ता के साधको के तो स्वप्न मे भी यह बात न आनी चाहिए । एक स्त्री अपने पति के साथ मार्गमे चली जारही थी पति ने देखा कि एक मोहर पडी है उसने यह विचार कर कि कदाचित् मेरी स्त्री के मन मे इसको लेने की पाप वासना न उत्पन्न हो इस कारण आगे बढकर उस मोहर पर एक मुट्ठी धूल डाल दी जब स्त्री बढ कर आई तो उसने कहा कि तुम झपट कर आगे क्यो चले आये ? पतिने उत्तर दिया कि हे प्रिये ! वहां एक मोहर पडी थी तुझे उसको लेने की इच्छा न हो इस कारण मैंने आगे बढ कर उस पर धूल डाली थी । उस पतिव्रता ने उत्तर दिया कि हे प्राणनाथ ! आपकी दृष्टि मे अब भी सुवर्ण की चमक है नहीं तो आप उसपर धूल न डालते, तब उस पुरुष ने कहा कि हे प्रिये ! तू धन्य है तुझ मे अस्तेय धर्म मुझ से भी अधिक है सार यह है कि मन वश मे बिना हुए ब्रह्मविद्या प्राप्त नही हो सकती ॥

इसी प्रकार धृति भी परम आवश्यक गुण है पुराणो मे महात्मा वसिष्ठजी का धैर्य प्रसिद्ध ही है। विश्वामित्रजी ने उनके सौ पुत्रोको मारडाला तथापि उन ब्रह्मर्षि का धैर्य नही डिगा, ब्रह्मविद्या को प्राप्त करने मे अनेको प्रकार के व्यावहारिक और दैवी विघ्न होते परन्तु उनसे किञ्चिन्मात्र भी डिगना न चाहिए, चाहे कुछ होजाय धैर्य को नही छोडूँगा, ऐसी दृढता रखनी चाहिए. इस सद्गुण के विषय पर महाभारत मे एक अति रसभरी कथा है यदि आप लोग उस पर ध्यान दोगे तो इस सद्गुण की महिमा सहज मे ही ध्यान मे आजायगी। जिस समय महाराज धर्मराज युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ के लिए श्यामकर्ण घोडा छोडा था तब वह जाते जाते ताम्रध्वज राजाके नगर के समीप आया, उसको ताम्रध्वज के पुत्र मयूरध्वज ने पकड लिया। पीछे से अर्जुन और श्रीकृष्ण उस घोडे की रक्षा करने को सेना सहित आरहे थे उनको समाचार मिला कि ताम्रध्वज के राज्य मे हमारा घोडा पकडा गया उसको छुडा देनेके लिए अर्जुन ने लिखकर भेजा परन्तु राजा ने यह बात न मानकर अपने पुत्र मयूरध्वज को क्षत्रिय धर्मानुसार अर्जुन के साथ युद्ध करने को भेजा। अतिघोर युद्ध होते होते अर्जुन ने मयूरध्वजका रथ सौ हाथ पीछे को हटा दिया तब तो मयूरध्वज ने भी अर्जुन का रथ दो हाथ पीछे को हटाया जब मयूरध्वज अर्जुन का रथ पीछे को हटारहा था उस समय श्रीकृष्णजी ने उसको धन्यवाद दिया,यह देख अर्जुन न सहसका और क्रोध मे भरकर भगवान् से कहने लगा कि मैने मयूरध्वज के रथ को सौ हाथ पीछे हटादिया तब तो आप मौन रहे और इसने मेरा रथ दोही हाथ पीछे हटाया उसका आप धन्यवाद देते है भगवान् ने कहा कि हे अर्जुन इसका रथ साधारण लकडीका बना हुआ और साधारण घोडो से जुता है परन्तु तेरा रथ दैवी है तिसपर भी सब ब्रह्माण्डका भार लिए मै उसके ऊपर बैठा हूँ, तथापि यह इतने भार को पीछे को हटाता है,

क्या यह बडाभारी आश्चर्य और धन्यबाद देने की बात नही है ? तब अर्जुन निरुत्तर होकर बूझने लगा कि इसमे यह पराक्रम कहासे आया। इसपर श्रीकृष्ण जी ने कहा कि-भाई ! इसके पिता मे सर्वोत्तम धृति (धैर्य) गुण है उसीका यह फल है। तब अर्जुन ने कहा कि-किसी प्रकार मुझे इस की परीक्षा करके दिखाओ। तब तो अर्जुन को निश्चय कराने के लिए श्रीकृष्णजी ने उसी समय साधु का रूप रक्खा और अर्जुन को चेला बना कर साथ मे एक माया का बनाया हुआ सिह लेलिया तथा ताम्रध्वज राजा के द्वारपर पर जा पहुँचे. द्वारपाल ने राजा से निवेदन किया कि-महाराज द्वारपर आतीथि आय है तब राजा परम प्रसन्न हुआ और साधुओ को महल मे बुला सत्कार के साथ आसन देकर बिनय के साथ प्रार्थना करी कि-साधु जी ! आपकी क्या इच्छा है ? तब साधुजी ने कहा कि-मेरे इस सिंह को मनुष्य का मास भक्षण करने की इच्छा है, राजा अतिथि सत्कार करने मे चतुर था, अतः उसने कहा कि-बहुत अच्छा खून के अपराध करने के कारण फासी पानेवाले कैदी हैं, उनमे से एक सिह के लिए बुलवाए देता हूँ। तब साधुओ ने कहा कि हमको ऐसा अमंगल मास नही चाहिए हमको तो तेरे पुत्र मयूरध्वज के दाहिने अंग का मास चाहिए, तुझ से होसके तो दे ? राजा ने स्वीकार कर लिया और रणवास मे जा रानी की भी सम्मति ली तो वह भी कहने लगी कि महाराज ! यदि साधुओं की इच्छा इस ही प्रकार पूरी हो तो कुछ चिन्ता नहीं है, फिर पुत्रको बुलाकर बूझा तो उसने कहा कि-तात ! यह शरीर किसी न किसी दिन तो नष्ट होयगा ही फिर दुःख मे लिप्त होकर मरने की अपेक्षा तो साधुसन्तो के कार्य मे आजाय तो सार्थक होजा-यगा, अतः मुझे भी यह बात स्वीकार है और तैयार हूं, तब राजाने आकर अतिथियो से कहा कि आप उठिये और स्नान आदि से निवटकर मनुष्यका मास लीजिये, तब, राजसभा इकट्ठी होजानेपर वध

करने के लिए पुत्रको हमारे सन्मुख लेकर आओ साधुओ ने ऐसी आज्ञा करी, सो मंत्री और दरबारियो से सब राजसभा भरजाने पर साधु, राजा, रानी और वह पुत्र आये, तब राजा और रानी से साधुओ ने कहा कि–तुम इसके शिरपर आरा रखकर काटो और तुम तीनो मे से किसी के भी नेत्रो मे यदि आसू आगये तो मै उस अपवित्र मास को न लेकर ऐसे ही लौट जाऊँगा तीनो ने यह नियम स्वीकार कर लिया परन्तु दरबारियो को इससे बडाभारी दुःख हुआ और रो २ कर कहने लगे कि–आज हमारे राजवंश का नाश होता है तथा एक साथ सबके मुख से रामनाम की ध्वनि निकलने लगी। इधर राजा और रानीने पुत्र के मस्तक पर आरा रखकर चीरना प्रारम्भ कर दिया चीरते २ नाक पर्यन्त आरा आनेपर बाएं नेत्रमे से कुछ आसू निकलने लगा तब साधुने कहा हाथ रोको २ यह पुत्र रोता है अब मै इस मांस को न लूंगा, तब वह पुत्र ईश्वर का ध्यान धर करुणास्वर से कहने लगा कि–हे दयासिन्धो! हे दीनवत्सल! हे भगवन्! अब कहा तक अन्त टटोलोगे देखो मै साधुओ के सत्कार के लिए अपना शरीर देता हूँ परन्तु यह केवल दहना अंग ही लेते हैं सो वाम अंग वृथा जायगा अतः वामनेत्र मे आसू आया है, यह सुन साधु जी ने कहा अच्छा हम दोनोही अंग ले लेगे, फिर सब शरीर को चीरकर टुकडे २ करके सिहके आगे डाल दिया। इधर रसोई तैयार होनेपर ताम्रध्वजने पात्र परोसे तब साधुजी ने कहा– तुम, रानी और पुत्र तीनो भी मेरे सन्मुख आकर भोजन करो, तब तो राजा विह्वल होकर कहनेलगा कि, महाराज! मै पुत्रको कहा से लाऊँ! साधुओ ने कहा घबडाओ मत घर मे जाकर बुला लाओ। साधुओ के वचनपर पूर्ण श्रद्धा होने के कारण राजा ने महल मे भीतर जाकर पुत्रको पलङ्ग पर लेटा हुआ देखा और उठाकर लिवालाया, उसके आते ही आकाश मे से पुष्पो की वर्षा हुई और श्रीकृ-

ष्णजी ने साक्षात् दर्शन देकर स्त्री पुत्र सहित राजा को कृतार्थ करा, अर्जुन विचारा मौन बैठा रहा, उसने मुख से एक अक्षर भी नहीं निकाला, अन्त मे श्रीकृष्णजी ने वर मांगने को कहा तब राजाने कहा कि–मैं यह वर मागता हूँ कि कलियुग मे धर्म की ऐसी प्रचण्ड परीक्षा किसी की न कीजाय। धैर्य की ऐसी महिमा है। अगले व्याख्यान मे अहिंसा के विषय मे अनेको शास्त्र और मतो के विचार दिखाकर विशेष विचार किया जायगा।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

स्वामी हंसस्वरूप।

रामनाम की महिमा और अवतार॥

कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानां
पाथेय यन्मुमुक्षोः सपदि परपदप्राप्तये प्रस्थितस्य॥
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानां
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम॥

सनातन धर्म रूपी रंग खेलने के लिये सभासद् रूपी खिलाडी तैयार हो रहे है। यह कर्मकाण्ड रूपी कुंकुमोंमें ज्ञानरूपी गुलाल भरकर एक दूसरे के ऊपर फेकरहे हैं, प्रेमरूपी पिचकारी से उनका हृदय रूपी वस्त्र रॅगगया है और उपासना रूपी लेपन की सुगन्ध से उन का मस्तक भररहा है, ऐसे इस रङ्ग मे दङ्ग होकर सकल सभासदो से आशा है कि–

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे। इस प्रकार हरि नाम का स्मरण करते रहेगे। कल तक जो व्याख्यान हुए, इसके अनुसार बर्त्ताव करने से निःसन्देह इस लोक

और परलोक में कल्याण होगा । मैंने भक्तिमार्ग के व्याख्यान में पुनर्जन्म का थोडा सा वर्णन करके दृष्टान्त रूप से मीराबाई की कथा भी कही थी । वह भक्ति–'श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् । अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ।' अर्थात् विष्णु भगवान् का श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, चरण सेवन, पूजन, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन ऐसे नौ प्रकारकी है, तिसमेंसे आज स्मरण भक्तिके विषय मे कुछ विचार करने की इच्छा है, क्योंकि–यह सब को सब जगह तथा सब काल मे सुलभ है और परमेश्वर की प्राप्ति का सहल तथा उत्तम उपाय है । भगवान् का कोई नाम भक्ति के साथ सुख से उच्चारण करने पर उससे पुण्य प्राप्त होकर अन्त में ईश्वर की प्राप्ति होती है, तथापि उसमे भी राम नाम की महिमा विशेष है इसका कारण आगे चलकर इसी व्याख्यान मे आप के बुद्धिस्थ होजायगा । किसी भी मनुष्य को उसके नाम से पुकारने पर वह तत्काल अपने पास आकर उपस्थित होजाता है तैसेही परमेश्वर को चाहे जिस नाम से पुकारो वह आपके समीप आवेगे क्योंकि उन के नाम अनन्त है, इस पर भगवान् पतञ्जलि कहते है कि–'तस्य वाचकः प्रणवः' । (समाधिपाद) । अर्थात् उस परमेश्वर का वाचक प्रणव [ॐकार] है यही भगवान् का मुख्य नाम है, क्योंकि–इस नाम मे भगवान् के सकल ऐश्वर्य का बोध होता है । माण्डूक्योपनिषद् के प्रारम्भ मे ही कहा है कि 'ॐमित्येतदक्षरमिद ँ सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूत भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव । यच्चान्यात्त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव' । अर्थात् ॐ कार यह अक्षर सर्व मय है, उसका हम उप व्याख्यान करते है, भूत भविष्य और वर्त्तमान जो कुछ है अर्थात् इन तीन कालों से जो परिच्छेद्य है वह सब ॐकार रूप ही है । और जो त्रिकालातीत है,' तीनो कालो से जिसका परिच्छेद नहीं हो सकता वह भी सब ॐकार रूपही है । अकार, उकार और मकार यह जो प्रणव की तीन मात्रा है, उनसे ही तीन वेद, तीन देवता, तीन

गुण, तीन लोक, तीन तेज आदि उत्पन्न हुए है और इन तीन मात्राओ के आश्रय से ही वह रहते है । आप यदि कानो मे अंगुली देले तब जैसा अखण्ड नाद सुनने मे आता है या हरद्वार मे जैसा गङ्गा प्रवाह की ध्वनि एक समान चलरही है, तैसाही प्रणव का अप्रतिहत नाद चारो ओर भरा हुआ है तथा सकल वर्णमाला और शब्द उसी से उत्पन्न हुए है, उसका अवलम्बन किए बिना बाणी से कुछ उच्चारण ही नहीं होसकता । मृदङ्ग तबला आदि बाजो पर थाप देकर भिन्न २ प्रकार की गते छेडने पर जैसे उन थापो की रचना भिन्न २ प्रकार की होती है तिसी प्रकार प्रकृति के अनन्त व्यापारो के द्वारा इस ओंकार से ब्रह्माण्ड मे भिन्न २प्रकार के पदार्थों की उत्पत्ति हुई है, प्रणव म की मात्राही आत्मा के पाद है, प्रणव मे की अकारादि मात्राओ की आत्मा के भिन्न पादो से एकता करके जो प्रणव की उपासना करता है उसको भिन्न २ प्रकार के फल प्राप्त होते हैं–'अकारो नीयते विश्वमुकारश्चापि तैजसम् । मकारश्च पुनः प्राज्ञं नामात्रे विद्यते गतिः ॥ (माण्डूक्योपनिषद्) अर्थात् प्रणव अकार की प्रधानता है ऐसा समझ कर और आत्मा के प्रथम पाद से उसकी एकता करके जो प्रणव की उपासना करता है वह वैश्वानर होता है, उकार की दूसरे पाद से एकता करके जो उपासना करता है वह तैजस होता है और मकार की तीसरे पादसे एकता करके जो उपासना करता है वह प्राज्ञ होता है, तथा मात्रा रहित जो प्रणव वही केवल आत्मा है ऐसा जानकर जो उसकी उपासना करता है वह तुरीयावस्था पाता है अर्थात् शुद्ध ब्रह्मानन्द में निमग्न होता है यह अवस्था प्राप्त होने पर उपासक को और इससे उत्तम कोई गति मिलने को शेष नहीं रहती है । सार यह है कि–स्थूल प्रपञ्च, जागरित स्थान और विश्व, यह तीन मिलकर प्रणव में का अकार भाग होता है । सूक्ष्म प्रपञ्च स्वप्न अवस्था और तैजस यह तीन मिलकर प्रणव मे का उकार भाग है तथा स्थूल

सूक्ष्म प्रपञ्च का कारण, सुषुप्ति स्थान और प्राज्ञ यह तीन मिलकर प्रणव में की मकार मात्रा है और मात्रा रहित जो प्रणव का रूप है वही ईश्वर का मूलरूप है अर्थात् आत्मा की तुरीय अवस्था है, आत्मा के पाद और तुरीयावस्था का विस्तार के साथ वर्णन पीछे एक व्याख्यान में कियाही है, अस्तु। इस प्रकार ओंकार के चार विभागों से ईश्वर के सब गुणोंका और ऐश्वर्य का बोध होता है इस बातको स्पष्ट करने के लिए एक व्यवहारिक दृष्टान्त कहता हूँ किसी इलाके के स्वामी का नाम लक्ष्मीधरसिंह है उसके साथ महाराज पद जोडा और आगे राय बहादुर पद जोडा तथा अन्त में के सी. एस आय इत्यादि पदवी को जोडने पर उनका पूरा नाम महाराज लक्ष्मीधरसिंह रायबहादुर के.सी एस आय् ऐसा होगया, इससे उनके ऐश्वर्य का ज्ञान होता है तैसे ही ॐकार से ईश्वर के सकल ऐश्वर्य का ज्ञान होता है. अब लक्ष्मीधरसिंह के नौकर चाकर आदि मनुष्य हरएक व्यवहार में उनके उपरोक्त लम्बे चौडे नाम को नहीं लेते हैं किन्तु उस नाम में से सब अर्थ को थोडे ही में दिखलाने वाले सारभूत अंश महाराज अथवा 'महाराजा सहाब' ऐसा निकाल कर, महाराज स्नान कररहे हैं, 'महाराजा साहब' कचहरी में बैठे हैं, इत्यादि रीति से व्यवहार करते हैं। तैसेही ओंकार के द्वारा वर्णन करे हुए ईश्वर के स्वरूप का साधारण बुद्धि के मनुष्य की समझ में आना कठिन है ऐसा जानकर ओंकार में से सारभूत अंश निकाल कर उसकी उपासना करना शास्त्रकारों ने बतादिया है! वह सारभूत अंश 'राम नाम' है, यदि कोई कहे कि कैसे? तो इसको स्पष्ट करने के लिए थोडासा विचार करने की आवश्यकता है, ओंकार से ही सब वर्णमाला की उत्पत्ति हुई है यह बात पीछे कहही चुके हैं, उस वर्ण माला में के र म यह दो अक्षर बडी महिमा से युक्त हैं इस कारण इनको ओंकार के शिरोभागमें लिखने की रीति पडी है अर्थात् उसके मस्तक पर ऐसा चिह्न

लिखा जाता है, उसमे से आधे चन्द्रमा की समान भाग रेफ-को दिखाता है और बिन्दु (अनुस्वार) मकार को दिखाता है। "जलतुम्बिकान्यायेन रेफस्योर्ध्वगमनम्" ऐसी संस्कृत की कहावत है अर्थात् जैसे पानी के उपर तुम्बी वैसे ही रेफ सब वर्णों के मस्तक-पर जाता है और मोऽनुस्वारः यह पाणिनीय का सूत्र है, इससे म-कार का बिन्दु (अनुस्वार) होजाता है। इस कारण ऐसे चिह्न का अर्थ 'र, म्' हुआ व्यंजन वर्ण का उच्चारण स्वर की सहायता के बिना नहीं होसकता, इस कारण पाणिनीय ने 'हयवरट्' इत्यादि सूत्रो मे ह्—व् इत्यादि हरएक व्यंजन मे अकार जोडकर सं-स्कृत की वर्णमाला दिखाई है। इसी प्रकार र—म् इन दोनों म भी ओकार मिलाकर राम ऐसा सब के उच्चारण करने योग्य तारक मन्त्र निकल आता है उसमे ही ओंकार का सर्वस्व आजाने के कारण उसका जिस अक्षर के साथ योग होगा अर्थात् उनका दर्शक रेफ अनुस्वार रूप चिह्न जिस अक्षर के मस्तक पर रक्खा जायगा, उस अक्षरमे अद्भुत मन्त्र शक्ति आजायगी इस विषय मे दोहा प्रसिद्ध है।

एक छत्र इक मुकुटमणि, सब वर्णन पर जोय।
तुलसी रघुवर नामके, वर्ण विराजत दोय॥

इस रितिसे 'लँ' यह पृथ्वी बीज, 'रँ' अग्नि बीज, 'वँ' वरुण बीज और 'यँ' वायु बीज इत्यादि मन्त्र शास्त्र मे प्रसिद्ध अनेकों मन्त्र बीजों की उत्पति कही है। तिन तिन मन्त्रो का जप करने पर

---

(१) बहुतो को शङ्का होगी कि—र म् से राम बनाने मे आ मिलना चाहिये. यह शङ्का ठीक है परन्तु सस्कृत की वर्णमालामे 'आ' भिन्न अक्षर नहीं है कि-न्तु 'अ' मे ही इसका समावेश किया है। 'अ' के ह्रस्व दीर्घ आदि अठारह भेद है, उन सब का एक ह्रस्व आकार से ही ग्रहण होजाता है, यह लघु-कौमुदी पढने वाले भी जानते होगे॥

वह वह देवता प्रसन्न होकर हमको विशिष्ट फल प्राप्त होता है, उदाहरण के लिये देखलो रँ, इस बीज मन्त्र का जप करने पर अग्निदेव के प्रसन्न होने से हमको तेज आदि गुण प्राप्त होते है हमारे शरीर को ताप होने पर वँ इस बीजमन्त्र का जप करना चाहिये तब वरुण देवता की प्रसन्नता से ताप शान्त होगा, ऐसेही अन्य बीज मन्त्रो के विषय मे भी जानो। इन बीज मन्त्र मे की शक्ति को आज कल के जड पदार्थ वादी नही मानते है, परन्तु मै उनसे यह बात कहता हूं, साधारण रूप से दो अक्षरो का एक साथ उच्चारण करने पर ही उन में आप को विलक्षण शक्ति दीखती है। देखो किसी को लक्ष्य करके 'मूर्ख' इतना कहते ही तत्काल उसको क्रोध आजाता ह और उसके नेत्र, लाल २ होजाते है, इसके विपरीत यदि उसको क्रोध आरहा हो उस समय कृपासागर, हुजूर, दयावान् आदि शब्दो से उसकी प्रार्थना की जाय तो उसका क्रोध शान्त होजाता है इस प्रकार साधारण अक्षरो के संयोगसे भी जब ऐसी शक्ति आपके देखने में आती है तो जिन मे शास्त्र विशेष शक्ति बताता है उन बीज मन्त्रो का जप करने पर इष्ट कार्य की सिद्धि क्यो नही होगी ? अवश्य होगी, केवल जप विधिपूर्वक होना चाहिए, योग्य ढंग करके अच्छी भूमिमे बीज बोने से जैसे अन्न की उत्पत्ति अच्छी होती है तैसेही अधिकारी की शुद्ध दशा मे योग्य स्थान पर और योग्य समय मन्त्र को जप करने मे उत्तम सिद्धि होती है, जप करते मे मन्त्र के अर्थ का चिन्तवन करना चाहिए। भगवान् पतञ्जलि कहते है कि—'तज्जपस्तदर्थभावनम्' (समाधिपाद) मन्त्र का जप करना होय तो उस के अर्थ का चिन्तवन करता आ एकाग्र चित्त से करै, नहीं तो इधर मन्त्रका उच्चारण होरहा है और मनसे किसी बडे भारी शहर में जाकर स्वामी को प्रसन्न करनेके लिए बढिया घोडा खरीदने की युक्ति चल रही है, इधर माला के कितने दाने फिर गये इसकी कुछ सुध नही है, पर-

न्तु उधर घोडे की कीमत के रुपये ठीक २ गिनकर दिए जारहे हैं, ऐसा करने पर मन्त्र की सिद्धि कैसे हो ? जहा सहस्र जप करना चाहिए तहा यदि सौही किया अथवा मन्त्र की सांगताके लिए जहा सौ ब्राह्मणो को भोजन कराना चाहिए, तहां यदि पाचही को भोजन कराया तो फल भी उतनाही कम मिलेगा और कहीं तो कुछ मिलेहीगा नही, यदि किसी को भात पकाना हो तो अग्नि, जल, चावल आदि सामग्री का प्रबन्ध उसको अवश्य ही करना चाहिए। इनमें से एक भी साधन नही होगा या एक भी साधन मे कमी होगी तो काम सिद्ध नही होसकेगा, अग्नि का अभाव होगा अथवा भात के नीचे एक चिनगारी ही होगी तो भात नही पकेगा, तैसेही पानी बिलकुल नही होगा अथवा दशसेर चावलो मे पावभर ही पानी पडेगा तो भात नही पकेगा, तिसीप्रकार यथोचित समय न लगाया जायगा या कर्त्ता अनाडी होगा तो भात नही पकेगा। सार यह है कि–छोटे बडे सबही कामो के साधन मे कुछभी खराबी होने से कार्य सिद्ध नही होगा। फिर मन्त्र शास्त्र के प्रयोगमे दोष होनेसे कार्य सिद्ध कैसे होसकता है अर्थात् इष्ट कार्य की सिद्धि होने के लिए मन्त्रका अनुष्ठान विधिपूर्वक होना चाहिए। ओंकार का सारभूत अंश होनेके कारण, राम नाम मे ओंकार का सब प्रभाव आगया है और साधु-सन्तो ने इसकी बहुत कुछ महिमा गाई है। सूर्य आदि सब तेज ओंकार से ही उत्पन्न हुए है. और वह सब उस के ही आश्रय से रहते हैं, यह बात पीछे कहही चुके हैं, इसी प्रकार रामनाम के विषय में तुलसीदास महाराज भी कहते हैं कि–'बन्दौ रामनाम रघुबर के। हेतु कृशानु–भानु–हिमकरके ॥' अर्थात् कृशानु–अग्नि, भानु सूर्य, हिमकर, चन्द्रमा, कृशानु भानु और हिमकर का कारण जो रामनाम तिस को वन्दना करता हू। रामनाम कृशानुभानु और हिमकर कई प्रकार से हेतु है इस कारणइस

चौपाई के कई अर्थ होसकते है । (१) पहिला अर्थ तो यह है कि राम इस पद मे र,–अ,–म, यह तीन अक्षर हैं और तीनो क्रम से कृशानु, भानु और हिमकर इन तीनो देवताओ के बीज है, इस कारण राम यह पद उनका हेतु है, अधिक तो क्या यदि उन तीनो शब्दो का अर्थ न लेकर केवल शब्द को ही लिया जाय तब भी उन शब्दो मे ऊपर के तीनो वर्ण क्रम से विद्यमान है और उन वर्णो के द्वारा ही उनको उन शब्दो की शक्ति मिली हुई है उन शब्दो मे से तिन वर्णो को निकाल लियाजाय तो वह शब्दही निरर्थक होजायगे, इस कारण राम यह पद कृशानु आदि शब्दो की उत्पत्ति का कारण है । यदि कोई कहे कि–यह शब्दपाण्डित्य है, इस मे अर्थ कुछ नही है, तो उन लोगो के समाधान के लिए दूसरा अर्थ दिखाते है । (२) दूसरा अर्थ यह है कि–अग्नि पाचक रूप से चार प्रकार के भोजन को पका-कर प्राणियो के शरीरका पोषण करता है सूर्य से प्रकाश मिलकर और आरोग्य की रक्षा होकर सबके व्यवहार सुन्दरता के साथ चलते है और चन्द्रमा से बनस्पतियो का पोषण होकर उनसे सब प्राणियो को सहायता मिलती है, इस प्रकार प्राणी मात्र की जीवन यात्रा के कारण जो कृशानु आदि तीन देवता, उनके विषे वह शक्ति रामरूप तेज से

(१) कृशानु इस शब्द मे र, भानु शब्द मे अ, और हिमकर शब्द मे म, यह अक्षर है बोलचाल मे इन शब्दो के उच्चारण को लेकर यह बात है वास्तव मे देखाजाय तो कृशानु शब्द मे र, स्पष्ट नही है किन्तु ऋ है, परन्तु कृशानु शब्द का अपभ्रंश क्रशानु लियाजाय तो र स्पष्ट दीखेगा अथवा कृशानु ऐसा शुद्धही रूप लियाजाय तो इसमें के भी ऋकार मे संस्कृत व्याकरण के अनुसार रेफका अंश है ऐसा मानलेने मे भी अर्थ की सङ्गति बैठ जायगी।

(२) यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् । यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्॥गामाविश्य च भूतानि धारयाम्येकमोजसा । पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः ।अहं वैश्वानरोभूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ॥ प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥ (भगवद्गीता १५ अध्याय)

ही प्राप्त हुई है। (३) तीसरा अर्थ यह है कि–कृशानु भानु और हिमकर इन तीनो का अर्थात् तीनो कुलो को उत्कर्ष का हेतु रामनाम ही है अग्निवंश मे परशुराम उत्पन्न हुए, सूर्यवंश मे दशरथ कुमार रामचन्द्र हुए, और चन्द्रवंश मे बलराम हुए, इन तीनोही का राम नाम प्रसिद्ध है। इस प्रकार रामनाम उपरोक्त तीनो कुलो के उत्कर्ष का हेतु है।(४)चौथा अर्थ यह है कि–शरीर मे मुख्यरूप से इडा,पिंगला और सुषुम्ना यह तीन नाडिये हैं। नासिका के बाम ओर के छिद्रमे को जब श्वास पूर्ण रीति से चलता है तो उसको इडा वा चन्द्रनाडी कहते है। नासिका के दाहिने छिद्र मे को जब श्वास पूर्ण रीति से चलता है तो उसको पिंगला वा सूर्यस्वर कहते है जब नासिका के दोनो छिद्रो मे से एकसाथ वेग से श्वास चलता है तो उसको सुषुम्ना वा अग्निनाडी कहते है। यह नाडिये किन नियमो से चलती है इसका वर्णन स्वरोदयशास्त्र मे विस्तार के साथ किया है, इस समय उसके वर्णन का अवसर नही है। हिमकर, भानु और कृशानु इन शब्दो के द्वारा क्रम से उन तीनो नाडियोका[1] बोध होता है और उनका सब आधार रामरूप चैतन्य के ऊपरही है। इस प्रकार रामरूपतेज प्राणीमात्र के जीवन का कारण है और वह सर्वत्र व्यापरहा है। यदि देखाजाय तो सर्वत्र मनुष्यमात्र के नाम मे "राम" यह दो अक्षर पुरे हुए है अर्थात् चाहे जिस पुरुष का चाहे जितने अक्षरो का नाम हो तथापि अन्त मे उसकी तान इन दो अक्षरोमे ही टूटती है इस विषय मे गणित की सहायता से होनेवाला एक चमत्कार दिखाता हूँ–हरएक मनुष्य को चार प्रकार के पुरुषार्थ साधने होते है, इस कारण उसको अपना नाम (अपने नाम के अक्षरो की संख्या) चार से गुणा करना चाहिए और वह पुरुषार्थ पचभूतो के आश्रय से सिद्ध होते है, इस कारण उसमे पाच संयुक्त करदेय, पुरुषार्थो के साधनका प्रयत्न करनेमे मनुष्य को सुख दुःख, मान अपमान आदि अनेको द्वन्द्वो से

(१) इसी कारण ज्योतिषमे राम शब्दको तीन संख्याका वाचक माना है।

झगडना पडता है इस कारण उपरोक्त सख्याओं को द्विगुण करे। अन्त मे इन सब आठ प्रकार की प्रकृति के पसारे के विवेक के द्वारा दूर करके सत्यस्वरूप मे रमण करना होता है, इस कारण उपरोक्त गुणनफल मे आठ का भाग देकर बाकी निकाली जायगी तो दोही शेष रहेगे, वही " राम " यह दो अक्षर सत्य है । उदाहरण के लिए देखो—देवदत्त इस नामको लेलो, इसमे के अक्षरो की संख्या को चारस गुणा करके पांच मिलानेपर इक्कीस होते है और इसको द्विगुण करके आठ का भाग देनेपर दोही शेष रहते है वही " राम " इन दो अक्षरो के दर्शक है । इसी प्रकार चाहे जिस नाम के विषय मे देख लो यह केवल गणित का मनोरञ्जक चुटकुला कहा है, परतु व्यवहार मे भी रामशब्द मे विशेष तेज सूचित होता है । किसी मनुष्य मे तेज का अभाव दिखाना होता है तो उसमें कुछ आराम नहीं है ऐसा आप कहते है । रामरूप शक्ति का एक प्रकार आश्रय छूटा कि—ऊपर कही हुई तीन नाडियें बन्द होजाती हैं और मरण होजाता है उस समय राम का नाम सत्य है सब मिथ्या है ऐसा निश्चय करके सबलोग शव के पीछे २ राम नाम सत्य है ऐसा कहते हुए जाते है । इस रामनाम बलसे ही समुद्रमन्थन के समय उत्पन्न हुआ दुर्धर कालकूट विष शंकर ने पीलिया था । रामनाम के माहात्म्य को श्रीशंकर पूर्णरीति से जानते है । एक समय भोजन की तैयारी होनेपर शिवजी ने पार्वतीको भोजन के लिए बुलाया तब पार्वतीजी कहनेलगी कि मुझे तो अभी विष्णु भगवान् के सहस्र नामो का पाठ करना है, निवट कर भोजन करूंगी, शिवजी ने इसका उत्तर दिया कि—

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे ।
सहस्रनाम तत्तुल्यं श्रीरामनाम वरानने ॥

अर्थ—सहस्र नामो का सब सार एक रामनाम में ही भरा हुआ है मै अखण्ड रामनाम मे ही मग्न रहता हूँ इस प्रकार पार्वती ने शिवजीसे

राम नाम की महिमा सुनी, पार्वतीजी से गणेश जी ने सुनी, उस राम नाम के अवलम्बनसे गणेशजी को सबसे आगे पूजन मिलता है। एक समय इन्द्रादि देवताओं मे श्रेष्ठ कौन है ? इस बातपर विवाद हुआ और सब अपनी ही पूजा सकलकार्यों मे पहिले हो ऐसा चाहने लगे तथा सबमिलकर निर्णय कराने के लिये ब्रह्मा जी के पास गये, उन्होंने कहा-जो ब्रह्माण्ड की प्रदक्षिणा करके सब से आगे आजायगा वही श्रेष्ठ है उसकी ही सब से प्रथम पूजा होगी। तब तो सब ने अपने अपने वाहनों को तैयार करके ब्रह्माण्ड की प्रदक्षिणा करने का उद्योग किया, यह बात सुनतेही गणेश जी को डाह हुआ परन्तु उनकी सवारीमे तो चूहे मामा ही थे, इस कारण इस विषयमें जय मिलने की उनको कुछ आशा नहीं रही अतः मलिन मुख होकर एकान्त मे बैठ विचारकरने लगे, यह दशा देख पार्वती जी ने बूझा कि-तू खिन्न मुख क्यों होरहा है! कारण बतातेही पार्वती जीने उत्तर दिया कि-भय न कर मैं तुझको युक्ति बताती हूँ कि-रामनाम यह ॐकार का मथा हुआ अर्थ है और ओंकार से सब ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई है, इस कारण मुख से रामनाम का उच्चारण करके और मन से उसके अर्थ की ओंकार से एकता करके उस के चारों ओर तू प्रद- क्षिणा कर तो एक क्षण मे ही तू अनन्त ब्रह्माण्ड की प्रदक्षिणा कर- लेगा, यह सुनकर और इसी प्रकार करके गणेशजी उसी समय ब्रह्मा जी के पास गये और कहने लगे कि-मैंने सकल ब्रह्माण्ड की प्रदक्षिणा करली, ब्रह्मा जी आश्चर्य मे होकर मन मे विचारने लगे कि, यह तोंदीली मूर्ति चूहे की सवारी, सकल ब्रह्माण्ड की परिक्रमा इतनी शीघ्र कैसे होगई ? परन्तु अन्तर्दृष्टि से देखा मालूम हुआ कि- बात ठीक है और गणेश जी का वाहन चूहा ही अनन्त ब्रह्मांड के चारों ओर वेग के साथ फिरता रहा है। फिर बूझा कि-गणेश जी यह गुरु तुमको किसने बताया ? तब गणेश जीने उत्तर दिया कि-

सब योगियो मे मुकुटमणि और परम रामोपासक शिवजी मेरे पिता है और मन्त्रशास्त्र मे परम प्रवीण आदि शक्ति पार्वती जी मेरी माता है, इस कारण यह सब मेरे घर की ही विद्या है, हमको सीखने के लिये दूसरे के पास जाने की आवश्यकता ही क्या है ? अस्तु। उस दिन से उनकी अग्रपूजा और भी अधिक दृढ होगई तथा आज कलभी कार्यकी निर्विघ्न सिद्धि के लिए हरएक कार्य मे पहिले गणेशजी का पूजन होता है यह बात सबको विदित ही है। कितनेही नए शिक्षित और अर्द्धशिक्षित कहते है कि–रामचन्द्र एक राजा थे और वह हमारी समानही मनुष्य थे, परन्तु यह उनका कहना भूलसे भराहै। रामचन्द्रजी यदि केवल मनुष्यही होते तो समुद्र के ऊपर पत्थरो का पुल बांधना आदि अलौकिक कार्य उनके हाथ से कैसे होते ? उनके पास बडी २ तनख्वाह के इंजिनिर नहीं थे. उन्होने नलनील आदि बानरो को समुद्र के ऊपर पुल बाधने की आज्ञा दी उस समय उन वानरों के लाये हुए पत्थर पहिले तो समुद्रमे डूबने लगे तब परम रामभक्त और रामनाम के माहात्म्य को जाननेवाले हनुमान जी ने तहा आकर न जाने क्या जादू सा कर दिया ? कि–उससे सब पत्थर तैरनेलगे, यदि कहो कि–वह जादू कौनसा था ? तो किन्ही पत्थरो पर अलग २ "राम" यह अक्षर लिखकर किन्ही पर दो २ मिलाकर वह अक्षर लिखकर अर्थात् एक पत्थर पर "रा" और दूसरे पर "म" लिखकर उन पत्थरो को परस्पर मिला दिया तब तो वह सब पत्थर जल मे छोडते ही तैरने लगे । आप जरा अपने हाथ से कटोरा भर जल मे थोडीसी रेणुका डालिए, तो क्या वह तैर सकेगी परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में यन्त्रशास्त्र आदि का प्रचार बहुत हुआ है, अतः यन्त्र विद्या मे प्रवीण आजकल का कोई बडाभारी विद्वान्, हनुमानजीके मन्त्रशास्त्र के किनारेसे भी समता रखनेवाला कोई यन्त्र बनासकता है क्या ? अथवा आजकल के चक्रवर्ती राजाओ मे भी

कहीं ऐसी सामर्थ्य देखने में आती है क्या ? जब वह शक्ति कही दीखतीही नही तो श्रीरामचन्द्रजी को लोकोत्तर अथवा दिव्य मनुष्य [ईश्वर] थे ऐसा कौन कहेगा ? अर्थात् वह यद्यपि मनुष्य की समान देखते थे तथा वह साक्षात् परमात्माही अवतरे थे, इस मे किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। "अवतार" शब्द का अर्थ है नीचे उतरना। वेदादिको को भी अगम्य और अनिर्वचनीय अपने परमोन्नत रूपसे परमेश्वर ने भक्तजनो के कल्याण के लिए एक साधारण मनुष्य का सा रूप धारण किया, इसको परमेश्वर का अवतार कहते हैं। जो कोई उनके नाम का स्मरण करके एकाग्र चित्त से उनका ध्यान करता है उसके ऊपर वह प्रसन्न होकर भक्तकी इच्छा के अनुसार दर्शन देते है। जैसे वायु के स्पन्द और निःस्पद दो रूप है अथवा अग्नि के व्यक्त और अव्यक्त दो रूप हैं-(चौपाई) एक दारुगत देखिए एकू। पावक युग सम ब्रह्म विवेकू॥ अर्थात् काष्ठ आदि मे अग्निका अव्यक्त रूप है और व्यवहार आदि मे स्पष्ट देखने मे आनेवाला जो अग्नि है वह अग्नि का व्यक्तरूप है। इसीप्रकार ईश्वर भी साकार और निराकार अथवा सगुण और निर्गुण यह दो रूप है। कोई परमेश्वर के सगुणरूप की भक्ति करते है। और कोई निर्गुणरूप मे मग्न रहते है। गुरु रामानन्दजी श्रीरामचन्द्रजी के साकाररूप के उपासक थे और कबीर निराकाररूप के उपासक थे सार यह है कि चतुर दुभाषी जैसे अपना अभिप्राय न्यायाधीश को अङ्गरेजी, हिन्दी, मराठी, गुजराती आदि उसकी इच्छित भाषा मे समझा दे तैसेही परमेश्वर अपने भक्त को उसकी इच्छानुसार रूप मे दर्शन देकर उसके मनोरथ को पूरा करते है पहिले स्वायम्भुव मनु और उनकी स्त्री शतरूपा ने परमात्मा का दर्शन पाने के लिए सहस्रो वर्ष तक वन मे रहकर तीव्र तपस्या करी तब भगवान् ने उनको चतुर्भुजी पीताम्बरधारी रूप से प्रत्यक्ष दर्शन

देकर वर मागने के लिए कहा—तब उन दोनो ने कहा कि—हमको और कुछ नही चाहिए आप इसी रूप मे हमारे गर्भ से प्रगट होकर हमारे सकल मनोरथो को पूरा करिए, भगवान् ने भक्तवत्सल होने के कारण उनके मागे हुए वरको देकर, " तुम्हारे ऐसाही पुत्र होगा " ऐसा कहते हुए उनको विश्वास दिलाया। फिर त्रेतायुग मे वह दोनो दशरथ और कौसल्या हुए और उनके उदर मे भगवान् श्रीरामचन्द्र-रूप से अवतरे, यह प्रसिद्ध ही है जब कौसल्या के उदर मे प्रविष्ट हुए थे उस समय कौसल्या के गर्भ के सब चिह्न यद्यपि अन्य साधारण स्त्रियो की समानही प्रतीत होते थे परन्तु वास्तव मे परमात्माका अन्य लोको की समान गर्भवास से सम्बन्ध नही था भगवान् के सब अवतार अयोनिसम्भवही थे, उनके साथ गर्भवास का अथवा रजोवीर्य का किसी प्रकारका संबन्ध नही था केवल उस समय कौसल्या के शरीर मे परमात्माका तेज फैलरहा था और उसके भीतर बाहर सर्वत्र रामरूप दीखता था, लौकिक रीति के अनुसार नौ महीने पूरे होतेही पहिले कहेहुए संकेत के अनुसार भगवान् श्यामसुन्दर पाच वर्ष के बालक की मूर्ति बनकर कौसल्या के सामने आकर खडे होगए, उस मूर्त्ति को देखकर कौशल्या ने प्रार्थना करी कि—इतने बडे रूप से लोग आपको मेरा पुत्र नहीं कहेगे और उलटी हँसी उडावेगे, इस कारण लोक व्यवहार के अनुसार बालक का रूप धारण करिए। तब भगवान् ने भक्त का मनोरथ पूरा करने के लिए तत्काल बालक का रूप धारण किया और मनुष्य की समान सब लीलाये करके दिखाई। कोई २ कहते है कि यह सब पुराणो की गप्पे है और पुराण थोडे ही दिनो के बनेहुए है और कही तो उन मे वृथा अतिशयोक्ति ही लीखी है। परन्तु यह उनका कहना ठीक नही है क्योकि अथर्ववेद प्रपाठक ७ मे "ऋचः सामानि छन्दांसि जज्ञिरे पुराणं यजुषा सह।" इसप्रकार ऋग्वेद सामवेद और यजुर्वेद के समानही पुराणो की उत्पत्ति कही है

इसके सिवाय वेदो मे परमात्मा के अवतारे का भी उल्लेख किया है उसमे से कुछ प्रमाण दिखाकर आज के व्याख्यान को समाप्त करत, हूँ। ऋग्वेद मंडल ६ सूक्त ४६ मन्त्र १८ मे परमेश्वर के अवतार के विषय मे साधारणरूप से कहा है 'रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रति चक्षणाय। इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते।' अर्थात् इन्द्र कहिए षड्गुणैश्वर्य सम्पन्न भगवान् वत्सलता को प्रकट करने के लिए अपनी मायारूप शक्ति के द्वारा अनंतो रूप धारण करते है, जैसी २ भक्त की भावना होती है और जिस समय जैसी आवश्यकता पडती है, तैसे २ भगवान् के अवतार होते है। पीछे एक व्याख्यान मे द्रौपदी की लज्जा रखने के लिए भगवान् ने वस्त्र रूप धारण किया; यह बात कहही चुके है। नृसिहावतार के विषय मे यह प्रमाण है—"प्रतद्विष्णुः स्तवतेवीर्येण मृगो न भीमो कुचरो गिरिष्ठाः ॥" (ऋ० मं० १ अध्याय २१) वामनअवतार के विषयमें प्रमाण है कि— 'इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्' (ऋग्वदे) इसी प्रकार रामावतार के विषय मे—'भद्रो भद्रया०' इत्यादि सामवेद के उत्तर आर्चिक अध्याय १९ मे लिखा है और ऋग्वेद मण्डल ४ मे कृष्णवतार के विषय का उल्लेख है। शेष अवतारो के विषयमे भी प्रमाण दिखाये जाते, परन्तु अवसर नही है और वेदो मे अवतारो का उल्लेख होनेके विषयमे विश्वास होने के लिए यह दिखाए हुए प्रमाण ही पर्याप्त हैं। आजके व्याख्यान से अवतारोंका क्या प्रयोजन है? रामनाम की कैसी महिमा है? उस में कैसी अद्भुत शक्ति है और वह कितना सहल तारकमन्त्र है? यह सब बाते आपके ध्यान मे आही गई होगी, अतः परम पवित्र वस्तुओ मे पवित्र, मङ्गलो मे मंगल रामनाम का एकवार सब लोग मिलकर उच्चस्वर से कीर्त्तन करो और उसको अखण्ड हृदय मे धारण करो।

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

प्रिय मित्रो ! आज दश दिन तक सन्ध्या, प्राणायाम, पुनर्जन्म और श्राद्ध आदि भिन्न २ विषयोके सम्बन्ध में, अनेको बाते मैंने आप लोगो को अर्पण करीं, मुझे आशा है कि आप उनमे के दोषो को त्यागकर नीर क्षीर न्याय से हस की समान गुणो को स्वीकार करेगे। आप सब महाशयो ने दशदिन तक घरके आवश्यक कार्यों को त्यागकर यहा आनेका कष्ट उठाया और सावधान चित्त से व्याख्यान सुनने की कृपा की, इसके लिए मै आप सब महाशयो को धन्यवाद देकर अब बिदा होता हूॅ ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

स्वामी हंसस्वरूप ।

❀ भक्ति ❀

जीवात्मा की सारी यात्रा मे—समय के आदि से लेकर इस समय तक जब कि जीवात्मा को "एकमेवाद्वितीयम्ब्रह्म" का साक्षात् अनुभव न होजावे—किंचित् घटनाये ही ऐसी आवश्यक और स्मरणीय होती है जैसी कि ईश्वर की ओर सच्ची भक्ति का प्रादुर्भाव होना । यह भक्ति सारे मनुष्य स्वभाव को बदल देती है, जब मनुष्य इसको प्राप्त कर-लेता है सच मुच उसका "पुनर्जन्म" होता है यह जन्म माता के गर्भ पाप से, और शोक के असत्य जीवन मे नही होता, वरञ्च उस बृहद् और सत्य जीवन मे उसका जन्म होता है जिसमे हम सब को एक न एक दिन जाना पडेगा । और सब कमा स बढकर ईश्वर के चरणों में सत्य प्रेम ही मनुष्य को द्विज बना देता है । जब एकबेर मनुष्य अपने कई जन्मों के पुण्य फल से इस दुर्लभ पदार्थ भक्ति को प्राप्त कर लता है, तो उसके जीवन का अर्थ कुछ और ही होजाता है,

यह संसार प्रेम के प्रभाव से "स्वर्ग" बन जाता है अब वह वैसा मनुष्य नहीं रहा जैसा वह पहले था, परम प्रेम मय का साक्षात्कार उसके स्वभाव को बदल कर उसको नरेश्वर (Good man) बना देता है, हरएक पदार्थ जो वह देखता है और जो वह सुनता है सब उसकी दृष्टि मे नवीन और सुन्दर रूप धारण करते है, उसके वास्ते सब सुखदायक ही है और वह प्रेम के पिंगुरे मे झूलता रहता है, जब तक कि वह अपने आपको उस परम पुरुष मे लीन करता है जिसका आनन्द और गौरव बडी २ उपनिषदे भी शब्दोसे लिखनेका यत्न निष्फलही करती हैं।

सच्चा भक्त कोई हजारो मे एक होता है। हमारे भारत जैसे धार्मिक देश मे भी सच्चे भक्त गिनती के ही हुए है, परन्तु जब हम देखते है कि भक्ति क्या है तब हमको प्रतीत होजाता है कि भक्त इतने थोडे क्यो हैं भक्ति वह प्रेम है जो पण्डित लोग ईश्वर के साथ रखते हैं और जो इतनाही अचल तथा दृढ होता है जितना वह प्रेम जो अविवेकी को इन्द्रियो के नश्वर पदार्थों से होता है, महर्षि नारद कहते है—

सात्वस्मिन्परमप्रेमरूपा ॥ २ ॥ अमृतरूपाच ॥ ३॥ यल्लब्ध्वापुमान्सिद्धो भवत्यमृतो भवति तृप्योभवति ॥ ४ ॥यत्प्राप्यनकिंचिद्वांछति न शोचति न द्वेष्टि नोत्साहो भवति ॥ ५ ॥ यज्ज्ञात्वामत्तो भवतिस्तब्धो भवति आत्मारामोभवति ॥ ६ ॥ सा न कामयमाना निरोधरूपत्वात् ॥ ७ ॥ भक्ति अ० ॥ १ ॥

इसके मिलाप मे ही भक्त को सुख है,; उसका विस्मरण होजाने से उसको बडा दुःख होता है। एक महात्मा ने कहा है कि "जिन दिनों मे ईश्वर का गुण नहीं गा सका, उन दिनों में यथार्थ मे मै जीवित न था" भक्त शिरोमणी प्रहूलाद कहते हैं।

कीटेषु पक्षिषु मृगेषु सरीसृपेषु रक्षःपिशाचमनुजेष्वपि यत्रयत्र।जातस्य मे भवतु केशवते प्रसादात्त्वय्येव भक्तिरचलाऽव्यभिचारिणीच।नाथयोनिसहस्रेषु येषुयेषु व्रजाम्यहम् । तेषु तेष्वचलाभक्तिरुच्चैरस्तु सदा त्वयि ॥

भक्त का सो प्रेम ईश्वर के साथ कितनाही होता है, इसका नमूना उपनिषदों मे मिलता है । यम नाचिकेता को कहता है–

शतायुषः पुत्र पौत्रान् वृणीष्व बहून्पशून्हस्तिहरिण्यमश्वान् । भूमेर्महदायतनं वृणीष्व स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि ॥ महाभूमौ नचिकेतस्त्वमेधिकामानां त्वां कामभाजं करोमि। येये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके सर्वान्कामाञ्छन्दतः प्रार्थयस्व ॥ इमा रामाः सरथाः सतूर्या नहीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः । आभिर्मत्प्रत्ताभिः परिचारयस्व । कठोपनिषद् ॥

हममें से बहुतो को इससे भी न्यून पदार्थ मदमत्त करदेते, परन्तु सच्चा भक्त नचिकेता क्या उत्तर देता है, वह कहता है 'वारस्तु मे वरणीयः स एव' वही ब्रह्मज्ञान का वर दो, यह उसका उत्तर है । सच्चे भक्त को यह उदाहरण है, ऐसे नर शार्दूलों की महिमा भगवान् श्रीकृष्ण यों वर्णन करते है यथाः–

ये भजन्ति तु मांभक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥ ९ ॥ २९ ॥ तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ ९ ॥ २२ ॥ येतु सर्वाणि कर्माणि

मयि संन्यस्य मत्पराः । अनन्येनैव योगेन मांध्यायन्तउपासते ॥ तेषामहं स द्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् । भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥ मय्येव मन आधत्स्वै मयि बुद्धिं निवेशय । निवसिष्यसिमय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः॥१२॥ ॥ ६, ७, ८ ॥

मनको सांसारिक पदार्थों से हटाकर ईश्वर की ओर लगाने का भक्तिही सबसे अच्छा उपाय है हम अज्ञान के अन्धकार कूप मे गिरे हुए है और सदैव अपने आपको इन काम क्रोधादि बगल के शत्रुओ से (traitors in the camp) यथार्थ मार्ग से च्युत कराते है, कैसे यह चञ्चल 'मन दिनरात निरन्तर निकम्मे और अप्रयोजनीय कामो मे घूमता फिरता है । मनकी मदमत्त और विक्षिप्तोकी न्याई चचलता पर विचार करने से बडाही दुःख होता है विशेषतः जब हम इस बात का विचार करत हैं कि हम इसके दुष्ट और अनर्थकारी स्वभाव को रोकने मे कैसे समर्थ है । शङ्कर स्वामी कहतेहैं कि "मृग, हस्ति, भृङ्गी, मच्छी और मधुमक्षि यह पांचो एक २ इन्द्रिय को पूर्ण करने मे मारे मारे फिरते है तो मनुष्य जिसके पांच इन्द्रिय हैं उसका क्या कहना है ।" यही मन यदि हम खुला छोडदे तो हमारा परम शत्रु है जब इसको वश मे करले तो यह हमारा परम मित्र है यथा 'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः'एक दक्षिणी महात्मा कहते है—ओह मन तू क्यो इतनी चञ्चलता से पडा भटकता है, कई बार मैने तुझको समझाया है कि यह अपनी चञ्चलता छोड दे उसकी प्राप्ति का यत्न कर' जिसको न तो शास्त्र का पढना और न हठ योग का करना और नही वेदोका पढना प्राप्त करसकता है, इस अपने निरर्थक भ्रमण को छोडदे, नही तो मै तुझे मारडालूंगा । और जब मनको यथार्थ रीति

से जीत लेनेपर और गुरु कृपा से उसने सत्य का अनुभव करलिया, तो कहता है ओ यार मेरे मन ! तूनेही मुझको मेरी वास्तविक दशा जताई और मेरी यथार्थ दैवी प्रकृति का बोध कराया, तूही मेरा सच्चा मित्र निकला है, तूही मेरा गुरु है और तूही मेरे जीवन का मोक्ष दाता है, भक्ति का लाभ यही है कि यह मनको लोभ देकर उसको इन्द्रिय के क्षुद्र भोगों की आसक्ति से मुक्त कराके सर्व जगत् कारण और प्रेममय जगत्पिता मे उसकी आसक्ति बढाता है, सब से सुगम यथार्थ और साथ ही सबसे अच्छा उपाय मनको लोभ देनेका यह भक्ति ही है, जिससे मन बाह्य बातो से हटकर सर्वज्ञान के आधार ब्रह्म सच्चिदानन्द में अपना आश्रय लेता है।

मनुष्य योग के पीछे पडा फिरता है। जब इन अपने इन्द्रियो को प्रसन्न करते २ प्रकृति कुछ रुकावट करती है तो उसको ज्ञात होजाता है कि जो वस्तु पुण्य है वह हमारे सुख से कुछ पृथक् वस्तु है, सो अन्त मे अपने स्वर्गीय पिता से सहायता मागता है यहही भक्ति का प्रथमाकुर है यह आश्रय का ख्याल (Feeling of dependence) शनैः २ प्रेम मे बदल जाता है और भगवान् श्रीकृष्ण के बचनानुसार ' बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मा प्रपद्यते । वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥' बहुत जन्मो के पश्चात् भक्त को ईश्वर का साक्षात्कार होजाता है। उस एक एक ईश्वर को ही जगत् के सारे दृश्योमे देखना उसीके अनन्त रूपो की शोभा मे मग्न रहना और उस सत्य की प्राप्ति मेही यत्न करते रहना इसीका नाम भक्ति है। महर्षि नारद ने क्याही सत्य कहाहै, गुङ्गेकी रसनाकी नाई प्रेम स्वभाव भी अकथनीय है। यह तीनों गुणो से रहित है, वासना रहित है, यह सदैव बढता है भक्ति को प्राप्त करके भक्त उसी को देखता है उसी को सुनता है उसी का कथन करता है और उसी का विचार करता है वही उपासक बडे है जिनका संसार मे भक्ति की प्राप्ति ही एकमात्र लक्ष्य

है, गद्गद् वाणी से और खडी रोमावली से और रोते २ वह भक्ति का एक दूसरे से कथन करते हुए और इस प्रकार अपने कुटुम्बो को संसार मे पवित्र करते हैं तीर्थो मे तीर्थो की शोभा का कारण ऐसे ही मनुष्य हैं उनके प्रभाव से सब कर्म्म शुभ है, और पुस्तक धार्मिक पुस्तक है वह दैवी शक्तियो का आधार है, उनके पितृवर्ग प्रसन्न होते है, देवता प्रसन्न होकर नृत्य करते है पृथ्वी के वह रक्षक हैं क्योकि वह प्रभु के अपने है इस वास्ते इनमे वर्ण भेद, विद्या भेद, जन्म कर्म रूप धन किसी का भेद नही होता।

स्वामी विवेकानन्द कहते है, बहुत से मनुष्य नास्तिक है। मुझे इस बात से आनन्द है कि आज कल पश्चिम मे एक और प्रकार के नास्तिक उत्पन्न हुए है जिनको पदार्थ वादी(Menitestations) कहते है क्योकि वे सच्चे नास्तिक है। आजकल के उन धार्मिक नास्तिको से यह अच्छे है जो अपने धर्म्माचरण मे तो सच्चे नही हैं परन्तु धर्म्म की दुहाई देते फिरते है, जो धर्म्म के वास्ते लडने को तो कटिबद्ध है परन्तु उसके अनुष्ठान का उसके यथार्थ ज्ञान का कभी यत्न नहीं करते। "ईसामसीह कहते है" मांगो और तुमको प्राप्त होगा, जिज्ञासा करो और वह मिलजायगा " द्वारको खटखटाओ और यह खुलजायगा" एक शिष्य गुरु के पास गया और कहा भगवन् मुझे धर्म्म का उपदेश करो, गुरू ने मुसकराकर शिष्य की ओर देखा और कहा कुछ नही, शिष्य प्रति दिन गुरूके पास आता और धर्मोपदेश सीखने की विनती करता। एक दिन जब बहुत घाम था, वह गुरु के पास गया, तो गुरु ने कहा कि नदी तक हमारे साथ चल और वहा चलकर गोता लगा। शिष्य ने जाकर गोता लगाया पीछे गुरु ने लगाया और शिष्य को बलात् जल के नीचे दबाये रक्खा, जब शिष्य पानी के नीचे से बाहिर निकलने का बहुत यत्न करने लगा, तो गुरू ने छोड दिया, जब

शिष्य बाहर आया तो गुरू ने पूछा कि जब तू जल के नीचे था, तो ज्यादा किस वस्तु की आवश्यकता थी ? शिष्य ने उत्तर दिया खुली पवन मे एक श्वास की। (गुरू) क्या तुम ईश्वर की भी इतनी ही लालसा करते हो और तेरी लालसा इतनी ही है, तो ईश्वर एक क्षण मे प्राप्त होजायगा, जबतक चित्त में ऐसी लालसा नही है, धर्म नही मिलसकता, चाहे कितनाही अपनी बुद्धि शास्त्र और कर्म-काण्ड से यत्न करो, जब तक यह तृष्णा यह लालसा तुम्हारे चित्त से नहीं जायगी, तुम कुछ नास्तिक से अच्छे नही हो, अन्तर केवल इतना है कि नास्तिक का विश्वास पक्का है और तुम्हारा कच्चा है॥

ईश्वर के वास्ते यह तृष्णा ही भक्ति कहलाती ह, परन्तु यह जरूरी नही है कि यह भक्ति सदैवही ज्ञान से मिली हो, जो ज्ञान केवळ मुक्ति का साधन है। सब ज्ञानी जिन्हो ने ईश्वर को पाया है भक्त हुए है, परन्तु सब भक्त ज्ञानी नही हुए, इसका कारण यह है कि ईश्वर के यथार्थ रूप को जाने विना भी मनुष्य ईश्वर से प्रेम करसक्ता है। उस ब्रह्म को एक दफाही प्राप्त होजाना असम्भव है, जैसा लेटने के वास्ते जरूरी है कि मनुष्य बैठे, इसी प्रकार उस निर्गुण ब्रह्म को पानक वास्ते जरूरी है कि मनुष्य प्रथम उसकी स्थूल मूर्तियो की उपासना करे। और भगवान् श्रीकृष्णके वचनानुसार 'ये यथा मा प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्" (४,११)जो सच्चे भक्त है यद्यापि उनकी प्रथमावस्था मूर्ति पूजा से आरम्भ होती है, उसको यह मूर्ति शनैः २ उस सर्वव्यापक सर्व शक्तिमान् दयासागर का लिग बनजाती है। शिव-लिग को देखकर एक शैवभक्त कहता है "ओ परमाशिव ! तुम्हारा निवास तो त्रिपुरन्द्री मे है, तुमने मुझ पर बडी कृपा की है, सब को भुलाकर केवल आप के ज्ञान सूर्य्य के ध्यान मे ही मै मग्न रहता हूँ मेरे चित्त के अन्धकार को हटाकर आप उसमे ज्योतिर्मान हो, मैंने सृष्टि

के प्रत्येक परमाणु को देखा, और उन सब मे एक भी ऐसा नहीं जिसमे आप नही हो, आप के विना भी कुछ नही है परन्तु आप किसी मे दिखाई भी नहीं देते। आहा! तेरे यथार्थ रूप को कौन जान सके? सच्चे भक्त की दृष्टि मे मन्दिरो की मूर्तिये उसी परमेश्वर के कई रूप है और जब समयानुसार उनको ज्ञान प्राप्त होजाता है, यही मूर्तिय उनकी दृष्टि मे और भावो को स्पष्ट करती हैं। एक महात्मा कहते है —हे ईश्वर परम शिव! तेरे ललाट पर अर्धचन्द्र का अंकित होना इस बात को जतलाता है कि तू ज्ञान का आधार है, तेरे हाथ मे त्रिशूल का होना इस बात को स्पष्ट करता ह कि तू ही "त्रिमूर्ति" है, तेरा श्वेत नन्दी पर आरूढ होना इस बात का बोधक है कि तू पुण्य का सागर है यद्यपि तेरा ऐश्वर्य्य अनन्त है तो भी तू इतना छोटा है कि मेरे हृदय में समा सक्ता है, यद्यापि तेरे स्वरूप की कोई मूर्ति नहीं है, तौ भी यह सारा जगत तेराही रूप है, यद्यपि तू मनुष्य के हाथ से नही बनाया जासक्ता तो भी तू बडे आनन्द से उस रूप को धारण करलेता है, जो तेरा भक्त तेरे वास्ते निर्माण करता है, तौ भी तू पापी के साथ नही रहता॥

मूर्ति लिगो से ईश्वर की पूजा करना निर्गुण ब्रह्म की उपासना की अपेक्षा उत्तम नही है, परन्तु बहुत से मनुष्य इस उपासना को भी करने के अयोग्य हैं, सगुण से निर्गुण उपासना बहुत कठिन है। यथा:—

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ताहिगतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते॥

यह वास्तव मे भ्रम ही है क्योकि अमूर्त्त ईश्वर की मूर्ति मान लीजाती है परन्तु भ्रम दो प्रकार का होता है, एक समवादि भ्रम और दूसरा विषमवादि भ्रम। एक बन्द कमरे मे लम्प जलरहा है, परन्तु उसकी झोंथो से ज्योति कुछ बाहर आरही है, अब कोई मनुष्य इस ज्योति को मणि समझ दौडकर ज्योति के पास जाता है परन्तु मणि

न झोथो मे है और न कमरे मे, इसको कहते है विषमवादि भ्रम, क्योकि इसमे पडने से मनुष्य उस बस्तु को प्राप्त नही होता जिस के पीछे वह दौडा था। और यदि लम्पके बदले वहा सच मुच मणि होती तो मनुष्य को मणि प्राप्त होजाती, परन्तु झोथो मे नही बरञ्च कमरे मे इस को कहते हैं समवादि भ्रम, क्योकि इसमे पडने से मनुष्य उस वस्तु को पालेता है जिसको वह ढूंढने निकला था। यह सगुणोपासना या अपरा भक्ति समवादिभ्रम है क्योकि इसको करने से मनुष्य अन्त मे निर्गुण ब्रह्मको पालेता है। और हमारा इन्द्रियजन्य भोगो के पीछे भटकते फिरना विषमवादि भ्रम है, क्योकि इसके सेवन से हम सच्ची शान्ति से दूररही होते जाते है। एक भ्रम से दूसरा भ्रम नष्ट होजाता है सो इस प्रकार इन्द्रिय सुखके भ्रम को छोडकर इस सगुणोपासनारूपी भ्रम को प्राप्त कर जैसे मन का प्रथम भ्रम हटजाता है ॥

यह भक्ति तीन प्रकार की होती है, बाह्य, अनन्य और एकान्त, जब भक्त संसार के दुःखो से विचलित होकर उसके चरणारविन्द की शरण लेता है और प्रेम मे मग्न होकर ईश्वर की इस प्रकार से स्तुति करता है, कि 'मेरे परम पिता ईश्वर के चरण हीन बीणा के स्वर की नाई या सायङ्काल के पूर्ण चन्द्र की नाई शोभित है' तो उसे बाह्य भक्ति कहते हैं वास्तव मे ईश्वर को अपने से बाहर समझ कर जितनी उपासना की जाती है वह सब बाह्यभक्ति है। सब देवो की अपेक्षा एक देवता की ही उपासना का नाम अनन्य भक्ति है। वास्तव मे ऐसा नही है कि अनन्य भक्ति मे और देवताओ की सी उपासना नही है, बरञ्च वह सब देवताओ को उस अपने ही इष्ट देवता के रूप में मानता है। एक वैष्णव भक्त कहते हैं "मैं जिस ईश्वर का साक्षात्कार करता हूँ जो आपही सब कुछ है जो सकल चराचर सृष्टि का कारण है, जो सनातन है, जो आप विष्णु है, शिव और ब्रह्म जिसके रूप है (Materalist) जो मधु और अमृत से भी बढकर मीठा

है और जो मेरे हृदयाब्ज में विराजमान है ।" वैसेही शैव कहता है, "उसका निवास चिदांबर में है । जो दुग्ध और मधु से भी मीठा है जो सजीव ज्योति है, जो ब्रह्मा और विष्णु है, जो गरजते समुद्र और निश्चल हिमवान में व्यापक हो" अपने इष्ट देवता ही मे सब देवों को देखना अनन्य भक्ति है, इष्ट देवता चाहे कुछ ही हो, भक्त उसको परमात्मा ही मानता है । एक महात्मा कहता है "मनुष्यो ! चाहे तुम ब्रह्मा, विष्णु, या शिव की उपासना करो, या उनका ध्यान करो उनके ज्ञान में रत रहो, चाहे तुम किसी की उपासना करो, तुम उस परम पुरुष की ही उपासना करते हो–

आकाशात्पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम् ।
सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति ॥

यह श्लोक हम नित्य पढते हैं । भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं–

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेऽपि मामेव कौंतेय भजंत्यविधिपूर्वकम् ॥

उस परमेश्वर के अनन्त गुण कल्याण के अनन्त रूपामृत गुणोंके ध्यानमें मग्न रहना एकान्त भक्ति है । एकान्त भक्तिही सगुणोपासना का सर्वोत्तम रूप है ॥

पं० अमोलकराम जी बी. ए.

❀ वैदिक धर्म सर्व श्रेष्ठ क्यों है ? ❀

इस प्रश्न का उदय प्रायः सबही के मनमे हुआ करता है । इस भूमण्डल भर में मनुष्य समाज और धर्म्म का बडा निगूढ सम्बन्ध है । जहां २ मनुष्य हैं वहीं २ उनका कोई न कोई धर्म्म भी अवश्यही है । समाज जितना शिक्षित और अविद्या रहित होता है,

धर्म्मभी उतनाही उज्ज्वल और अधिकांग सम्पन्न होता है। और और धर्म्मों मे मनुष्य के स्वभाव और सुख के अनुसार धर्म्म के एक २ वा दो २ सोपानो का वर्णन है किसी धर्म्म से नीचे के दो सोपान छोड दिए तीसरा वर्णन करदिया, अब नीचे के दोनो सोपानो पर चढने की प्रणाली जानी जासकती है न ऊपर, और भी सोपान है यह ज्ञान होसकता है, परन्तु वैदिक धर्म्म मे यह त्रुटि नहीं है। इसीसे वैदिक धर्म्म सर्व श्रेष्ठ है।

अब हम धर्म्म के इन स्वाभाविक भेदो को दिखाकर वैदिक धर्म्म की सर्व श्रेष्ठता दिखाते है। इस ससार मे जितने धर्म्म प्रचालित है उन सब को पांच भागो मे विभक्त किया जाता है।

१—जीव का नित्य सुखोद्देशक धर्म्म।

२—जीव का सुख दुःख नाशक धर्म्म।

३—जीव का अनित्य सुखोद्देशक धर्म्म।

४—जीव का समस्त सुख वर्द्धक नैतिक धर्म्म।

५—जीव का जड सामर्थ्य सम्वर्द्धक धर्म्म।

जीव का नित्य सुखोद्देशक धर्म्म उस धर्म को कहते हैं जिसमे जीव तत्त्व को नित्य कहकर सिद्धान्त किया है, और नित्य आनन्द भोगही जीवका प्रयोजन सिद्ध किया है। भगवत्तत्त्व की नित्यता, प्रीति तत्त्व जीव के जड सम्बन्ध की अनित्यता और परलोक प्रभृतितत्त्व प्रमाणित किये गए है। इसी धर्म्म की शारीरिक और मानसिक वृत्तियों की परिचालना को भगवद्भक्ति, इसी धर्म्म की समष्टि को कहते है "श्रीवैष्णवधर्म्म"

जिन समस्त धर्मों मे इन सब मूल विषयो पर विचार किया गया है या इन तत्त्वोकी समालोचना कीगई है वे सब धर्म अवश्य ही जीव के नित्य सुख वा धर्म के नाम से अभिहित होगे। चाहे उनमें कुछ भेद भी प्रतीत होता हो।

जो लोग धर्म को वैज्ञानिक दृष्टि से देखते है,वे अवश्यही स्वीकार करेगे कि खृष्ट धर्म, मोहम्मदीय धर्म, ब्राह्मधर्म प्रभृति सर्व धर्म जीव के नित्य सुख बोधक धर्म हैं । इनमे चाहे जितना अवान्तर भेद हो, परन्तु मूल मे ये सब एक जातीय है । भेद केवल प्राकृत और विकृत-का है ॥

जीव का सुख दुःख नाशक धर्म, इस जगत् मे अनेक प्रकार से दृष्ट होता है।उन सबमे बौद्ध धर्म्म ऐसी मिसम् और केवल अद्वैतवाद प्रधान है यह मत समय पर उत्थित होकर जगत के अनेक स्थानो में व्याप्त हुआ है।इसके आकार भिन्न देशो मे भिन्न २ प्रकार के है, किन्तु विचार करने से इसका परम सिद्धान्त सर्वत्र एकही है । इन सब धर्म्मों को जीव का सुख दुःखनाशक धर्म्म कहा जाता है, क्योंकि इनमे जीव की सत्ताही अमङ्गलमय है, इन धर्म्मो मे जीव की सत्तानाश ही का नाम परम पुरुषार्थ है, सत्तानाश दो प्रकार से सिद्धान्तित होती है । एक यह कि एक मात्र वस्तु है वह नित्यही निर्गुण और विकार-शून्य है । जीव की सत्ता समुदाय विकार और भेदमय है, अतएव मिथ्या और क्लेशमय है । जिस अवस्था मे यह सब व्यावहारिक भेद चरम अभेदतत्त्व मे पर्यवस्थित होता है, उसी अवस्था का नाम "मुक्ति" वा "निर्वाण" है । भेद जनित सुख दुःख का विनाशक एक मात्र निर्वाण ही है जिस धर्म्म के आचरण करने से निर्वाण हो उसी धर्म्म को जीव का सुख दुःखका नाशक धर्म्म कहाजाता है । ग्रीक देशके दार्शनिक विद्वान् जेनोफेनिस् और परमिनाईडस् प्रभृति ने उस देश मे इस मत को प्रचलित किया था। मध्ययूरोपमे भी यही मत कुछ भिन्न आकार धारण कर स्पिनजा,सेलिङ्ग और हेजेल प्रभृति पण्डितो के द्वारा प्रचालित हुआ है इसी मत को और भी परिवर्त्तन कर स्कूपेन हुवा और हार्टमान् प्रभृति ने जगत्मे 'पेसोमिजर' नाम से प्रच-लित किया है । हमारे देशमे जैनमत बौद्धमत और केवल अद्वैत बाद

इसी मत के अनुगत है। कुछ प्रकारान्तर से इसी मतको गुरु नानक शिवनारायण, गोरखनाथ, आउलचन्द और जगन्नाथदास प्रभृति ने उपासना सम्प्रदाय मे प्रविष्ट कर दिया। (२) चाहे जितना आकार परिवर्तन हो किन्तु जिस मत में मुक्ति चरम लय रूप है उन सब मतो को जीव के सुख दुःख नाशक धर्म्म ही मे गिनना चाहिए।

जीव का अनित्य सुखोद्देशक धर्म्म इस जगत् मे अनेक रूपा से दिखाई देता है "कर्म्म मार्ग" इस मत मे कहीं २ ईश्वर प्रणिधान है कहीं कहीं वह भी नहीं है। इस लोक मे देहगत सुख, देहपतन के अनन्तर परलोक मे दूसरा देह प्राप्त होकर ऐन्द्रियक विषय सुख, यही सब इस धर्म्म का तात्पर्य है। द्रव्यो का संघटन और विशेष कार्यकलाप के द्वारा यह सुख प्राप्त होता है। यह मत जीव के नित्य सुखोद्देशक धर्म मे भी गुपचुप जा मिला है। मुसलमानी धर्म्म यद्यपि जीवको नित्य सुखोद्देशक धर्म्म है तथापि उस धर्म्म के स्वर्ग सुख की इन्द्रियता देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि अनित्य सुखोद्देशक धर्म उसमे गुप्तरीति से प्रविष्ट होरहा है. खृष्टान धर्म्म मे यद्यपि जीव के अनित्य सुखोद्देशक धर्म्म का इतना प्राबल्य नहीं है, तथापि खृष्टान धर्म्म ऐसे जीव के अनित्य सुखोद्देशक धर्म्मसे सर्वथा रहित हो सो भी नहीं है। क्योंकि "पुनरुत्थान" के व्यापारसे हमारा सन्देह कुछ कुछ दृढ होता है और 'गार्डन आफ ईडन' के भावो को विचारने से वह सन्देह विश्वास रूप होजाता है।

जीव का समस्तसुख सम्वर्धक नैतिक धर्म्म जडीय विज्ञान का आश्रयकर बहुत से पण्डितों का प्रिय हुआ है। जड वाद, स्थिर वाद, समाज वाद प्रभृति नास्तिक धर्म सब इसी जीव के समस्त सुवर्द्धक नैतिक धर्म्म के अन्तर्गत हैं। जीव का समस्त सुखवर्द्धक नैतिक धर्म्म ऊपर के वर्णित तीनो धर्म्मों में नहीं हो सो नहीं, इन तीनो प्रकार के धर्म्मों मे उसका सद्भाव है, किन्तु जब वह इन धर्म्मों मे से स्वतन्त्र

होकर मनुष्योको दर्शन देताहै तबही वह जडवाद स्थिरवाद वा समाजवाद होजाता है । यह जीव का समस्त सुखवर्द्धक नैतिक धर्म्म सब अवस्थाओं मे जीव के अनित्य सुखोद्देशक धर्म्म के लिए रहता है । इनको पृथक् २ जानने का हेतु यही है कि जीव का अनित्य सुखोद्देशक धर्म्म किसी किसी अवस्था मे समस्त सुखवर्द्धक नही होता है । किन्तु समस्त सुखवर्द्धक नैतिक धर्म्म सब अवस्थाओ मे अनित्य सुखोद्देशक रहता है कर्म्मकाड आधिकांश रूपसे समस्त सुखवर्द्धक नैतिक धर्म्म मे आत्मा की नित्यता नहीं है । जो कोई जीवात्मा कुछ कार्य करते है उसका फल समस्त जीव भोग करते है । कोई कहते है कि शक्ति इस फल को परिचालित करती है, कोई कहते है अदृष्टही यह फल देता है, कोई कहते है अपर्वक नामक एक तत्त्व इस फलको जीवके सन्निसहित करता है ।

(५) जीवका जड सामर्थ्य वर्द्धक धर्म्म विविध देश मे विविध रूपसे विवक्षित होता है । कही कहीं वह धर्म्म केवल इस जड शरीर की वैज्ञानिक शक्ति के बढाने का परामर्श देता है और किसी देशमे किसी मतमे इस स्थूल शरीर के अतीत सूक्ष्म देह वा ज्योतिर्मय वैद्युतिक शक्ति समुदाय रूप देहकी गुप्त शक्ति समुदाय को प्रकाश कराना बढाने का उपदेश है । इस देश वा अन्यदेशो मे जितने प्रकार के तान्त्रिक, यान्त्रिक, मुद्राघटित और यौगिक मत प्रचलित है वे सब इसी मत के अन्तर्गत है । षडङ्ग योग, बौद्ध योग, थियोसोफी, प्रभृति सब इसी मतके अन्तर्गत हैं । थियोसोफी मे यद्यपि जीव के सुख दुःखनाशक धर्म्म के साथ अधिकांश स्वार्थ लिया है सत्य, किन्तु उसकी निज भूमि यही जीव का जड सामर्थ्य सबर्द्धक धर्म्म है ।

वैज्ञानिक दृष्टि से थोडा विचारपूर्वक देखने से स्पष्ट प्रतीत होगा कि इस संसार मे जितने प्रकार के धर्म्म प्रचलित हैं और जितने प्रकार के और नवीन धर्म्म प्रचलित होसकते है वे सब इन्ही पांचो प्रकारो

के अन्तर्गत है और रहेंगे क्योंकि यह पांच भेद वैज्ञानिक क्रमोन्नति पर स्थापित है और यह भी स्वीकार करना होगा कि इस समय तक जितने धर्म्म प्रचलित हुये है वा आगे होंगे वे सब इन्हीं पाचो प्रकार क धर्मों मे से एक को अथवा दूसरे को लेकर चाहे कइयो की आंशिक अवस्थाओ को चाहे एक से उन्नति कर दूसरे तक पहुँचने की मध्य अवस्था को लेकर प्रकाशित है और होंगे ॥

यहां पर यहभी सूचित करना आवश्यक है कि हमारे लेख मे एकांकाश्रित धर्म सर्वोच्च और क्रमशः निम्न श्रेणीका है । जीव के पक्षारंभ मे पञ्चम श्रेणी से चलकर क्रमशः प्रथम श्रेणी तक जाने की आवश्यकता है ॥

अब हम क्रमशः इन पाचों प्रकार के धर्मों का संक्षिप्त वर्णन कर चुके है । यहां इन स ब के विषय मे जो वैदिक पौराणिक वाक्य मिलते हैं, उनको संक्षेप से उद्धृत करते हैं । उद्धार का क्रम हमने यह रक्खा है कि जो उनके आरोहण का क्रम है अर्थात् पञ्चमश्रेणी से आरम्भ कर प्रथम श्रेणी तक ॥

५---जीव के जड सामर्थ्य वर्द्धक धर्म्म विषय में 'अग्निर्हिमस्य भेषजम्' ॥

सूर्य्यएकाकीचरति चन्द्रमा जायते पुनः । तद्धैतदपि वामदेवः प्रतिपेदे अहं सूर्य्योभवम्मनुरभवम् ।

अग्नि हिम का भेषज अर्थात् औषधि है । सूर्य्य दिन मे अकेला विचरता है । उस समय और सब ग्रह अस्त होजाते हैं चन्द्रमा फिर सूर्य के प्रकाश से रात्रि को प्रकाशित होता है ॥

इत्यादि जडपदार्थ के स्वरूप निर्णय करनेवाले वाक्य यजुर्वेद मे हैं। वामदेव ऋषि को ज्ञान के द्वारा यह प्राप्त हुवा कि मै सूर्य्य हुआ था मै मनु हुआ था । इत्यादि सूक्ष्म शरीर के शक्तिवर्द्धक उदाहरण उपनिषदो मे मिलते है ॥

४—जीव के समस्त सुख वर्द्धक नैतिक धर्म्म के विषय मे—मनीषिणः प्रभरद्धं मनीषा यथायथा मतया सन्ति नृणा सत्यवद धम्मंचर * * * मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव * यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो॰इतराणि ॥

तुम बुद्धिमान् होकर एसी बुद्धि संग्रह करो जैसी लोगो की प्रकृति हो इत्यादि यथा प्रकृति सबके प्रिय बनने और सब से बुद्धि सीखने के वाक्य ऋग्वेद मे है। सत्य बोलो धर्म्म करो, मातृदेव हो पितृदेव हो, आचार्य देव हो (अर्थात् इनमे देवता के समान भक्ति करो) जो हमारे अच्छे चरित है उनका अनुकरण करो न कि हमारे बुरो का—

इत्यादि नैतिक उपदेश तैत्तिरीय उपनिषद् मे है।

३—जीवके अनित्य सुखोद्देश धर्म्म के विषय मे। अग्निष्टोमेन यजेत स्वर्गकामः। यावज्जीवमग्निहोत्र जुहुयात्। "तदेतत् सत्यं मन्त्रेषु कर्माणि कवयो यान्यपश्यन् तानि त्रेतायां बहुधा सन्ततानि तान्याचरथ नियतं सत्यकामः एष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके"।

स्वर्ग की कामनाकर अग्निष्टोमयाग करे जबतक जीवित रहे अग्निहोत्र करे।

इत्यादिक ब्राह्मण श्रुतिया यज्ञ और यज्ञफल स्वर्गप्राप्ति विधान करती है।

कवियो ने (ऋषियो ने) वेदमन्त्रो मे जो सब कर्म देखे है उन्ही को सत्य कहा है। वे कर्म त्रेता मे बहुधा विस्तार किये गये है। तुम नियत सत्य काम होकर उन कर्मों का आचरण करो येही तुम्हारे सुकृत (पुण्य) लोक का पथ है इत्यादि कर्म्म प्रशंसा के वचन मण्डूकोपनिषद् मे है ॥

२—जीव के सुख दुःख नाशक धर्म्म के विषय मे "न भयं सुखंदुःखं च तथा मानापमानयोः। यत्तद्भावविनिर्मुक्तन्तदग्राह्य * ब्रह्मतत् परम्।

अत्यन्तोपरतिर्यत्र दुःखस्य च सुखस्य च" न भय है न सुख है न दुःख है न मानापमान का विचार है इन समस्त भावो से रहित वहही परब्रह्म है वह ही ग्राह्य है इत्यादिक सुख दुःख नाशक भाव को निर्वाण रूप से तेजोबिन्दूपनिषद् मे वर्णन किया है ।

वही परम योग जीवो के निःश्रेयस के निमित्त है कि जहा दुःख और सुख दोनो की अत्यन्त निवृत्ति है । इत्यादि सांख्य वर्णन मे श्रीभागवत् मे भी देखा जाता है ।

१—जीव के नित्य सुखोद्देशक धर्म्म के विषय मे "नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान् । तमात्मस्थं येनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ।"

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्योनमेधया न बहुनाश्रुतेन । यमेवैषवृणुतेतेनलभ्यस्तस्यैष आत्मावृणुतेतनुंस्वाम् ॥

जो नित्य जीवो का नित्य है, चैतन्य जीवो का चैतन्य है, बहुत से जीवो का एक नियन्ता है जो समस्त कामो का विधान करता है । वह आत्माधार है उसे जो जीव देखते है उन्ही को शाश्वती अर्थात् नित्य शान्ति मिलती है औरो को नही । इत्यादि कठोपनिषद् मे भगवत् प्राप्ति के द्वारा नित्य सुख का विधान है ॥

यह आत्मा बडे २ लैक्चरों से नही मिलता है, न बुद्धि से न बहुत पढने से । यह जिसको वर्ण करता है अर्थात् कृपा करता है उसी को मिलता है उसी के आगे यह अपना तनु (मूर्ति—स्वरूप) प्रकाश करता है ॥

इत्यादि मण्डूकोपनिषद् मे भगवान् प्राप्ति भगवत् कृपा साध्य है यह सब वर्णित है ।

अब हमारे इस ऊपर के प्रस्ताव के पाठ करने से यह स्पष्ट सिद्ध होजायगा कि इस जगत् मे जितने आस्तिक और नास्तिक धर्म्म प्रचलित है वे सबही अधिकारी भेद से वैदिक धर्म्म मे आलोचित

है। वैज्ञानिक विचार से धर्म्म के जितने भेद हैं वे सब एकाधार वैदिक धर्म्म मे ही हैं सुतरां वैदिक धर्म्म ही सर्व श्रेष्ठ होसक्ता है और सब अवस्थाओ मे जीव का जीवन स्वरूप होसक्ता है। इसीके द्वारा जीवन-मात्र का परम कल्याण हो सक्ता है। इसी 'वैदिक धर्म्म' का नामान्तर है "हिन्दू धर्म्म" यहि "वैदिक धर्म्म" सर्व श्रेष्ठ है अब आप को भी यह प्रतिपन्न होगया कि 'वैदिक धर्म्म सर्व श्रेष्ठ क्यो है?' अब आपके हृदय मे यह प्रश्न रूप से न रहा होगा कि वैदिक धर्म्म सर्व श्रेष्ठ क्यों है? परन्तु अब आप दूसरो के आगे भी यह सिद्धान्त कर सकेंगे कि-वैदिक धर्म्म सर्व श्रेष्ठ क्यो है? सुतरा हम भी अब इस प्रस्ताव को यहीं पूर्ण करते है कि "वैदिक धर्म्म सर्व श्रेष्ठ क्यो है" ॥

जीव की नितान्त माया बद्ध जड अवस्था से आरंभ कर, विशुद्ध चिन्मय अवस्था प्राप्त होने तक अनेक सोपान है। उन सब सोपानो को क्रमशः अतिक्रम कर सर्वोच्च चूडा तक आरोहण करने को क्रमोन्नति लाभ करने के अनुसार ये पांच भेद हुए है वैदिक आर्य्य धर्म्म की श्रेष्ठताका यही कारण है कि वैदिक धर्म्म मे इन पाचो प्रकार के धर्म्म का यथावत् सन्निवेश है और धर्म्मों मे ऐसी सुन्दर प्रणाली से पाचो प्रकार के धर्म्मों का समावेश वा सामञ्जस्य नही है। किसी मे दो का वा तीन तक का अवस्थान है, औरो को छोड दिया है। अतएव उन धर्म्मों मे किसी धर्म्म को पूर्ण धर्म्म नही कहा जासक्ता है,इसी से वे सब धर्म जीवकी सब अवस्थाओ मे उपयोगी नहीं होसक्ते है किन्तु वैदिक धर्म्म सब अवस्थाओ मे जीवके जीवन के प्रत्येक अंश के साथ मिलकर जीवन स्वरूप होजाते है, धर्म्म जब तक जीव का जीवन रूप न हो तबतक जीवन धर्म्म मय और जीव धार्मिक नही होसकता है।

. अन्यान्य धर्म्मों मे एक वा दो सोपान को धर्म्म रूप से दिखा दिया है, परन्तु निम्न सोपान क्यो कर अतिक्रम किये जासकते है और इससे ऊपर कुछ है कि नहीं, इन विषयो मे कुछ भी उपदेश नही

है। इससे फल यह होता है कि धर्म्म एक स्वतन्त्र जड पदार्थ होजाता है जीवन रूप नही होसक्ता है। धर्म्म जब तक धार्म्मिक का जीवन नही होजाता तब तक वह एक आगन्तुक के समान वा एक अतिथि के समान गृह मे निवास करता है। इससे जीव का कब मंगल होसक्ता है ? ॥

जडवादी जडवादी रहजाते, कर्मी कर्मी ही रहजाते है, ज्ञानवादी ज्ञानवादी ही रहजाते है, उच्च अधिकार नही प्राप्त करसकते है।

वैदिक धर्म्म मे इन सब स्थानोका भिन्न २ वर्णन है। जीवकी निष्ठानुसार यथा भूमि मे अवस्थान और निष्ठा अतिक्रम होने से निम्न भूमिकाको परित्याग कर उच्च भूमिका आरोहण करना यह सब यथा विहित वर्णित है।

और और धर्म्म एकही एक अवस्था के जीव के कल्यणकारी है परन्तु वैदिक धर्म्म जीवकी सब अवस्थाओ मे कल्याण विधान करता है। ऐसेही भूरि भूरि उपदेश वैदिक धर्म्म मे प्रदत्त है।

वैदिक धर्म्मका आश्रय करने पर भी यदि जीव को विशुद्ध भगवद्भक्ति पर्यंत उच्चगति शीघ्र न मिले तो अवश्यही वह दुर्भाग्य जीव कहा जायगा।

हमारा ऊपर का यह हेडिंग कि "वैदिक धर्म्म सर्व श्रेष्ठ क्यो है?" अवश्य अब पाठक जन समझ गये होगे।

फिर भी उसका सार संकलन दिये देते है, कि इसीसे वैदिक धर्म्म सर्व श्रेष्ठ है कि इसमे जीवगण की सब अवस्थाओ मे कल्याण होने की संभावना है अन्यान्य धर्म्मों में किसी नियमित अवस्थामे और कदाचित् मंगल होता है। यही वैदिक धर्म्म की श्रेष्ठता है इसी से वैदिक धर्म्म सर्व श्रेष्ठ है। अब सब श्रोतागण समझगये है, कि "वैदिक धर्म्म सर्व श्रेष्ठ क्यो है ?"।

श्रीमधुसूदन गोस्वामी वृन्दावन–

पुत्र ।

महाशय ! पुत्र यह नाम भी कैसा मधुर और मनोहर है, महाकवियोने इस शब्दकी महिमा नाना प्रकारसे वर्णन की है ।

इदं तत्स्नेहसर्वस्वं सममाढ्यदारिद्र्योः ।
अचंदनमनौशीरं हृदयस्यानुलेपनम् ॥

पुत्र स्त्री पुरुषोंके अनुरागका सर्वस्व है, कैसी अद्भुत बात है कि धनी और दरिद्र दोनोको पुत्ररूप धन समान है । पुत्रके होनेसे जो सुख सार्वभौम राजाको होताहै वही एक रङ्क पुरुषको भी होताहै चन्दन और खसका लेप करनेसे जो जो आनन्द पुरुषको मिलताहै वैसा ही सुख सजीव खिलौने पुत्रके आलिङ्गनसे प्राप्त होताहै ।

दिग्वाससं गतव्रीडं जटिलं धूलिधूसरम् ।
पुण्याधिका हि पश्यन्ति गंगाधरमिवात्मजम् ॥

एक कवि बालकको भगवान् शिवजीकी उपमा देताहै–शिवजी दिगम्बर है, वह ज्ञानस्वरूप होनेसे सदा अवधूत वेशमे रहते है, वस्त्रसे शरीरको ढापनेकी उपाधि उनको नही है । लडके भी दिग्वासस् अर्थात् नंगे रहतेहैं । शङ्करजीको लज्जा नही है, बालकोको भी लज्जा नही होती । शम्भु जटाधारी है, लडके भी बालोकी लटें रखाये रहते है । भोलानाथजी विभूति लगानेसे धूसर रहतेहै, बालक भी बालू मिट्टी आदि मे खेलनेसे धूसर होरहतेहै । संसारमे जिन तपस्वियोके बडे बडे कठिन तप है–जिन्होने बहुत पुण्य कियेहै वे ही शिवजीके समान पुत्रोको देखतेहै । (पातेहै) कहॉ तक लिखाजाय ऐसे ही अपूर्व अपूर्व भाव कवियोने पुत्रके ऊपर लिखे हैं ।

धर्मशास्त्रकारोने तो इस शब्दका अर्थ भी लिखा है–

पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्पितरं त्रायते सुतः।
तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा॥

'पुत्' इस नामका एक नरक है उससे पिताको जो बचावे उसको पुत्र कहते है। यह पुत्रशब्दकी व्युत्पत्ति स्वयं ब्रह्माने की है। वशिष्ठस्मृतिमे लिखाहै—

ऋणमस्मिन्सन्नयति अमृतत्वं च गच्छति।
पिता पुत्रस्य जातस्य पश्येच्चेज्जीवतो मुखम्॥

पिता यदि जीतेहुए पुत्रका मुख देखले तो पितरोका ऋण उसमे रखदेताहै (पितृऋणसे उऋण होजाताहै) और मोक्षको प्राप्त करता है। शास्त्रोका सिद्धान्त है कि मनुष्य, इस जीवलोकमे पैदा होते ही तीन ऋणोसे ऋणी होताहै यथा देवऋण, पितरऋण और अतिथिऋण। जब पुत्र उत्पन्न होजाय तो इन तीनो ऋणोसे उऋण होजाताहै, क्योकि अपना ऋण अपने पुत्रके ऊपर रखदेताहै। यदि पुत्र योग्य हो और गया आदि स्थानोमे पितरोका श्राद्ध करदे तो अवश्य उसके पितर मुक्त होजातेहै, पुत्रकी योग्यता पिताके आधीन है, क्योकि पुत्र पिताका प्रतिबिम्ब है, जैसे गुण दोष पिता मे होतेहैं वैसे ही पुत्रमे आतेहैं इसीसे गर्भाधानकी विधि बनीहुई है, उसके अनुसार पवित्र संस्कारवाला पिता आधान करै तो अवश्य सुयोग्य पुत्र उत्पन्न हो। शास्त्र मे कहा हुआ है कि—

अङ्गादङ्गात्सम्भवति हृदयादभिजायते।
आत्मा वै पुत्रनामासि त्वं जीव शरदांशतम्॥

यह मन्त्र स्पष्ट कह रहा है कि पुत्र पिताके प्रत्येक अङ्गसे और मनसे उत्पन्न होताहै, पुत्र नाम जिसका पडाहै ऐसा आत्मा ही है अर्थात् पिता ही पुत्ररूप धारण कर उत्पन्न होताहै ऐसे पुत्र तुम सौ वर्ष जीओ। इस मन्त्रसे निर्विवाद सिद्ध हुआ कि योग्य पुत्र उत्पन्न

करने के लिये पिताकी योग्यताकी आवश्यकता है। आपको विदित होगा कि चित्रकार (फोटोग्राफर) जब किसीका प्रतिबिम्ब लेता है तो कैसी सावधानी प्रतिबिम्ब निकलवानेवालेको करनी पडतीहै, जहां कुछ भी हिले या आंख ही मिचगई तो चित्र टेढा अथवा कुरूप होजाताहै । यह स्मरण रहे कि मनुष्य के निर्दोष होनेपर भी उसकी असावधानी मात्रसे कैसा परिणाम होजाताहै । यह चित्रकी बात है जो कि विनोदमात्रके लिये खिचवाया जाता है । मनुष्यकी उत्पत्ति इससे कुछ विचित्र है । यह चित्रकारी ईश्वरकी है । इसका चित्रकार बडा सिद्धहस्त है अनादिसे सृष्टि चली आई है। न इसके अन्तका ही पता लगता न आदिका । अपनी बुद्धिके अनुसार यद्यपि मुनियोने इसका भी निश्चय किया है पर मनुष्य अपनी तुच्छ बुद्धिसे उसमे कुछ तर्क वितर्क नहीकर सकता। प्रयोजन यह है कि इतने समयका चित्रकार भगवान् देशकाल जीव के पुण्यापुण्यकी सामग्री (भाग्य) पुरुषकी चेष्टा इत्यादि सामग्री द्वारा जो चित्र मनुष्यका खीचता है उसमे कभी फर्क नही पड सकता । जीवके पुण्यापुण्यकी सामग्री ही मुख्य कारण है इससे मनुष्यके पूर्वजन्मके शुभकर्म तथा इस जन्मके उत्तम कर्मोसे जिस पुत्रका जन्म होगा वही यथार्थ पुत्र कहानेयोग्य हो सकता है । नीतिकारोने इसी पर कहाहै कि "सन्ततिःपुण्यमाख्याति वपुराख्याति भोजनम्" सन्तानके आचरण पिताके पुण्यको बतातेहै शरीरका पुष्ट वा कृश होनाही भोजनका अनुमान करादेताहै इसीलिये मुनि तथा नीतिकार उपदेश करते है कि कुछ भी समय धर्म अर्थ और कामो से रहित व्यतीत न होना चाहिये । धर्मशास्त्रकारोने स्पष्ट कहा है कि, सन्तान माता या पिताके शील के ही अनुसार होती है इससे उचित है कि माता पिता दोनो सुयोग्य होने चाहिये ।

कभी कभी ऐसे प्रतिबन्धक कर्म आजाते हैं कि मनुष्यो की सन्तति नही होती, इस दशामे गृहस्थाश्रम अपूर्ण रह जाता है क्योंकि पुत्रके

न होनेसे देव पितर और मनुष्य ऋण चुकता नहीं, यह गृहस्थका बडा दुर्भाग्यहै । वसिष्ठजीने अपनी बनायी हुई स्मृतिमे लिखाहै कि "नापुत्रस्य लोकोऽस्तीति श्रूयते" अर्थात् वेदोका सिद्धान्त है कि जिसके पुत्र न हुआ हो उसको स्वर्गादि उत्तम लोक मरनेके पीछे नहीं मिलते इससे महर्षि मनुने कहाहै कि–

अपुत्रेण सुतः कार्यो यादृक् तादृक् प्रयत्नतः ।
पिण्डोदकक्रियाहेतोर्नामसङ्कीर्तनाय च ॥

जिसके पुत्र न हो उसे जिस तरहसे हो उस तरहसे पितरोके श्राद्ध तर्पण आदि करने तथा संसार मे अपने नाम चलनेके लिये धर्मपुत्र बनाना चाहिये । पहले समयमे ११ प्रकारके धर्मपुत्र करनेका आधिकार था पर कलिमें केवल दत्तक लेनेकी ही मुनियोंने आज्ञा दी है, शेष १० प्रकारके पुत्रों का त्याग कियाहै, इससे यहां पर दत्तकके विषयमें कुछ लिखते हैं ।

माता पिता वा दद्यातां यमद्भिः पुत्रमापदि ।
सदृशं प्रीतिसंयुक्तं स ज्ञेयो दत्रिमः सुतः ॥

पिता अथवा उसकी आज्ञासे माता जिस अपने योग्य और प्रसन्न पुत्रको संकल्प करके दूसरे को देदेवें वह दत्तक कहलाता है दत्तक अपने गोत्रका ५ वर्षतक की अवस्थावाला उसके माता पिताके सामने अग्निमें होमकर वैदिक विधिसे लेना चाहिये पीछे अपनी शाखाके अनुसार कुल रीति से उसका उपनयन करना चाहिये । सामयिक राजाकी आज्ञा लेनी भी आवश्यक है । परन्तु यदि अपने सहोदर भाई का पुत्र किसी तरहसेभी मिलजायतो कभी दूसरेका पुत्र दत्तक नहीं लेना यह मुनियोंका सिद्धान्त है ॥

सर्वेषामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान्भवेत् ।
सर्वे ते तेन पुत्त्रेण पुत्त्रिणो मनुरब्रवीत् ॥

सर्वासामेकपत्नीनामेका चेत्पुत्रिणी भवेत् ।
सर्वास्तास्तेन पुत्रेण प्राह पुत्रवतीर्मनुः ॥

बहुतसे सहोदर भाइयोमे एक भाई भी यदि पुत्रवाला हो तो सभी भाई उस के पुत्र से पुत्रवाले है । एक पुरुषकी कई पत्नी होवे उनमेसे एक भी यदि पुत्रवाली हो तो वे सभी स्त्रिया उस पुत्रसे पुत्रवाली होती हैं । ऐसा मनु कहते है ।

व्यवहारमयूखमे लिखाहैः—

[भ्रातृ पुत्रः] दत्तकस्तु परिणीत उत्पन्नपुत्रोपि भवतीति

तातचरणाः । भाईका पुत्र विवाह किया हुआ हो चाहो पुत्र भी उसके उत्पन्न होगयाहो तौभी वह दत्तक होसकताहै । याज्ञवल्क्य मुनिके आशयके अनुसार मिताक्षराकारका भी यही मत है कि भाई-का पुत्र यदि दत्तक मिलसकै तो दूसरा कभी न लेना । मुनिलोग त्रिकालदर्शी है उनका कहना मनुष्योको निस्सन्देह करना चाहिये भाईके शुक्रसे उत्पन्न हुआ पुत्र भाई ही है भाई अपने पिताकी मूर्त्ति है, यह सभी समझसकते है कि भाईके पुत्रके सामने दूरका बिरादरा पितरोसे अवश्य दूर होजाता है । लोगोका यह हठ और दुर्भाग्य ही समझना चाहिये कि वह भाईके पुत्रके रहनेपर जो दूसरेको दत्तक लेनेका अविचार करतेहै । यह बडे खेदकी बात है कि आज कल लोग जिसको चाहे उसको अपना दत्तक बनालेते है उससे पितरोंका उद्धार होना तो अलग रहा उलटी अधोगति होजाती है । क्योंकि दत्तक लेने पर उस पुत्रका चूडाकर्म अपनी शाखाके अनुसार करना चाहिये फिर संस्कारोंमे प्रधान संस्कार उपनयन तो यत्नपूर्वक करना चाहिये, तभी दत्तक ठीक है नही तो वह दास तुल्य होजाताहै ।

चूडोपनयसंस्कारा निजगोत्रेण वै कृताः ।
दत्ताद्यास्तनयास्ते स्युरन्यथा दास उच्यते ॥

यह व्यवहारमयूखमें साफ लिखाहै। परन्तु आजकल इन बातोंपर कुछ भी ध्यान नहीं दियाजाता, कई ठिकाने पर तो ऐसा देखागयाहै कि विधवा स्त्रियां प्रायः अपनी अज्ञानतावश ऐसे पुत्रको भी गोद लेलेतीहैं जिसकी जातिका भी पता नहीं लगता उससे जो अनिष्टकारी परिणाम होता है उसका कोई उपायही नहीं है। धनियोंमें ऐसे उदाहरण प्रायः मिलते रहतेहै। उनको इस बातका ध्यान नहीं रहता कि हमारा धन उत्तम रीतिसे सत्कार्य्यमें व्ययहो। द्रव्यकी तो तीन ही गति हैं सत्पात्रमे दान, भोग और नाश। यदि कोई धनी चाहै कि मेरा धन कभी नष्ट न हो तो उसके लिये यही उपाय है कि वह विद्यालय, औषधालय, धर्मशाला इत्यादि परोपकारी कामोंमें धनका व्यय करे उससे "पात्रे दानं मनागपि" के अनुसार धन बहुत बढ जायगा जिससे दाताका सदा कल्याण ही होगा परन्तु धनके आने के साथ ही प्रमाद आजाताहै तब उस धनके साथ इतनी ममता होने लगती है कि लोभी मनुष्य अपने प्राणो से भी बढकर उस धनकी रक्षा करने लगता है, अन्तमे अग्नि, चोर और राजा उसके स्वामी होते हैं, कहिये कैसी विषम समस्या है। जो अविचारी मनुष्य अपने माता पिताके शुक्र शोणितसे बनेहुए भाईकी सन्तानको छोडकर दूसरेको दत्तक लेते है इससे न तो उनहींको कुछ लाभ होता न पितर ही प्रसन्न होते, क्योंकि धर्मशास्त्रके अनुसार भाईका पुत्र ही सर्वथा अधिकारी (हकदार) है। यह व्यवहारसिद्ध बात है कि किसीका चाचा विना सन्तान मरजाय तो विना किसीके कहे हुए ही धर्मशास्त्रानुसार वह अपने चाचाके श्राद्ध करनेका अधिकारी है। इसी प्रकार ताऊ या चाचाके निस्सन्तान मरनेपर भी उसके द्रव्यका अधिकारी भतीजा है ही। शास्त्रकी ऐसी व्यवस्था न जान कर जो अप-

नी मनमानी इच्छासे दूरके बान्धवको दत्तक लेते हैं वह सर्वथा अनुचित कार्य करते है । इन्हीं सब बातोको विचारकर स्त्रीको दत्तक लेनेके अधिकार धर्मशास्त्रकार नही देते । " न स्त्री पुत्रं दद्या-त्प्रतिगृह्णीयाद्वान्यत्रानुज्ञानाद्भर्तुः" स्त्री पुत्रको दत्तक होनेके लिये न दे, न ले पर पति आज्ञा देगया हो तो लेवै। इस वशिष्ठस्मृतिसे भी मालूम पडता है कि स्त्रीको दत्तक लेनेका अधिकार नही है क्योंकि दत्तक लेते समय कितने ही वैदिक मन्त्र ऐसे है जिनको स्त्री नही कहसकती और संभव है कि-दीर्घदृष्टि न होनेसे स्त्री शास्त्रकी ओर न देखकर अपने अनुकूल चलनेवालेको ही दत्तक लेलेव और क्या आश्चर्य है कि धनके लोभसे कुटिल मनुष्य स्त्रीकी बुद्धिको विरुद्ध करदे और नाना प्रकारकी मायाओसे उसे छलकर कुमार्गमे प्रवृत्त करदे ऐसे उदाहरण एक नही कितने ही होगयेहैं जिनके अपयश (बदनामी) के वृत्ता-न्तोसे उस समयके समाचारपत्र तथा न्यायालयोंकी मिसले भरी पडीहै । अभी बहुत समय नही हुआ है एक नामी सेठ वैकुंठवासी हुए उन का दत्तक जब उस बडी धनराशिका उत्तराधिकारी हुआ तो उस धनकी रक्षा करने अथवा पिताकी भाँति सन्मार्गमे लगानेकी न उसकी रुचि ही थी न सस्कार ही उसके ऐसे थे कि जो उसकी धार्मिक बुद्धि होती । बस, नाच तमाशे मद्यादि दुर्व्यसनोमे धनका अपव्यय होनेलगा कितनाही रुपया मुकद्दमेमे व्यय होगया । वकील बैरिष्टरो की मुट्ठियां गर्म होनेलगी अन्तमे ३० लाख रुपये न्यायालयसे दत्तकको मिलगये । पर इस धनराशिका भोग वह न करसका बल्कि थोडे ही समयमे स्वयं क्षयरोगका बलि होगया । ईश्वर ही जाने कि इस दत्तकसे वैकुण्ठवासी सेठजीके आत्मा की क्या दशा हुई होगी विचारिये, दत्तक तो जडमूलसे गया उसके पीछे भी उस धन तथा उसके भोगनेवालो की कुछ दुर्दशा बाकी नही रही । यही कारण है कि ऋषियोने विधवाको दत्तक लेनेका निषेध कियाहै ।

उत्तम पक्ष तो यह है कि भारतवर्षमें जो कुछ भी द्रव्यपात्र हो उनको भाई भाइयोमें सहोदर स्नेहके नाते पहिले तो अलग होनाही नहीं चाहिये और अलग होभी जायँ तो निस्सन्तान होनेपर अपने भाई या उसके पुत्रके नामपर अपने द्रव्य तथा,स्त्रीकी रक्षाका प्रबन्ध कर देना चाहिये जिससे उसके पीछे उसकी स्त्रीको इन बातोंमें कुछ करनेका अवसर ही न आवे। और स्त्रीधर्मकी शिक्षा तो स्त्री समाज भर को रहनी चाहिये जिससे विदुषी स्त्री अपना कर्त्तव्य स्वयं जानकर कभी ऐसे अधर्ममय कामोंमें रुचि न करे। आज कल स्त्रीशिक्षाके लिये लोग बडा यत्न कररहे है पर अपनी सनातन स्त्रीशिक्षा जिसका वृत्तान्त हमारे पुराण और धर्मशास्त्र आदि में पग पग पर आताहै और जिसके भूलजानेसे ही स्त्रीसमाज शोचनीय दशाको प्राप्त होरहीहै उसीके उन्नति करनेकी आवश्यकता है।

इससे स्वयं स्त्रीहीको चाहिये कि वह अपने पतिकी शुभ कामनासे ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करे और जहा तक बनपडे सूक्ष्म आहार कर अपने देहको सुखाडाले जिससे विषयवासना बिलकुल नष्ट होजावे। यह भारतवर्ष, उसमें भी आर्यावर्त पुण्यकी भूमि है, इसमें किये हुए पुण्य और पाप प्रतिदिन बढते जाते और अपने कर्ता पुरुषको शुभाशुभ फल देते है। पिता पुत्र और स्त्री आदिका ऐसा सम्बन्ध है कि एकके कियेहुए कर्म दूसरेको अवश्य फल देते है। स्त्री तो पुरुष का वाम अंग है इसीसे धर्मशास्त्रमें लिखा है कि "पतत्यर्धं शरीरस्य यस्य भार्या सुरां पिबेत्॥ पतितार्धशरीरस्य निष्कृतिर्न विधीयते।" जिसकी स्त्री मद्य पीवे उसका आधा अङ्ग पतित होजाता है, पतकी आधे शरीरका कुछ प्रायश्चित्त नहीं है। जैसे किसीके देहमें बडा भारी घाव होजाय और उसकी तत्काल कोई चिकित्सा न कीजावे तो बढते बढते वह सर्वाङ्गको आक्रान्त कर पुरुषके प्राणोतकको नष्ट कर देता है स्त्रीके दोष से स्वर्ग में गये हुए पुरुषकी भी अधोगति होजाती है। कहा भी है—

अमात्यदोषो राजानं भार्यादोषः पतिं यथा।
तथा शिष्यकृतो दोषो गुरुं प्राप्नोत्यसंशयम्॥

जैसे मन्त्रीका दोष राजाको, स्त्रीका दोष पतिको लगताहै उसी प्रकार शिष्यका पाप दीक्षा देनेवाले गुरुको भुगतना पडता है। हां एक प्रकार से दोष नहीं लगसकता वह यह है कि जैसे एक अंगुली मे सापका विष चढगया हो तो उसको उसी समय काटडालने से शेष अंगमे विषका संसर्ग नहीं होने पाता. इसी प्रकार दुराचारिणी स्त्रीका परित्याग होने से पतिकी रक्षा होसकती है। यह सब पतिके जीवित रहनेपर होसकता है पर जब विधवा ऐसे दुष्टकर्म करे तो विचारा पति तो इस कर्मभूमिमे है ही नहीं वह तो ऐसी भूमिमे गयाहै जहा केवल किये हुए कर्मों का भोग ही होसकता है उस समय वह अपने किये हुए ही कर्माके अधीन रहता है। हा, उसके पुत्र और पत्नी सदाचारी हो तो उसको सहायता भी मिलसकती है और उसके दुर्भाग्यसे वह अच्छे न हुए तो और भी नरकादि दुःख उस मृतप्राणीको भोगने पडते है उस निरपराध पति को घनिष्ठ सम्बन्ध वश यद्यपि नरकादि यातना भुगतनी पडती है पर उस विधवा अथवा दुराचारी पुत्रको भी यमका घोर दण्ड भोगना पडता है। बडे खेदकी बात है कि इस संसार मे जब मनुष्य सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि आदि देवता और अपने हृदयमे रहनेवाले आत्माकी कुछ परवाह न कर पापकर्म करता है उस समय तो उसको कुछ फल नहीं मिलसकता क्योंकि–

नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव।
शनैरावर्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति॥
यदि नात्मनि पुत्त्रेषु न चेत्पुत्त्रेषु नप्तृषु।
नत्वेव तु कृतोऽधर्मः कर्तुर्भवति निष्फलः॥मनुः॥

इस संसार मे जो पाप किया जाताहै वह खेतीकी तरह तत्काल तो फल देता नही, धीरेरजब वह बढता जाताहै तो पाप करनेवालेकी जड उखाड डालता है । पाप यदि करनेवालेको अपना फल नही देपाता तो उसके पुत्रको देता है, कदाचित् उसके भी शुभकर्म पूर्वजन्मके किये हो तो उसमे भी पाप अपना फल नही दिखापाता, परन्तु उसके पुत्र अर्थात् पापीकी तीसरी पीढीमे तो अवश्य अपना विषम काण्ड उपस्थित कर देता है । क्योकि यह सिद्धान्त है कि कियाहुआ पाप कभी निष्फल नही होता । यहा खेद इतना ही है कि मनुष्य जब अज्ञानवश होकर पाप करने लगताहै उस समय विचारसे वह शून्य होजाताहै पर जब उस देहको त्यागकर धर्मराजके वशमे होकर नरको की वेदना भोगताहै उस समय उसको पश्चात्ताप होता है । फिर क्या होसकताहै ।इससे इस मनुष्यदेह को पाकर सदा ऐसे ऐसे पापोसे बचना चाहिये जो कि दूसरे लोकमे बाधक होकर अधोगतिमे डाले ।

स्त्री जाति स्वभावसे ही कोमल है, उसको नीतिज्ञोने अबला कहा है उसके हृदयमे दृढता नहीं, उसका कोई सिद्धान्त स्थिर नही, बल्कि दोषोकी खानि स्त्री है । इसीसे मनु महर्षि उसके लिये रक्षाका उपाय यही समझते है कि–

बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत्पाणिग्राहस्य यौवने ।
पुत्राणां भर्तरि प्रेते न भजेत्स्त्री स्वतन्त्रताम् ॥

जब तक बाल अवस्था हो कन्या पिताके अधीन रहे, युवावस्थामे पतिके वशमे रहे, यदि पति न रहै तो पुत्रोके अधीन होकर रहै पर स्वाधीन कभी न हो । क्योकि स्त्रीका स्वतन्त्र होना ही उसके नाश कारण है गोसाई तुलसीदासजीने भी कहाहैः–

"महा वृष्टि चलि फूटि कियारी।जिमि स्वतत्र हुइ बिगरहि नारी।"

धन्य हैं वह स्त्रिया जो अपने स्वाभाविक दोषोंका विचार कर उनसे

बचनेका सदा यत्न करतीहैं स्त्री समाजमे पातिव्रत धर्मकी जागृति कर उसकी उन्नति करतीहैं। देखिये भगवती जानकीजी जब अनुसूयाजीसे मिलीहै तो इसी पातिव्रतकी शिक्षा उन्होने जानकजिको दीहै। उपसंहार मे मेरी प्रार्थना मारवाडी समाजसे है, कि जिस प्रकार व्यापारकुशलता दानवीरता आदि उत्तम २ गुण आपमे है उसी प्रकार स्त्रीस्वातन्त्र्य दोष भी बहुत बढता जाताहै जो अनर्थका मूल है। विवाहादि उत्सवोके समय निर्लज्जतायुक्त सीठने आदि स्वतन्त्रताकी कुरीतियां जो आपलोगोमे चलगयीहैं वे एकदम बन्द होजानी चाहिये। निःसन्देह विवाहादि मंगलकार्य आनन्दकी मूर्ति है, पर यह कोई नियम नही कि स्त्री लोग उस समय मर्यादासे बाहर होजायं। कोई ग्राम्यप्रकृतिवाला मनुष्य भले ही उन अश्लील गानोसे प्रसन्न हो पर बुद्धिमान् लोगो को उनसे घृणा होती है। जिन स्त्रियोका धर्म है कि उठने बैठने हँसने बोलने आदि सब व्यापारोमे परम सभ्यता नम्रता सिधाई और लज्जा ही प्रधान रहै उनके शीलमे धब्बा लगानेवाली उद्धत बातें कभी मान्य तथा प्रशंसनीय नहीं हो सकती। दोषोके अधिक विस्तारकी आवश्यकता नही है अपना अभ्युदय चाहनेवाले निर्दोष बननेका यत्न करै और ईश्वर इस कार्यमे उनकी सहायता करै यही प्रार्थना है।

यहा उत्तम स्त्रियोके कर्तव्य पर दो श्लोक लिखकर इस लेखको समाप्त करताहूं।

> गतागतकुतूहलं नयनयोरपाङ्गावधि
> स्मितं कुलनतभ्रुवामधर एव विश्राम्यति।
> वचः प्रियतमश्रुतेरतिथिरेव कोपक्रमः
> कदाचिदपि चेत्तदा मनसि केवलं मज्जति ॥१॥

कुलीन स्त्रियोकी नेत्रोंकी गति, केवल अपने आंखोंकी छोर तक, हँसना होठोतक, बोलना केवल अपने पतिके सुननेयोग्य अर्थात् इतने

धीरे बोलना कि पति तो सुनसके और कोई न सुनपावे, कोप कदाचित् आभीजाय तो अतिथि की भाँति उसी समय चलाजाय अथवा देख भी न पडे मनहीमे गुप्त होजाय ।

पदन्यासो गेहाद्बहिरहिफणारोपणसमो
निजावासादन्यद्भवनमपरद्वीपतुलितम् ।
वचो लोकालभ्यं कृपणधनतुल्यं मृगदृशः
पुमानन्यः कान्ताद्विधुरिव चतुर्थीसमुदितः ॥२॥

कुलीन स्त्रियोको अपने घरसे बाहर पैर रखना मानो साँपकी फनपर पैररखना है । अपने घरसे दूसरेके घरपर जाना दूसरे टापूमे जानेके समान है उनका बोलना तो कोई सुनही नही सकता जैसा कृपणके धनको कोई नही देखसकता । कुलललनाको दूसरे मनुष्यका देखना भादो मासकी चतुर्थीके चाँदको देखनेके समान है आशय यह है कि कुलीन पतिव्रता स्त्री दूसरे पुरुषको देखना भी पाप मानती है ॥इति॥

हरिदत्तशर्म्मा कूर्माचलीय

विधवाधर्म ।

सनातन धर्मके सिद्धान्तोंके अनुसार स्त्री और पुरुष उसी भगवान्के देहसे साथ ही उत्पन्न हुए माने गये है जैसा कि महर्षि मनुने कहा है

"द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत् ।
अर्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत्प्रभुः ॥"

वह परमेश्वर अपने देहके दो विभाग करके आधेसे पुरुष होगया आधे से स्त्री, और उसी स्त्रीमे विराट्की सृष्टि की । मनुष्यकी विचित्र बुद्धिको देखकर इसमे कुछ सन्देह नही कि अवश्य वह ईश्वरहीके देहसे

उत्पन्न हुआ है। जब वह आदि सृष्टिमे ईश्वरसे उत्पन्न हुआ था उस समयके पुरुष और स्त्रीमे वैसे ही गुण थे इसमे सन्देह नही, पर अब कालक्रमसे बहुत ही अन्तर पडगया है। इस समयमे क्या स्त्री क्या पुरुष दोनो ही अपने अपने कर्मोंसे विमुख होगये है यहां तक कि वह अपनेको भूलही गये हैं स्त्रियोका मुख्य धर्म सती होना था वह बन्द होगया है इसका परिणाम भी वैसाही अनिष्ट हुआ है। आजकल जो विधवाओकी संख्या बढतीजाती है इसका कारण यही है कि वह यथार्थ रीतिसे अपने धर्मपर आरूढ नही है इससे संक्षिप्त कर्तव्य (विधवाओ) के विषयमे लिखा जाता है-रामयण आदि इतिहासोसे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि-

न पुत्रमरणं केचिद्द्रक्ष्यंति पुरुषाः क्वचित्।
नार्यश्चाविधवा लोके तस्मिञ्छासति पार्थिवे॥

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके समयमे कोई भी मनुष्य पुत्रका मरना नही देखते थे और कोई भी स्त्री विधवा नहीं होती थी। इससे सिद्ध होता है कि मनुष्य जब अपने अपने धर्ममे आरूढ रहते तो अकाल मृत्यु आदि उनकी नही होने पाती फिर विधवा क्यो कर हो। विधवा होना बडे भारी पापोका परिणाम है। कौन ऐसा पाषाणहृदय मनुष्य होगा जो इन बालविधवाओका दुःख देख, दुःखसन्तप्त न होजावें। पर क्या कियाजावे उनके दुःखसे सहानुभूति करनेके सिवाय और चारा ही क्या है। यही दुःख विचारकर हमारे महात्मा मुनियोंने सती होनेकी प्रथा रक्खी थी। यद्यपि उस समय यह कर्म बडे साहसका समझा जाता था परन्तु जो आर्यललनाएं पतिदेवताये कही जाती है उनका सती होना ही परम सौभाग्य और प्रशंसनीय कर्म था और है। उन आदर्श रमणियोका यह स्वभाव ही होगया था कि वह पतिके न रहनेसे संसारको शून्य समझती और क्षणमात्र भी वैधव्य दुःखको भोगने नहीं

पाती थी। धन्य वह समय था जब भारतवर्षमे घर घर पतिव्रतादेवी–वह गृहलक्ष्मी गृहस्थाश्रमको अलंकृत किये थीं। पर अब तो महाशोचनीय दृश्य उपस्थित होगया है, तुलसीदासजीका कहना कि "विधवा होय पाय तरुणाई" प्रत्येक स्थानमे प्रत्यक्ष होरहा है। यद्यपि इस समय भी बहुतसे परदुःखकातर महाशय विधवाओंकी ऐसी शोचनीय दशा देखकर उनके कष्ट निवारणके उपाय सोचते है पर उनके विचार नये ढङ्गके होनेसे वह विधवाओके दुःखोको शान्त तो नहीं करसकते बल्कि उनसे अधिक दुःख होनेकी संभावना है, इससे जो उपाय महात्मा मुनियोने उनके लिये सोचा है वही ठीक है।मन्वादि महर्षियो को अपनी सन्तानोसे जैसी सच्ची सहानुभूति होसकती है उसीके अनुसार उन्होने विधवाओका कर्तव्य स्वयं कहादिया है और उसीके अनुसार उनका अभ्युदय होसकता है। बहुतसे महाशय विधवाओंका पक्षपात करतेहुए यह कह उठते हैं कि धर्मशास्त्र बनानेवाले मुनि पुरुष है यदि किन्हीं स्त्रियोसे पूछा जाता तो वे कभी ऐसी सम्मति नहीं देसकती कि जो पुरुष अपनी समझसे उनके लिये देगये है। यह विना विचार कीहुई बात है जरा बुद्धिमानीके साथ विचारिये कि स्त्रियास तो इस विषयमे परामर्श करनेकी बात ही नहीं है। क्या रोगीसे पूछकर उसकी इच्छासे औषधि देनी होती है? क्या रोगीको यह उचित नहीं है कि अपनी जानमालका भरोसा वह धार्मिक उत्तम वैद्यके ऊपर छोड दे? अवश्य ही उसको किसी महात्मा परोपकारी वैद्यका ही आश्रय लेना पडेगा। इसीसे हमारे पूर्वपुरुष श्रीमन्वादि महर्षियोने अपनी सन्तान विधवाओके लिये जो उपदेश किया है वह यहा हिन्दू कुलीन विधवाओके लिये यथावत् लिखा जाता है। जो विधवाबन्धु बनकर विषयवासनाकी शान्ति द्वारा उनका दुःख दूर करना चाहते है उनको समझना चाहिये कि–

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धयेत् ॥

कामकी सेवासे कभी कामकी तृप्ति नही होसकती, बल्कि घृतकी आहुतिसे जैसा अग्नि प्रदीप्त होकर और भी प्रचण्ड होजाताहै इसी प्रकार इन्द्रियोकी सेवासे कभी तृप्ति नही होती, होतीहै तो केवल शान्तिसे होतीहै। इसलिये स्त्री जातिको सोचना चाहिये कि हम परमेश्वरके सङ्कल्पसे उत्पन्न हुई है, हममे वह दिव्यगुण सब वर्तमान है जो हमारे सृजनेवालेमे है। स्त्री माया स्वरूप है उसको अपनी शक्तिका भली भाँति ज्ञान हो तो वह ऐसे ऐसे उत्तम कर्म करसकतीहै कि बडे बडे महात्माओको भी वह कर्म कठिन मालूम पडे । मनुजीने स्त्रियोको ब्रह्मचर्य पालन करनेकी शिक्षा करके उनकी तुलना बडे मुनीश्वर ऊर्ध्वरेताओंके साथ कीहै ।

अनेकानि सहस्राणि कुमारब्रह्मचारिणाम् ।
दिवं गतानि विप्राणामकृत्वा कुलसन्ततिम् ॥
मृते भर्तरि साध्वीस्त्री ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता ॥
स्वर्गं गच्छत्यपुत्राऽपि यथा ते ब्रह्मचारिणः ॥

अर्थात् हजारो कुमार ब्रह्मचारी गृहस्थ धर्म न करने (पुत्रोको उत्पन्न न करने) पर भी स्वर्गको प्राप्त हुए थे इसी प्रकार पतिके मर जाने पर पतिव्रता स्त्री ब्रह्मचर्य व्रत करके पुत्रोके बिना भी स्वर्गको जातीहै। अब विधवाओका कर्तव्य संक्षिप्त रीतिसे लिखते है।

विधवा कर्तव्यम् विष्णुः-

"मृते भर्तरि ब्रह्मचर्य्यं तदन्वारोहणं वा" ब्रह्मचर्य मैथुनवर्जनं ताम्बूलादि वर्जनञ्च यथाह प्रचेताः-"ताम्बूलाभ्यञ्जनं चैव कांस्यपात्रे च भोजनम् । यतिश्च ब्रह्मचारी च विधवा च विवर्जयेत् ।"

विष्णुस्मृतिमे लिखाहै कि जिस स्त्रीका पति मरजाय वह अपने पतिके साथ एक चितामें भस्म होजाय, यदि पुत्र विद्यमान हो और कलियुगमें सती होना निषिद्ध समझ कर अनुगमन न करै तो ब्रह्मचर्यव्रतमें रहै । पुरुषका सहवास छोडदेना, पान तथा हविष्यान्नभिन्न अन्न तथा निषिद्ध शाक इत्यादि छोडदेना ब्रह्मचर्य कहाजाताहै प्रचेता मुनि कहतेहै-पानखाना, काजल वा सुर्मा लगाना, कांसीके बर्तनमें भोजन करना, इतनी चीज सन्यासी ब्रह्मचारी और विधवा छोडदेवे किसीका मतहै कि अंजनका निषेध वैद्यक शास्त्रमें कहेहुए अंजनसे है।

एकाहारः सदा कार्यो न द्वितीयः कदाचन ।
पर्यङ्कशायिनी नारी विधवा पातयेत्पतिम्॥

शुद्धितत्त्व ।

विधवाको नित्य एक समयमें एक ही अन्नका भोजन करना चाहिये यह उसकी इच्छा पर निर्भर है, चाहै तो मध्याह्नमें हविष्यान्नका भोजन करै, अथवा नक्तव्रत करै । यदि विधवा चारपायीमें सोवे तो वह अपने पतिको स्वर्गादि शुभगतिसे गिरादेतीहै ।

गन्धद्रव्यस्य संयोगो नैव कार्यस्तया पुनः ।
तर्पणं प्रत्यहं कार्यं भर्तुः कुशतिलोदकैः ॥

सुगन्धिपुष्प तल इत्यादि गन्धद्रव्यका संयोग विधवा कभी न करै, पुत्रपौत्रादि तर्पण करनेवाला न हो तो विधवा स्वयं अपने पतिका तर्पण नित्य कियाकरै ।

वैशाखे कार्तिके माघे विशेषनियमं चरेत् ।
स्नानं दानं तीर्थयात्रां विष्णोर्नामग्रहं मुहुः ॥

वैशाख कार्तिक तथा माघमासमे खास खास नियमोको करै जो कार्तिकमाहात्म्यादि ग्रन्थोमे लिखेहुएहै। स्नान, दान, तीर्थयात्रा, क्षणक्षणमे विष्णुभगवान्का नाम जपै वा स्मरण करै।

ब्रह्मवैवर्तपुराणके कृष्णजन्मखण्ड ८३ अध्यायमें लिखाहै-

ब्राह्मणी पुत्रहीना या भवेन्निष्कामिनी सदा।
एकभक्ता दिनान्ते सा हविष्यान्नरता सदा॥

जिस विधवा ब्राह्मणीके पुत्र न हो वह निष्काम भक्ति करै। दिनके अन्त भागमे हविष्यान्नका भोजन करै। यहा ब्राह्मणीपद उपलक्षण है इससे क्षत्रिय और वैश्यवर्णकी स्त्रियोका भी यही नियमहै।

न धत्ते दिव्यवस्त्रं च गन्धद्रव्यं सुतैलकम्।
स्रजश्च चन्दनञ्चैव शंखसिन्दूरभूपणम्॥

सुन्दर चमकदार बहुमूल्य वस्त्र न पहिरै इत्र कस्तूरी आदि तथा चमेली आदि के तेलका उपयोग न करे। पुष्पमाला चन्दन शंख सिन्दूर और आभूषणो को धारण न करै।

त्यक्त्वा मलिनवस्त्रा स्यान्नित्यं नारायणं स्मरेत्।
नारायणस्य सेवां च कुरुते नित्यमेव च॥

मैले कुचैले कपडे पहिरै। सदा विष्णुका स्मरण तथा उन्हीं की सेवा करै॥

तन्नामोच्चारणं शश्वत्कुरुतेऽनन्यभक्तितः।
पुत्रतुल्यश्च पुरुप सदा पश्यति धर्मतः॥

केवल विष्णुकी भक्ति पूर्वक सदा हे कृष्ण! हे वासुदेव! इत्यादि उनके नामोका स्मरण करै। संसारके पुरुष जो अपनेसे बडे है उनको पिता समान, बराबरवालोको भ्रातासमान तथा अपनेसे छोटी अवस्थावालोको पुत्रको समान देखे।

मिष्टान्नं च न भुङ्क्ते सा न कुर्याद्विभव व्रजम् ।
एकादश्यां न भोक्तव्यं कृष्णजन्माष्टमीदिने ॥

मीठे तथा उत्तम रसवाली चीज विधवाको नही खानी चाहिये ऐश्वर्यका सामान भी कभी नही करना चाहिये । एकादशी तथा श्रीकृष्णजन्माष्टमी के दिन निराहार व्रत रहना चाहिये ।

श्रीरामस्य नवम्यां च शिवरात्रौ पवित्रया ।
अघोरायां च प्रेतायां चन्द्रसूर्योपरागयोः ॥

रामनवमी (चैत्रशुक्ल ९) शिवरात्रि (फाल्गुणकृष्ण १४) भाद्रपदकी कृष्णचतुर्दशी, आश्विनमासकी अमावास्या तथा चन्द्र और सूर्य ग्रहणके दिन विधवा स्त्री उपवास करै ।

भृष्टद्रव्यं परित्याज्यं भुज्यतेऽपरमेव च ।
ताम्बूलं विधवास्त्रीणां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥
संन्यासिनां च गोमांससुरातुल्यं श्रुतौ श्रुतम् ॥

भाडका भूँजा अन्न नहीं खाना चाहिये शुद्ध हो तो खासकताहै परन्तु पानखाना तो वेदमे विधवा संन्यासी और ब्रह्मचारियोके लिये गोमासतुल्य समझागयाहै ।

रक्तशाकं मसूरञ्च जम्बीरं पर्णमेव च ।
अलाबूर्वर्तुलाकारा वर्जनीया च तैरपि ॥

लालरंगका शाक गाजर मूली आदि, मसूरकी दाल जम्बीर नीबू पलाशका पत्र गोल तूंबी (शाक) इतनी चीज छोडना चाहिये ।

पर्यङ्कशायिनी नारी विधवा पातयेत्पतिम् ।
यान आरोहणं कृत्वा विधवा नरकं व्रजेत् ॥

विधवा यदि चारपाईमे सोवे तो अपने पतिकी अधोगति करतीहै यदि सवारीमे चढकर नहीं जावे तो नरकमे जातीहै।

न कुर्यात्केशसंस्कारं गात्रसंस्कारमेव च।
केशवेणीजटारूपं तत्क्षौरं तीर्थक विना॥

सुगन्धित तैल लगाना, धूप आदि धूनि देना इत्यादि बालोका संस्कार तथा चन्दन उबटन इत्यादि से देहका संस्कार विधवा न करै बालोकी लट न बॉधे तीर्थ यात्राको छोडकर बालोको न मुडावे।

तैलाभ्यङ्गं न कुर्वीत नहि पश्यति दर्पणम्।
मुखञ्च परपुंसां च यात्रां नृत्यं महोत्सवम्॥
नर्तकं गायनं चैव सुवेशं पुरुषं शुभम्॥

विधवा तेलका उबटन न करै। आइना न देखै। दूसरे मनुष्योंका मुख न देखै। नाच तमाशा इत्यादि उत्सवोको भी न देखै। नाचनेवाले गाने वाले तथा सुन्दर पुरुषको कभी न देखै।

मनु कहतेहैं–

यस्मै दद्यात्पितात्वेनां भ्राता वाऽनुमते पितुः।
तं शुश्रूषेत जीवन्तं संस्थितञ्च न लंघयेत्॥

पति अथवा ज्येष्ठ भ्राता कन्याका विवाह जिसके साथ करावे वह विवाहिता कन्या जब तक उसका पति जीतारहै उसकी सेवा करै और उस के मरजाने पर उसका उलंघन (व्याभिचारादिसे) न करै।

इस प्रकार अपने धर्मशास्त्र पुराण इतिहासोका एक स्वरसे उपदेश है कि स्त्रीका जब तक पति रहताहै उसको देवता तुल्य मानकर देह वाणी और मनसे उसकी सेवा करै, उसके मरने के पीछे सती होजाय। आजकल कलिकाल है। मनुष्योंके अन्तःकरण दुर्बल होगये और होते जाते हैं इसमे सती होनेका

साहस स्त्रियें न करसकेगी इससे मुनियोने ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करना उसके लिये श्रेष्ठ कहा है। दुर्भाग्यसे यदि स्त्रिया इस व्रतको न पालसकै तो उनके लिये महा अनिष्ट है, क्योंकि व्यभिचार दोष ऐसा है कि मनसे भी यदि स्त्री परपुरुषका चिन्तन करे तो उसे प्रायश्चित्त करना पडताहै फिर देह सम्बन्धका तो क्या कहना है।

अपत्यलोभाद्या तु स्त्री भर्तारमतिवर्तते ।
सेह निन्दामवाप्नोति पतिलोकाच्च हीयते ॥मनुः॥

जो स्त्री कामवासना अथवा सन्तानके लोभसे अपने पतिका अनादर करके परपुरुषका सङ्ग करती है इस लोकमे कुलागनाओंके समाजमे उस की बडी निन्दा होती है और इस संसार को छोडकर पतिव्रताओ को स्वर्गमे जो पतिलोक मिलताहै वह कभी व्यभिचारिणियोको नहीं मिलसकता। क्या कोई भी बुद्धिमती कुलललना ऐसे तुच्छ व्यभिचारकर्म को मनमे भी लासकतीहै? कभी नही। यह भारतवर्ष बडी पवित्रभूमि है इसमे थोडा भी पुण्य करने से बहुत बढजाताहै, जो पुण्यशीला रमणियां इस लोकमे केवल अपने शीलकी रक्षा कर सकतीं है—एक पातिव्रत धर्मकी ही सुदृढ उपासना कर सकती है उनके लिये किसी बातकी कमी नहीं है। देवता लोग भी पतिव्रताओंकी प्रशंसा करते हुए उनकी इच्छाओंको पूरी करतेहै। यदि दुर्भाग्यवश स्त्री लोग अपना आचरण न सुधार सके—यदि क्षणिककामवासनासे अपने शीलकी रक्षा न करसके तो इस कर्मभूमिमे पाप भी प्रति दिन बढते बढते ऐसा भयंकर रूप धारण करतेहैं कि अनेक जन्मोतक उनका दुष्ट परिणाम नरकादि दुःख भोगना पडता है।

क्या मनुष्य क्या स्त्री जितना जितना विचारसे चलते हैं उतनीही उतनी उनकी बुद्धि भी सुधरती जातीहै और हमारे—धर्मशास्त्र पुराणोमे कही हुई शिक्षा उनको हित जान पडतीहै जब वह उन बातोका

आचरण करने लगतेहै तो उन पुण्यकर्मोंके प्रभावसे एक अद्वितीय आनन्द मनमे होता जाताहै । जिसके आगे संसारके कामसुख आदि अति तुच्छ मालूम पडने लगते है । इससे भारतवर्षकी स्त्रियोंको चाहिये कि वह शास्त्रोक्त रीतिसे अपने आह्निक (नित्यकर्म) के अनुसार चले तो बडा अपूर्व बल उनको प्राप्त होगा जिससे किसी बातकी भी कमी उनको नही रहजावेगी । हमारे पुराण इतिहासोमे सीता, सावित्री, दमयन्ती, गान्धारी आदि अनेक पतिव्रताओके उपाख्यान इसी वास्ते लिखे हुएहै कि सभी स्त्रिया उनको विचारकर आचरण करे तो स्वयं देखेगी कि कैसा अपूर्व आनन्द और बल उनको प्राप्त होताहै । इसी बलके लाभके लिये व्यास महर्षि ने इतने इतिहास रचहै । हमारी स्त्री समाज की उन्नति अपने ही हाथमे है वह चाहै तो इस समय भी धर्माचरणसे रहकर अपने भावी सन्तानो को ऐसा बनासकतीहै कि जो सदा धर्मात्मा बलवान् यशस्वी होकर अपना और संसारका उपकार कर सकेगे ।

॥ इति ॥

हरिदत्तशर्मा कूर्माचलीय ।

॥ श्रीः ॥

श्रीभगवान्के औतार और लीलाओंका तत्त्व।

दोहा--शीश मुकुट माथे तिलक, कुण्डलश्रवण मझार ॥
करमुरली वनमाल उर, भक्तनप्राण अधार ॥१॥
राधावर व्रजराज प्रभु, गोपिनजीवनमूल ॥
रसिकविहारी सांवरे, सदा रहो अनुकूल ॥२॥

श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धमें भगवान् कृष्णचन्द्रके चरित्र बड़े गूढ़ विस्तारके साथ भगवान् वेदव्यासजीने निरूपण किये हैं, गीतामें भगवान्की प्रतिज्ञा है कि मैं साधुओंके रक्षा करने दैत्योंको मारने और धर्मके स्थापन करनेके निमित्त युग युगमें अवतार लेता हूं। इस कारण कृष्णावतारमें इन सब प्रतिज्ञाओंका पूर्ण रीतिसे निर्वाह किया है, भगवान्की कोई लीलाभी विना प्रयोजन नहीं है. सबमें गूढ तत्त्व और ज्ञान भरा हुआ है, यह किसी प्रकार विषय युक्त चरित्र नहीं है. साक्षात् मुक्तिका देनेवाला है, कारण कि जो ग्रन्थ जीवरूप परीक्षित्की मुक्तिके निमित्त वर्णन किया गया है उसमे संसारके विषयोंका निरूपण होना असंभव है। और फिर जगदात्मा शुकदेवजीके मुखसे रागवर्द्धक कथानक कभी निर्गत नहीं हो सकता, इस कारण उन्होंने जो कुछभी कहाहै, वह प्राणियोंके कल्याणके निमित्तही कहा है इसमें कुछभी संदेह नहीं है. पूतनालीलामें यह निरूपण किया है कि देखो जो स्तनोंमे विष लगाय मुझे दूध पिलाने आई उसकी माताकी समान गति की, फिर जो कोई पुष्प फलादिसे भक्तिपूर्वक मेरा अर्चन करते हैं उनकी गतिमें सन्देह क्या है ? कालीदमनलीलामें यमुनाकी शुद्धि तथा अंहकाररूपी सर्पका दमन करके यमके भय मिट जानेका उपदेश किया है. अर्थात् गोपिका

जो वेदोंके मन्त्र हैं ऋचाहैं वे सब ब्रह्मपरत्व हैं उनकी इच्छा कृष्णके सा-
क्षात् करनेकी थी, गोपीरूपजीव भगवान्की प्राप्तिके निमित्त यमराजकी
भगिनी यमुनामें स्नान करती हैं और अपनी सजाति होनेसे यमुनाकी
प्रार्थना करती है कि तेरी कृपासे तो यमका भय मिट जायगा तब
संसारसे पृथक् होनेपर भगवान्का दर्शन होगा, जिस समय प्राणी पर-
मात्माकी प्राप्तिकी इच्छा करता है तब उसको पार्थिव पदार्थ और उसके
विकारोंको त्यागना पडता है- यही भगवान् कहते हैं कि जिसपर मेरी
कृपा होती है क्रम २ से मैं उसका संसारी धन हरण कर लेताहूं जिससे
कि पंच कोशोंमें प्रथम इसीसे अन्तःकरण आच्छादित है जब गोपिका
स्नान करती थी और ध्यानमें मग्न थी और जलमें डुबकी लगाये थी
जो कि समाधि थी उसी समय भगवान्ने आनकर उनके पार्थिव वस्त्र
हरण किये और संसाररूपी वृक्षके ऊपर लटकाय आप उससे ऊंचे
स्थित हुए और इच्छा की कि इन गोपिकाओंको पांचो तत्त्वोंसे पृथक्
कर निज रूपकी प्राप्ति कराऊं, जिस समय गोपिका समाधिरूप डुब-
कीसे बाहर हुईं तब उनको फिर पार्थिव वस्त्रोंकी इच्छा हुई और उन्ही-
की खोज करने लगी, परन्तु जब न दीखे तब ऊर्ध्वदृष्टि करनेसे वस्त्र
और वृक्षके शिखरपर कृष्णका दर्शन हुआ और भगवान्को पति ब-
नानेके दृढ मनोरथपरभी संसारी आच्छादन वस्त्रही मांगे, तब भक्तो-
द्धारी श्रीविहारीजीने उनका अपक्क योग जानकर उनको जलतत्त्वसेभी
निकालकर अग्नितत्वमें शोधनकी इच्छा करी, जैसे लिखा है कि "[1]ज्ञा-
नाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन" जिस समय भगवान्के हठ
करनेसे जलसे बाहर आने लगी, तब हाथोंसे अंग छिपाये बाहर
हुईं, भगवानने यह समझकर कि "अथोदरमन्तरं कुरुते तस्य भयं भवति,
द्वितीयाद्वै भयं भवति," इति श्रुतेः, मैं सर्वज्ञ और सर्वव्यापी हूं मुझसे
अन्तर रखना इनके ज्ञानमें हीनता है,इससे इनका अज्ञान दूर करना चाहिये

---

[1] हे अर्जुन ! ज्ञानकी अग्निसे सब कर्म दग्ध हो जाते हैं।

यही विचार कर बोले कीनो तुम अपराध भानुको कर जोडो उनके ताई नग्न नहानेके अपराधसे प्रायश्चित्त है तुम हाथ जोडो सूर्यके सन्मुख कर जुडवानेका भाव यह कि "योसावादित्ये पुरुषः सोसावहं खं ब्रह्म" यजुः। यह जो पुरुष सूर्यमें है सो मै हूं जब गोपिका सूर्योपासनासे शुद्ध होकर प्राण रूपसे ध्यान करने लगी तब आपने मुरलीके नादसे प्रबुद्ध कर आकाशसे परे किया जो " अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम् " है, जब गोपिका इस पदवीको प्राप्त हो पूर्ण योगको प्राप्त हुई तब यह जानकर कि इनको अब संसारका कोई क्लेश बाधा न देगा यह जीवन्मुक्त हुई भगवान्ने लोकसंस्थाके निमित्त वस्त्र दे दिये और यहभी कहा शरदृतुमे तुमको आत्मारामरूपसे अपना स्वाराज्य प्रदान कर ऐश्वर्यदर्शन कराऊंगा अब तुम जाकर मेरा भजन करो, यह सुन गोपिका प्रसन्न हो घर गई, यह लीला सर्वथा जीवका आवरण दूर कर मुक्ति प्राप्त करानेके निमित्त है कुछ विषयसुखकी कथा नही है, कारण कि ईश्वर सर्वव्यापी है, वह बाहर भीतर सर्व व्याप्त है "तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्" इति श्रुतेः । फिर वह है कहा नहीं जिसे देखता, इसस ज्ञान देनेके निमित्त है ।

औरभी देखो गोपियोने श्रीकृष्णको अपना पति होनेके निमित्त कात्यायनीका व्रत किया था तौ जब कर्मका फल मिलना शास्त्रसिद्ध है तब गोपियोको इस कर्मका फल क्यो न मिले, उस कर्मफलप्राप्तिमे एक बात यह प्रतिबन्धक थी की वे नंगी होकर स्नान करती थीं, भगवानने यह बिचारा कि, यह मूर्ख गोपी नग्न नहानेका दोष न विचार कर जलमे प्रवेश करती है, इस कारण उनका व्रत भंग होता है इससे इनको शिक्षा देकर कर्मफलका भागी करना चाहिये इससे कर्मफल देनेको वहां गये और वस्त्र लेकर वृक्षपर चढ गये, इसस एक तौ यह शिक्षा दी कि तुम नंगी होकर स्नान करती हो, यदि कोई व उठाय ले जाय तौ कैसा हो किस प्रकार घर जा सकोगी,

दूसरे शास्त्रीय शिक्षा दी कि नग्न होनेसे अपराध होता है, फिर जब गोपियोने सर्वस्वात्मनिवेदन किया तब भगवान् उनपर बडे प्रसन्न हुए, कारण कि सर्वस्वात्मनिवेदन और शुद्ध अनुराग यही भगवत्प्राप्तिका सोपानस्वरूप है, सर्वस्वरूप लाज्ज स्त्रियोने प्रदान की इससे एक तौ प्रेमयुक्त कर्मकाण्डका अनुष्ठान पूरा हुवा, दूसरा सर्वात्मनिवेदन नवम भक्तिका अनुष्ठान पूरा हुआ, गोपियोने उनको पतिभावसे भजा इस कारण भगवान्ने उनकी अभिलाषा पूर्ण की, इससे उपदेश है कि प्रथम जीवकी रुचि कर्मकी ओर होनी चाहिये, और यदि उसके साथ भगवत्प्रेम हो तौ भगवान् उसकी च्युतिको शोधन कर अनुष्ठान पूरा कर देते है, जिससे अन्तःकरण निर्मल होकर, यह जीव भगवान्को सर्वस्व अर्पण करता है, तब इसको सब कामनाकी प्राप्ति होती है "सोऽश्नुते सर्वान् कामान्" "ये यथा मा प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्" गीताके अनुसार जो जैसी भावना करतेहैं मैभी उसी प्रकार उनको भजताहू । तौ जिनके रोममें कोटि २ ब्रह्माण्ड है ता उनमे एक ब्रह्माण्डके लघु खण्डके नियमम ईश्वर तौ बद्ध नही हो सक्ता, केवल अभिलाषानुसार फल देते है, नन्द यशोदा वसुदेव देवकीने पुत्ररूपसे इच्छा की वैसेही उनको फल दिया, यद्यपि गोपियोको भगवत्प्राप्ति कामसम्बद्ध है परन्तु यह काम बन्धनजनक नही है, यथा "न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते । भर्जिताःक्वथिता धाना' प्रायो वीर्याय नेष्यते ॥" मुझमें मन लगानेवालोका काम कामके निमित्त नही होता किन्तु औटाये वा भुने धानोकी समान फिर उनके अंकुर नही होते और जिसका सर्वस्व आत्मनिवेदनरूप नही है उससे स्वीकार नहीं करते जैसे माथुरियोकी स्त्रिया को विदा कर दिया और आत्मसमर्पणवाली गोपियोको स्वीकार किया माथुरियोकी स्त्री लौट गई परन्तु जब रासमे आई गोपियोको लौटनेको कहा तब तौ वे प्राण त्यागन करनेमे तत्पर हुई इससे वस्त्रहरण भक्ति और शिक्षाके निमित्त है ।

जो उन्हे अवतार नहीं मानकर यह कामलीलाही मानते है उनको यह विचार करना चाहिये कि यह लीला छठे वर्षमे की है, जब कामभाव प्रगट नहीं हो सकता और सातवे वर्षमे गोवर्द्धन धारण किया है, जैसा भागवतमे लिखा है "कः सप्तहायनो बालः" इत्यादि इससे निर्भ्रान्त होकर भक्ति करनी चाहिये, वह प्रभु है, अखण्ड ब्रह्म है, ऐश्वर्यसे चाहे जैसा रूप धारण कर लेते है, गोवर्द्धन धारणसे इन्द्रका मद चूर्ण और अपनी अर्चाकी प्रवृत्ति करी, वरुणलोकसे नन्दजीको लाये इत्यादि जो कुछ लीला है उनमें अनेक कारण लगे हुए है, इसी प्रकार रहस्य लीला है, जिसका नामही रहस्य है, उसका गूढ भेद सर्व साधारण कैसे जान सकते है, प्रायः वेद शास्त्र पुराण सबहीमे रहस्य होता है, इसी कारण भाष्यादि और बृहादारण्यकादिमे "साङ्गाः सरहस्याः" ऐसे पद देखनेमे आते है, इस समय गुरुजनोसे ग्रन्थोको न पढकर भाषामात्रसे ग्रन्थोका मर्म जानना चाहते है और आस्तिक्यबुद्धिसे पूछनेमे लजाते है। प्रसन्न होना तौ दूर रहा उलटे सन्देहमे पड जाते है, इससे ग्रन्थका तात्पर्य ध्यानमे नही आता है और इस समय देखा देखी प्रायः लोग टीका करनेसेही अपनेको परम कृतार्थ मानने लगते है, चाहे स्वयं न भी पढे हों परन्तु किसीसे कुछ देदिवाय उलटा सुलटा नाममात्रका ग्रन्थ बनाय नाम तौ करही लेते हैं कि हमनेभी ग्रन्थ बना लिया, फिर ऐसे ग्रन्थोसे क्या लाभ हो सकता है, जब टीकाकारही ऐसे है और लेने प्रकाश करनेवालेभी नाममात्रका ग्रन्थ चाहिये इतनेपरही संतुष्ट होनेवाले हैं, तब ग्रन्थ का तात्पर्य कैसे ध्यानमे आ सकता है ? महर्षि व्यासदेवजीने श्रीमद्भागवत ग्रन्थ अधिकारिभेदसे नव रसोसे पूर्ण रचा है और शृंगार रसमे श्रीमद्भागवतका रहस्य निरूपण किया है, रामावतारमें अनेक स्त्रियोंका मोहित होना, नारायणसे अप्सराओका पतिवरणका वरदान मागना तथा सम्पूर्ण वेदकी ऋचाओकी श्रीकृष्णकी सेवाके

निमित्त प्रगट होना और उन्हीमे चित्तकी वृत्ति लगाना यह बात श्रीमद्भागवत तथा दूसरे पुराणोसे भी स्पष्ट है, रहस्यपंचाध्यायीमे कामदेवका जय निरूपण-किया है स्वय श्रीधरस्वामी कहते है कि यह लीला कामदेवके दर्प चूर्ण करनेको की है यथा—"दर्पकन्दर्पदर्पहा । कन्दर्पदर्पविजेतृत्वप्रतीतेः । साक्षान्मन्मथमन्मथः । रासक्रीडा विडम्बन कामजयाख्यापनायेति विशेषतो निवृत्तिपरेयं पञ्चाध्यायीति" एक समय कामदेवने सब देवताओको जय करके बडा अभिमान किया और यह विचारा कि चलकर नारायणकोभी जय करना चाहिये, तब वैकुण्ठको चला, मार्गमे नारदजी मिले कामदेवसे बोले कहा चले ? कामदेवने कहा, त्रिलोकीको अपने अधीन कर अब भगवानको जीतनेकी इच्छासे वैकुण्ठको जाताहू, नारदजी बोले, इस समय तो नारायण अवतार बृन्दावनमे है और उनके जयका समयभी उत्तम है, कारण कि वृन्दावन प्रेमका कोट है, इसमे अनेक छन्द रचनाकी झाडी है, जिनमे सबकेही मन उलझ जाते हैं, शुद्ध तत्वकी खाई है, छःशास्त्रोंका परिकोट है, अठारह पुराणोके मध्यके बुर्ज है, चार वेद चार द्वार हैं, भक्ति शास्त्र शतघ्नी और हरिभक्त बाणधारी वीर है, नास्तिकरूप शत्रुओके मारनेको युक्तिरूप अस्त्र है, कृष्णकृपा हरिजन सेवा रूप दूसरे द्वार पुण्य द्वारपाल हैं, यहा पुण्यात्माओका प्रवेश होता है, पापियोंकी गति नही है, कृष्णके प्रेमी जन निवास करतेहै, इसके मध्य प्रिय, प्रीतमका निकुंज प्रासाद जहां श्रीकृष्ण राधिका नित्य विराजते है, भगवद्गीता और एकादश इसके रखवारे है, जहा प्रत्येक कहा है "सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज । अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः" । कामदेवने कहा, इस प्रकारके कृष्णको जय करना कितनी बात है, यह नारदजीसे कह कामदेव चला सन्ध्या समय बृदावनमे श्रीकृष्णका दर्शन किया कि मोर मुकुट धारे कानोमे मकराकृत कुण्डल, करमे मुरली, गलेमे वनमाल धारे गौओके पीछे आ रहे है ।

जिस समय ब्रजके निकट आय उस समय मुरलीकी धुनि सुनतेही सम्पूर्ण ब्रजवासी कोई द्वारपै, कोई अटारीपै, कोई छज्जे पर कोई छतोपर कृष्णका दर्शन करनेको आई । भगवान्भी कृपादृष्टिसे उनकी ओर देखते बतराते चले, यह देख कामदेवने कहा, इनका जीतना कौन बडी बात है और उसी समय श्रीकृष्णके निकट जाय कहा, महाराज ! मेरी आपसे युद्ध करनेकी इच्छा है । भगवान् उसका गर्व जानकर बाले अवश्य हम तेरी शूरता देखेंगे, कहो वनमें वा किलेमें युद्ध करोगे, कामदेवने कहा महाराज बृन्दावनमें इन्हीं गोपिकाओंके समूहके मध्यमें आप से युद्ध करूंगा, भगवानने स्वीकार किया और कामदेवके बलवर्द्धक शरत्पूर्णिमामें सोलहसहस्र गोपियोंके मध्यमेभी उनको ज्ञान देने लगे तब कामदेवने कहा, महाराज ! यों नहीं मानूंगा, आप इनके संग नृत्य विहारादि करो यदि स आप वशीभूत न हुए तौ जानूंगा, तब भगवान्ने स्वीकार कर रासविलास किया और गोपिकाओंमें अभिमान जान एक गोपीको साथले अंतर्ध्यान हुए, फिर उसेभी अभिमानमती जान त्यागन किया फिर जब गोपिकाओंने अनेक विलाप कर उन्हींकी लीला करी तब आपने प्रगट हो उनके प्राण बचाये तथा कामका मद चूर्ण किया । उस स्थलमें शुकदेवजीने दो पद कहे हैं 'तासामाविरभूच्छौरिः' और "साक्षान्मन्मथमन्मथः" अर्थात् उनके मध्यमें शूरसेनके पौत कामका मद चूर्ण करनेवाले प्रगट हुए, यहां नन्दकुमार न कहा किन्तु शूरता करनेसे दादाका नाम उल्लेख किया और कामका मद चूर्ण करनेवालाभी लिखा और यहां यदि रासलीलाके विहारपर शंका है तो यह हृदयमें भक्ति उदय न होनेका कारण है, पूर्णकाम पुरुषोत्तमने केवल जीवोंपर अनुग्रह करनेके निमित्तही अवतार धारण किया है, जिसके श्रवणसे मुक्त मुमुक्षु विषयी सभी प्रकारके जीवोंके चित्त आकर्षित हो जॉय यथा भा० स्कं० १० अ० ३३ श्लोक० ३७ "भजते तादृशी क्रीडा यां श्रुत्वा तत्परो भवेत्" वह आत्माराम हैं उनमें

विषयासक्तिकी सम्भावना नही है, यथा "आत्मारामोऽप्यरीरमत् रेमे तया चात्मरत आत्मारामोऽप्यखंडितः" भागवते । भगवान्‌की लीलात्मक प्रवृत्ति रागद्वेषात्मक विषयवासनाकी गणनामे नही हो सकती कारण कि वह अलौकिक गुणसम्पन्न है और यदि उनकी प्रवृत्तिको विषयवासनायुक्त माने तौ सृष्टिकी उत्पत्ति आदिभी परब्रह्ममे एक प्रकारकी विषयवासना होगी, यदि कहो कि यह अनुमान जीवमे घट सकता है ईश्वरमे नहीं तौ यह जानो कि अवतार साक्षात् ब्रह्मस्वरूपही है और विषयवासनाजन्य कर्मोंकीही पाप पुण्य संज्ञा है और जब प्रभुमे विषयवासना नही तो पापपुण्यका सम्भव नही हो सकता गीतायां "यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः । ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पंडितं बुधाः ॥" अर्थात् जिसके सब संकल्प कामनासे रहित है वह ज्ञानाग्निसे कर्म दग्ध कर चुके हैं उन्हीको पंडित कहा जाता है "कृत्वापि न निबद्ध्यते" गीता । वह सब कुछ करकेभी कर्ममे लिप्त नही होते, इसीसे आगे शुकदेवजी कहते है, अनीश्वर इसको मनसेभी न करे, कारण कि वह बँधेगा, ईश्वर विषयवासनारहित है और भगवान्‌ने गोपियोको इस लीलामे नियुक्त नही किया, किन्तु ज्ञानपूर्वक उनको समझाया परन्तु उनकी उत्कट विहार इच्छा देख मनोरथ पूर्ण किये, किसी रीतिसे प्रभुके सन्मुख होना निन्दित कर्म नही है, प्रत्युत मोक्षजनक है । कंसने भयसेही मुक्ति पाई इत्यादि और गोपियोको साधारण गोपकन्या समझकर शंकित पुरुष शंकायुक्त प्रश्न करते है किन्तु गोपी साधारण गोपी नही वेदकी श्रुति हैं और इन्होने पूर्णब्रह्म पुरुषोत्तमके संग विहार करनेके निमित्तही गोपीरूप धारण किया है, इससे इनका शुद्धानुरागपूर्वक भगवान्‌मे अनुरक्त होना और उनपर पतिभाव करके उनके संग विहार करना दूषण नही किन्तु भूषण है तथा नाना गोपी भगवच्छक्तिरूप है और जब कि पुराणादिमे वेद मूर्तिमान् लिखे हुए है तब श्रुतियोके मूर्तिमान् होनेमे क्या

आश्चर्य है ? तथा अक्रूरने यमुनामे समस्त शक्तियोसे सेव्यमान भगव
नका दर्शन किया और अनेक गोपी देवी है जिन्होने प्रभुकी लीलाके
निमित्तही गोपीस्वरूप धारण किया है।स्कं० १० श्लो० २३ "वसुदेवगृहे
साक्षात् भगवान् पुरुषः परः । जनिष्यते तत्प्रियार्थं सम्भवन्तु सुरस्त्रि
यः॥" अर्थात् वसुदेवगृहमे साक्षात् भगवान् जन्म लेगे उनकी प्रीतिके
निमित्त देवियेभी जन्म ले । इससे गोपी साधारण गोपी नही किन्तु
दिव्यदेवी तथा शक्ति है । इससे यही फल निकला कि न तो प्रभुने उनको
विहारमें नियुक्त किया और न उनका मनोरथ पूर्ण करना अनुचितही हुआ,
कारण कि भगवान् कल्पवृक्ष है और न ये गोपकन्या मानुषी है किन्तु
श्रुति शक्ति और देवी है और अवतारोके वही आचरण कर्तव्य होते
है. जो उन्होने कर्तव्य योग किये है । जो आचरण दु साध्य तथा मनुष्य
शास्त्रसे बाह्य विदित हो वह जीवको कभीभी कर्तव्य नही है जैसे भूमिके
भार हरणमे यादवकुलसंहार साम्बशापादि, दुःसाध्य पर्वतधारण, विश्व-
रूप दर्शनादि अर्थात् जो प्रभुके उपदेश है वेही धर्म है, उपदेशके विरुद्ध
करनेमे जीवका कल्याण नहीं है । अवतारोमे ऐश्वर्य और मानुष दोनो
भाव मिले रहते है सो मानुषभाव प्रधानका अनुसरण हो सकता
है और ऐश्वर्य प्रधान जीवको दुःसाध्य है और कृष्णलीलामे बात २
मे ऐश्वर्य प्रधान है इससे जीवको अनुकरण करनेकी इच्छाभी
न करनी चाहिये, गोपियोंका प्रेम भगवान्मे अद्वितीय
था और काम उनका भगवद्भक्तिविषयक था ऐसा भगव-
द्विषयक प्रेम परम प्रशंसनीय है तथा वह उनका पूर्ण माहात्म्यभी
जानती थीं "अखिलदेहिनामन्तरात्मदृक्" भागवत । कि आप सब
देहधारियोके अंतरात्मा हो, तथा जिस समय वंशीनाद सुन प्रभुके
समीप गोपियां उपस्थित हुई तब भगवान्ने कामाशके विषयमे असं-
तोषपूर्वक उपदेश किया और अनुरागके विषयमे सन्तोष प्रगट किया
परन्तु जब उनकी अत्यन्त व्याकुलता देखी तब अनुरागको कामसे

उत्कट समझ और कामको अनुरागरूपसे परिणत देख उनके संग क्रीडा की और उनका कामाश अनुरागरूपसे परिणत हो गया, यह दोनो लीला एकसी है जब चीरहरनमे "भगवानाह ता वीक्ष्य शुद्धभाव-प्रसादितः" भगवान्ने उनका शुद्ध भाव देखा तब वरदान दिया कि अब जाओ तुम्हारे मनोरथ पूर्ण होगे, और इस लीलामे उनके किंचित काम अभिमानादि शेष थे वहभी दूर हो गये और फिर उनको नीतिका उपदेश किया। जब शुद्धानुराग रहा भगवान्ने दिव्य रासक्रीडाका प्रादुर्भाव किया और वहासे शुद्धानुरागमय लीला चली है, इसी कारण देवताओने भेरी बजाई, पुष्पवृष्टि कर गान किया और इसी प्रकरणमे शुकदेवजीने उनको स्त्री रत्न कहा है, इस कारणसे शुद्धानुराग होनेसे गोपी प्रेमिमात्रकी शिरोधार्य हुई, जैसे एक दीपसे सहस्त्र दीप बालकर वह वैसाही रहता है इसी प्रकार भगवान् प्रकट स्वरूप होकरभी पूर्णही रहते है, उनकी लीलामे शंका न करके वह चरित्र सुनना चाहिये। औरभी प्रकृति पुरुष आदिका जो आशय इनमे वर्तता है सो श्लोकार्थमे लिखते जायगे। रास तीनो प्रकारका होता है, कायिक, मानासिक वाचिक। प्रथम अध्यायमें "वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे" से मानासिक, रास, दूसरे तीसरे अध्यायमे वाचिक, चौथे पाचवेमे कायिक रास है। रासके समय कुमारावस्था हीमे किशोरावस्थाका प्रादुर्भाव हुआ था, विष्णुपुराणमेभी कहा है "सोऽपि कैशोरिकवयो मानयन्मधुसूदनः। रेमे ताभिरमेयात्मा क्षपासु क्षपिताहितः॥" शृंगारकी शोभा किशोर अवस्थासेही है इस कारण किशोरावस्था मानकर रास किया। सात वर्षकी अवस्थाहीमे कार्तिकी अमावास्याको दीपदान, प्रतिपदाको गोवर्द्धन पूजा, दशमीको गोविन्दाभिषेक, एकादशीको नन्दव्रत, द्वादशीको वरुणलोकगमन, त्रयोदशीको वैकुण्ठदर्शन, फिर अष्टम वर्षमे रासलीला करी, यह रास आकाश, पाताल, भूलोक, विराट् और सत्पुरुषोंके मध्यमे निरन्तर होता रहता है, पाच अध्यायमे यह पूर्ण करनेसे पंच महाभूतसे मानो

पृथक् करना ह और यही पंचाध्यायी नहीं भागवतमें औरभी कई पंचाध्यायी है, चतुर्थमे बालपंचाध्यायी है, जिसमे ध्रुवका उपाख्यान है, फिर पुरंजनाख्यानकी अध्यात्मपंचाध्यायी, फिर पंचममे भूगोल-पंचाध्यायी, सप्तममे वर्णाश्रमके विभागनिरूपणकी कर्मपंचाध्यायी, एकादशम ज्ञानपंचाध्यायी, दशममें शृंगारनिरूपणकी यह रासपंचाध्यायी कही है, यदि कहो कि इसके पांचही अध्याय क्यो कहे तौ इसका आशय यह कि कामदेवके पाच बाण है, जो उन्मादन, तापन, शोषण, स्तंभन और सम्मोहन कहाते है, सो प्रत्येक अध्यायमे वही लीला करके पांचो बाण नष्ट कर दिये, अथवा पाच कोश पांच आवरण पंचभूतके विकार दूर करनेको पाच अध्याय कहे है, अथवा यह पंचाध्यायी कामनाश करुद्रके पांच मुखस्वरूप है, अथवा पाच ज्ञान इन्द्रियोके शोधनके निमित्त पाच अध्याय है, अथवा देहमे पाच प्राणकी समान यह पांच अध्याय श्रीमद्भागवतके प्राणरूप है, अथवा यह श्रीकृष्णकी प्रभुताईके पाच पंच है, श्रीकृष्णचन्द्रने अन्तर्ध्यान होते समय कहा था मेरे पीछे मेरा स्वरूपभूत भागवत ग्रन्थ स्थिर रहेगा सो पहले दूसरे स्कन्ध भगवान्के चरण, तीसरे चौथे जंघा, पंचम कटि, षष्ठ नाभि, सप्तम अष्टम भुजा, नवम स्तन, दशम हृदय, एकादश मुख, द्वादश ललाट है, यह पाच अध्यायही मानो हृदयम पाच प्राण है, सो दशमरूप हृदयमे विराज रहे है, इससे यह पंचाध्यायी दशममे कही । कविजनोको काव्यमे नव रसोका समावेश करना पडता है, यदि ऐसा न किया जाय तौ साहित्यके अनुसार ग्रन्थ दूषित हो जाता है इस कारण व्यासजीने इस पंचाध्यायीमे शृंगार और करुणा दोनो रसोको [illegible] रूपसे दरशाया है, फिर अधिकारियोके भेदसे शृंगारमे अधिक रुचि देखानेसे उसमेही पूर्ण उपदेश किया है, शुकदेवजीने राजाको पंचाध्यायीका अधिकारी जानकर इसके पूछे विनाही पंचाध्यायीका उपदेश किया, कारण कि "गूढौ तत्व न साधु दुरावहि । आरत अधिकारी जहँ पावहि ॥" इससे राजाको अधिकारी जानकर उपदेश किया ।

किसी भागवतमे 'शुक उवाच' और किसीमें "बादरायणिरुवाच" लिखा इसका क्रमसे वर्णन करते है। जिस प्रकार तोतेका चाखा फल अधिक सुन्दर होता है या पढे तोतेकी ध्वनि सुन्दर विदित होती है, अथवा जितना पढाओ उतना बोले है इसीका इसी भाँति कविताकी मधुरता मनोहरताकी अधिकाई शुकदेवकी वाणीसे होती है, शुकदेवजी प्रिया प्रीतमकी लीलाके द्रष्टा है, जैसी देखी है वैसी वर्णन करेगे। बादरायणि कहनेका आशय यह है कि इस पंचाध्यायीमे श्रीकृष्णकी महामहिमाका वर्णन है, व्यासजी उस तत्त्वको जानते है और कोई नही, इस कारण व्यासजीके पुत्रने ऐसा लिखा। बद्रिकाश्रममे तप करनेसेही व्यासजी बादरायण कहे जाते है, वह तपस्या कुछ और नही थी साक्षात् श्रीकृष्णकी उपासनाही वह तपस्या है। जैसे भगवान् पुरातन पुरुष है उसी प्रकार व्यासजी सर्वज्ञ है तब वह श्रीकृष्णके सिवाय किसकी उपासना करते ? शुकदेव उसी तपस्याके साक्षात् फल है इसी कारण वह जगत्मे सबके परमादरके पात्र है और विशेष कर रासलीलाकी आदिमे यह पद आनेसे माहात्म्यकी पराकाष्ठा विदित हुई है, तात्पर्य यह है कि जो जो शुकदेवकी समान भक्तिपरायण हो वही इस कथाके सुननेका अधिकारी है, नवरसपूर्ण श्रीमद्भागवत है किसी प्रकाकी न्यूनता न रहे इसी कारण यह लीला शृंगाररसमे वर्णन की गईहै और शुकदेवपक्षमे शुकदेवकी समान उज्ज्वल रसमे आवेष्टित चित्त करके इस लीलाको श्रवण करे,शृंगार रसकोही उज्ज्वल और आदिरस कहते है विचारनेसे यही सबमे प्रधान है, इससे इसके अनुभावभी प्रधान हो सकते है।पंचाध्यायीका आभास भगवान्‌ने अपने प्यारे भक्तोके लिये सभी कुछ किया है,व्रजकी सुन्दरिये उनके ऊपर अपना अत्यन्तही प्रेम करती थी इस कारण उनके मनोरथोको पूर्ण करना उनका एक मुख्य कार्य था और वही उनका महान् सुख था, इन दोनोही विषयोको प्रगट करते वा दिखाते हुए सम्पूर्ण लोकोकी पाच इन्द्रियोकी समान, भक्त-

जनोंको अत्यन्त प्रीतिके देनेवाले पंच अध्यायसे गोपियोंके साथ भगवान् श्रीकृष्णकी रासलीलाको वर्णन करते हैं, क्योंकि गोपियेंही सब प्रकारसे उनकी ऐसी रासक्रीडाके योग्य पात्र थीं, कारण कि "भगवान् साक्षात् मन्मथकेभी मन्मथस्वरूप हैं उनका यह शरीरभी त्रिलोकी समस्त सुन्दरताका अनुपम आधार है, यह नहीं कह सकते कि गोपियोंने कौनसे ऐसे तप किये थे कि वह अपनी दृष्टिसेही भगवान्की उस अनुपम सुन्दरताको पान करती थी" इत्यादि। इन्हीं विधानोंसे इस भागवतके स्थान २ पर भगवानकी असाधारण महिमाके सम्बंधमें जो सम्पूर्ण चरित्र कहे गये हैं उन सबको देखनेसे यह स्पष्टही विदित होता है कि भगवान्के रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द वा वाक्य ये संपूर्ण आत्मारामोंको दुर्लभ हैं और उनका अनुभव करनाभी अत्यन्तही विचित्र है गोपियोंने इन सबकी विचित्रताको जिस प्रकारसे अनुभव किया था, वैसे और किसीनेभी नहीं किया, विशेष करके भगवान्के अधरामृत रसको गोपियोंके अतिरिक्त और किसी स्थानमें पानसम्भव नहीं और वह गोपिये प्रेमके विशेष विस्तारमें जैसी हो गई थीं, ऐसा दूसरा दिखाई नहीं देता इत्यादि कारणोंसेही गोपियोंका भगवान्के संग ऐसा विहार करना योग्य और नित्यसिद्ध है और कहांतक कहें समझनेवालोंको यही बहुत है। श्रीमद्भागवतकी रासलीलामें जो चमत्कार है वह हमने रासपंचाध्यायी पुस्तककी श्लोकोंकी टीका करतेमें दिखाये हैं बुद्धिमानोंको उचित है कि आदिसे अन्ततक प्रथम इस रहस्यको विचारके साथ देख जाय तब विदित होगा कि यह कैसा अनुपम रत्न है।

सज्जनोंका कृपाभिलाषी,

ज्वालाप्रसादमिश्र, मुरादाबाद.

मुरादाबाद निवासी

स्वर्गीय पं॰ बलदेवप्रसादजीमिश्रका

संक्षिप्त जीवनचरित्र ।

श्लोकाः–

इयमुक्तिरिहाऽनृता कृता त्वधिवृद्धं करुणाऽतिरेकता । इति चेन्न कथं पितामह–त्रिदिवौका बलदेवदण्डितः ॥ १ ॥ शिरसा न बिभर्षि का रतिर्महि रत्न बत रत्नगर्भिके । यदधः कृतवत्यहो गुणाद्गुणिरत्नं बलदेवपण्डितम् ॥ २ ॥ अहह प्रियरूपसद्गुणैर्भुवि मिश्रो बलदेव इत्ययम् । उपतापयाति प्रियेतरान्किमु मित्राणि सुरालयं गतः ॥ ३ ॥ इति शोकधुनीपताविता विनिमज्जन्त इह प्रिया वयम् । गिरिवेङ्कटनाथपत्तरि शरणं याम इराधिपाऽऽश्रितम् ॥ ४ ॥

सवैया–

सूर समान प्रचंड सुचन्द सुचन्दन पावक तूल भयो है । शीत बयार प्रहार करै न सदा जु परै दई दुःख दयो है । हा बलदेवजि मिश्र बिना प्रिय वस्तु समूह जु बैरि भयो है । वेङ्कटनाथ तिहारे बिना कहु कौन ने दुःख विदार दयोहै ?

नाग गवाय मणी अपनी जिमि धीरजता प्रिय नाहि लहै । त्यो गुणि रत्न गवांय अहो बलदेवजि मिश्र को शोक सहैं ॥ मानुष देह की लाज जहाज के काज बिचारि जु मौन गहैं । हे सत पुत्र मिटाव कलेश हमेश युँ इष्टहि जाचि कहै ॥ २ ॥

सर्वसधारन पै करि प्रेम जु नेम सुग्रन्थ रचे बहु भासा । वेङ्कटईश्वर प्रेस को प्रेम निबाहि गये करि कीर्त्ति प्रकाशा ॥ केतक ग्रन्थ छपे अरु केतक ह्वैहैं उजागर जाकी हुलासा । मानुष लोक से भासा तमासा के कारण भो मनु स्वर्ग मे बासा ॥ ३ ॥

"जाकी यहा चाहना है, ताकी वहा चाहना है, जाकी यहा चाह ना है, ताकी वहा चाह ना है"

संसार मे कितने ही मनुष्य नित्य मरते और कितने ही उत्पन्न होते है, कितने ही आते और कितनेही चले जाते हे परन्तु जिनके जन्म मरण से समाज का सम्बन्ध नहीं है. देशका सम्बन्ध नही है, उनके जन्म मरण से हमे न विशेष शोक ही है न सम्बन्ध ही । २८। ३० करोड अगण्य पुरुषो मे से एक की कमी बढती का प्रमाण ही क्या है, परन्तु जिसके जन्म मरण से समाज और देश का सम्बन्ध हे उसके जन्म मरण का सुख दुःख समाज और देश का समझने योग्य होता है यथार्थ मे उसी सपूत की माता पुत्रवती कहलाने का स्वत्व रखती है जिसके मुँह की ओर जन्म देनेवाली जननी ही नही किन्तु भाषा जननी और जन्मभूमि जननी भी आशा तथा चाह की दृष्टि से देखा करती हैं । वही भाग्यवान् माता मातृ भाषा और मातृ-भूमि का सच्चा सपूत है माता को बिलखती छोड पुत्र का उठजाना बडे ही शोक सन्ताप और करुणा की बात है । परन्तु फिर भी ऐसे प्रसङ्ग उपस्थित होने पर माता को वज्र की छाती करके वह दुःख सहना ही पडता है । इस समय हमारी जननियों के भाग्य मन्द होरहे हैं । देश भाषा और जन्मदात्री जननियो को बडी ही कठिनाई से सपूत पुत्र का सुख देखना पडता है । फिर यदि बिना अवसर उसके आश्रय स्थल इने गिने सपूतो पर निर्दय काल का विकट प्रहार हो तो इससे बढकर शोक सन्ताप का और कौन अवसर होसकता है । समस्त भारत की एकमात्र भाषा सम्राज्ञी होने पर भी माता हिन्दी को यथेच्छ सुपुत्रो का सुख प्राप्त नही है, परन्तु जो कुछ है वह उन्हीं से भविष्य की आशा रखके सन्तुष्टहै परन्तु दुर्भाग्य की बात है कि उसके इने गिने सपूतो पर क्रूर काल की कराल दृष्टि पडरही है । हिन्दी के जितने सपूतरूपी लेखक और सेवक है वह थोडे होनेके कारण अपने रढङ्ग के अकेले हैं इसलिये किसी एक के उठ जानेपर उसकी योग्यता का दूसरा यहा नहीं रह जाता । विशेष दुःख की बात तो यह है कि,

जैसे जाते है वैसे तैयार भी नही होते। भला यदि पण्डित प्रतापनारायण मिश्र, भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी, पण्डित अम्बिकादत्त व्यास की बात न भी करे तो भी पाण्डे प्रभूदयाल, बाबू कार्तिकप्रसाद, बाबू अयोध्याप्रसाद, पण्डित केशवराम भट्ट आदि सरीखे साहित्य सेवी अब हिन्दी संसार मे कहा है। ऐसी स्थिति और समय मे भली भाति अपने अनुभव, विद्वत्ता, परिश्रमशीलता आदि गुणो का भली भाति बिना विकाश किये ही अपक्व आयु मे मुरादाबाद निवासी पण्डित बलदेवप्रसाद जी मित्र का उठ जाना हिन्दी प्रेमियो को बहुत ही खटका है। खटकाही नही किन्तु यह समाचार उनके लिये बहुत ही शोक सन्ताप का कारण हुआ है। इस समय उनके वियोग के दुःख से उनके कुटुम्ब वालेही दुःखित नही है, किन्तु सम्पूर्ण साहित्यसेवी और उनके मित्र भी वियोग दुःख से दुःखित होरहे है। एक ओर उनकी बूढी माता का तुमुल क्रन्दन छाती फाडरहा है, दूसरी ओर मातृभाषा हिन्दी भी उनके लिये हाय हाय कर रही है। अतएव ऐसे शोक को हम स्थानिक नही किन्तु देश व्यापी शोक समझे है।

कराल काल पर किसी का अधिकार नही है। उसपर किसी का वश नहीं चलता, नही तो बिना अवसर यहा से उन्हे जाते देख कहा जासकता कि बूढी माता को कलपाकर भाइयों, भौजाइयो, भगिनियो, बहनोइयो, तथा कुटुम्बीजन और इष्ट मित्रो को, रुलाकर आप कहा जा रहे है। यदि आपको इसीप्रकार बेसमय उठ जाना था तो साहित्य संसार मे आपने अपने गुणो के सौरभ को क्यो फैलाया था? यदि सौरभ फैलाना आरम्भ किया था तो साहित्य कानन को भली भाति सुगन्धित करके तब कहीं जाना था। परन्तु यह सब विलाप के कलाप हैं। वह यहा से चले गये और फिर उनका यहॉ लौटना— इस शरीरमे फिर यहा दिखाई देना असम्भव है। न उनको रोकने की किसी को शक्ति थी और न वह अपनी इच्छा से ही रुकजाने को समर्थ थे। जो हो सबको शोक सन्तप्त करके पण्डित बलदेवप्रसादजी श्रावण

शुक्र सप्तमी को इस संसार से बिदा होगये, श्रावण शुक्र द्वितीया गुरु-वार को उनका स्वास्थ्य बिगडा, जी मचलाथा और उबाति आई । औषधोपचार से व्याधि नही हटी तब डाक्टरी औषधि कीगई । पहीले डाक्टर की औषधि मे कोई लाभ नही हुआ और रविवार को बीमारी प्रबल पडी । इससे सोमवार को दूसरे डाक्टर की औषधि कीजाने लगी । यद्यपि उस दिन उससे उनकी तबियत अच्छी रही किन्तु मंगलवार को फिर स्वास्थ्य अधिक बिगडा और डाक्टर वैद्य कुटुम्ब के लोग तथा मित्रोंके देखते हुए वह इस संसार से प्रयाण करगये । ऊपर लिखा हुआ किसी कवि का कथन बहुत ठीक है कि "जिसकी यहां चाह नहीं है उसकी वहां भी चाह नहीं है और जिस-की यहां चाह है उसकी वहा भी चाह है"। मृत्यु के पहले पण्डित जी ने अपने मित्र और कुटुम्बियो को बुलाकर सबसे बिदा मांगी । जिस समय माता की गोद मे हात रखकर इन्होंने मीठे स्वर से कहा कि "मातः तुमभी हमको आज्ञा दो" उस समय माता तो इस वज्र वचन को सुनतेही मूर्च्छित होगई परन्तु सुननेवालो का हृदय भी विदीर्ण होने से नही बचा । अन्तमे आप विष्णुसहस्रनाम सुनने और कुछ स्वय भी कहने लगे । मित्र कन्हैयालाल ने राधाकृष्ण की छबि उनके सन्मुख की, उसके देखते ही देखते नेत्र मिचगये वह यहां न रहे, रहे केवल रोने और शोक करनेवाले ! ! !

पण्डित जी का जन्म सम्वत् १९२६ के पौष शुक्र एकादशी को हुआ था बालकोचित लालन पालन और यज्ञोपवीत संस्कार होने के पश्चात् आपका हिन्दी का अभ्यास आरम्भ हुआ था । हिन्दी क पश्चात् अँगरेजी सीखी और फिर संस्कृत फारसी की ओर मन लगाया । बाबू पन्नालाल जैन के कहने पर आपने बॅगला सीखी, यही नहीं किन्तु मराठी और गुजराती का भी अच्छा अभ्यास करलिया । कुछ दिनो के पहले आपने कनाडी भाषाका अभ्यास भी आरम्भ किया था । बॅगला भाषा का ऐसा अभ्यास था कि, बँगला पुस्तक हाथ मे लेकर एक साथ ही उसका अनुवाद असली पुस्तक के समान बोलते चले जाते थे । यही नहीं

किन्तु काम पडने पर मराठो के साथ मराठी गुजरातियो के साथ गुज-राती और बंगालियो के साथ बंगाली मे ही बात किया करते थे। समाचार पत्रोके पढनेका आपको बडा शौक था। हिन्दी, बंगाली, महाराष्ट्री, और गुजराती के कितने ही पत्र आपके पास आते थे, श्रीवेंकटेश्वर, भारतमित्र, बंगवासी, केसरी, गुजराती, काल और हितवादी को आप चाव से पढा करते और अपने इष्ट मित्रो को सुनाया करते थे। कितने ही लोग आप के पास विना पूॅछे पुस्तकादि के बी०पी० भेज दिया करते थे परन्तु आप उन्हे कभी लौटाते नही और कहते कि "कुछ समझ करही तो उसने भेजा होगा"।१८। २० वर्ष की आयु मे आपने साहित्यसरोज, सत्यसिन्धु भारतवासी, भारतभानु और सोलजर पत्र का सपादन भी किया था इधर कई वर्ष पहले आपने तन्त्रप्रभाकर पत्र निकाला था जिसमे तन्त्र विषय के लेखो के अतिरिक्त साहित्य और धर्म विषयक अच्छे लेख निकला करते थे। कुछ मित्रो के साथ मिल उन्होने तन्त्रप्रभाकर नाम का एक प्रेस खोला था परन्तु किसी आपसी झगडे के कारण आपने उससे संबन्ध छोड दिया, तन्त्रप्रभाकर पत्र भी कुछ ही वर्ष चलकर बन्द होगया। तबसे आपने पुस्तक प्रणयन करने मे ही विशेष ध्यान लगाया यद्यपि आप कविता करने का अभ्यास नही रखते थे तथापि काम पडने पर अच्छी कविता करलेते थे और लिखने मे ऐसी जल्दी लिखते थे कि एकबार एक फारसी लिखनेवाले कोभी हार माननी पडी थी। पुस्तक संग्रह करने का आपको बडा भारी शौक था प्रत्येक विषय की पुस्तको का आपके यहां बडाभारी संग्रह है, उनके आफिस का एक कमरा उनकी पुस्तको से ही भरा हुआ है। कभी २ आप पुस्तकों के ढेर को देखकर कहा करते थे कि "हमारे पश्चात् न जाने इनकी कैसी स्थिति होगी" परन्तु सुयोग्य प्रख्याति प्राप्त ज्येष्ठ भ्राता विद्यावारिधि पण्डित ज्वालाप्रसाद जी मिश्र ने उनके आत्मा को सन्तुष्ट करने और अभिलाषा को पूर्ण करने के लिये निश्चय किया है कि, उनका कार्य्यालय ज्यों का त्यो रहेगा और पुस्तको का संग्रहालय भी बना रहेगा। बुद्धि की विलक्षणता

और पुस्तकों के पठनपाठन से आपका अनुभव ऐसा परिपक्क होगया था कि किसी भी विषय की पुस्तक लिखने के लिये आप तैयार होजाया करते थे सबसे पहले आपने मास्टर अम्बाप्रसाद के कहने से जागती ज्योति नाम की पुस्तक लिखी थी वही से जागती ज्योति के समान उन की कीर्ति का फैलना आरम्भ हुआ। फिर तो आपने बहुतसी पुस्तकें, अनुवाद, भाषा टीका, तथा स्वयम् लिखित तैयार की। उनकी कुछ पुस्तकें श्रीवेंकटेश्वर समाचार तथा भारतमित्र के उपहारों मे बॅटी है। कुछ पुस्तकें इधर उधर प्रकाशित हुई है । कुछ लक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस और अधिकाश इसी श्रीवेंकटेश्वर प्रेस मे मुद्रित हुई है। आपकी अनुवादित तथा लिखित पुस्तकें—वाराही संहिता, भाषा भागवत, नैपाल का इतिहास, पानीपत, नन्दविदा नाटक, देवी उपन्यास, रसेन्द्रचिन्तामणि, मिश्रनिघण्टु, प्रभासमिलन, महानिर्वाण तन्त्र, लघु भागवतामृत, हितोपदेश, शिवाजीविजय, लल्लाबाबू प्रहसन, नाटक निर्माणविधि, यन्त्र चिन्तामणि, सूर्य्यसिद्धान्त, रमलभास्कर, पृथ्वीराजचौहान, तांतियाभील, अध्यात्मरामायण, मेघदूत, ताजिरातहिन्द, कल्किपुराण आदि हैं। बहुतसी पुस्तकें अभी विना छपीहुई पडी है जो धीरे २ श्रीवेंकटेश्वर प्रेसमे प्रकाशित होगी। टाड राजस्थान का भी आपने अनुवाद किया है वह भी कुछ शेष अंश की पूर्ति कराकर इसी प्रेस से प्रकाशित हुआ है।[1] आपने तन्त्रशास्त्र की कई पुस्तक मराठी गुजराती मे भी तैयार की थीं। पिछले साल पण्डितजी जगदीश यात्रा को गये थे।

विद्याव्यसन में आपका अधिक मन लगारहा करता था इस कारण अधिक उमर होजाने पर भी आपने विवाह नहीं किया था परन्तु कुटुम्ब के लोग तथा माता भ्राता के आग्रह से सम्वत् १९५७ मे आपका विवाह हुआ। यद्यपि स्वर्ग जाते समय मे आप कोई सन्तान छोड नहीं गये थे किन्तु तीन महिने पीछे एक कन्याका जन्म हुआ जो इस समय विद्यमान है।

---

१ राजस्थानके दोनो भाग छप चुकेहै प्रत्येकका मूल्य १५) १५) रु है।

पंडितजी की प्रकृति बहुत ही सरल और दयालु थी । छोटे लडको पर आपका अधिक स्नेह रहता था । आप उन्हे हंसाने खिलाने लगजाते थे। विना ऊंच नीचका विचार किये बीमारो की दवा आदि करते कराते थे। जब कोई गरीब आपके पास आजीविकाके लिए आता तब आप उसे कहीं न कहीं धन्धेसे लगा दिया करते थे। साहस और वचन पालने की दृढता भी आपमें अधिक थी। अपने वचन की पूर्ति के लिए आप तन मन धनसे सचेष्ट रहते थे। राज कार्यालयमे काम पडने पर सत्यपक्षवालेका पक्ष लेनेमे आप हिचकते नहीं थे । जिस से स्नेह होता उसकी भलाई करने मे तत्पर रहते थे। धार्मिकता और देवभक्ति भी आप मे कम नही थी। महावीर जी के मन्दिर मे प्रतिदिन दर्शनो को जाते थे। कभी २ सनातन धर्म सभाओ मे जाते और व्याख्यान देते थे। गङ्गा स्नान मे आप की बडी प्रीति थी प्रतिवर्ष आप गङ्गा स्नान को जाते और बीच २ मे हरिद्वार भी हो आते थे। भोजन के पहले स्तोत्र पाठ अवश्य करते थे कोई न कोई पण्डित आपके यहां नित्य पूजा किया ही करता था मिलनसार ऐसे थे कि उन से मिलकर कोई प्रसन्न हुए बिना नही रहता था। प्रायः सबही हिन्दी पत्र और हिन्दी लेखको से आप का स्नेह तथा परिचय था। श्रीमान् छत्रपुर नरेश आप का बडा आदर सत्कार करते थे। आपने इन्हे कईबार बुलाया और जब २ यह गये तब २ कोई न कोई ग्रन्थ उन्हें समर्पित किया है। टिहरी गढवाल के महाराजकुमार श्री बिचित्र शाह भी आपका बडा आदर करते थे। उन्हे भी आपने कई पुस्तके समर्पित की है। जो चिट्ठी किसी से न चलती उसे आप पढालिया करते थे मुरादाबाद में जो इस समय विद्या की चर्चा सुनने मे आती है । वह आधि- कांश मे पण्डितजी के कारण से है। आप ऐसे परिश्रमी थे कि सारा- दिन पारसलो के भेजने तथा दूसरो के काम मे बिताते और रात को दो ढाई बजे तक जागकर अपना काम करते थे। पुस्तको की बिक्री तथा ग्रन्थो के लिखने मे आपकी दैनिक आय प्रायः आठ दश रुपये होती थी परन्तु उसका अधिकांश भाग आप पुस्तको के खरीदने मे लगा दिया करते थे श्रीवेंकटेश्वर प्रेस तथा इस पत्र के मालिक सेठ खेमराज

श्रीकृष्णदास पर आप की बड़ी कृपादृष्टि रहा करती थी आप इस कार्यालय के सच्चे शुभचिंतक थे। एकबार मुरादाबाद के लाला गनेशीलालजीने आपको अधिक व्यय करने से हाथ रोकने के लिए कहा था तब आपने उत्तर दिया था कि मेरे ऊपर बड़े भाई तथा सेठ जी हैं इससे मुझे व्यय करने में संकोच नहीं है। स्वर्गवासी सेठ गंगाविष्णु श्रीकृष्णदासजी तथा श्रीवेंकटेश्वर समाचार के मालिक महोदय पर जो आपकी प्रीति थी वह लोगो से बातचीत करते समय प्रायः प्रकाशित होजाया करती थी।

भारतमित्र सम्पादक बाबू बालमुकुन्दजी गुप्त तथा पण्डित दीनदयालुजी शर्म्मा महोदय से आप का अच्छा स्नेह था। पण्डित कन्हैयालालजी उपाध्याय सनातनधर्म पताका के सम्पादक पण्डित रामस्वरूप शर्म्मा, पं०श्रीलालजी, पं०विशेश्वरनाथ, पं०रामचन्द्रजी उपदेशक पीलीभीत, उपदेशक पं०बनमालीशंकर मिश्र,पं०हरिहरनाथ शार्म्मा पं० बैजनाथ, पं०ऋषिराम, पं० गङ्गाप्रसादजी आदि से आप की मित्रता थी। मुरादाबाद की सनातनधर्म सभा ने उनके लिए शोक प्रकाशित किया है उनके ज्येष्ठ भ्राता पण्डित ज्वालाप्रसादजीमिश्र कनिष्ठ भ्राता पण्डित कन्हैयालाल आदि पर जो यह शोक का पहाड गिरा है वह कहकर बतलाने की बात नहीं है यह शोक केवल उनके कुटुम्बका ही नहीं किन्तु सम्पूर्ण हिन्दी संसार का है। पण्डितजीके स्वर्गवास से हमने अपना एक शुभचिंतक, सहायक तथा मित्र खोया है इस लिए इस घटना से हमारे हृदय को भारी चोट का लगना स्वाभाविकही है। ईश्वर उनकी आत्मा को सद्गति प्रदान करै। कुटुम्बवालों को धैर्य देकर उनकी शेष आशा पूर्ण करे तथा हिंदी में उनके ऐसे अनेक साहित्यसेवी उत्पन्न हों।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस-बंबई.